॥ श्री ॥

गरुड़ पुराण भाषा टीका

सम्पादक

प. राजकुमार पान्डेय तिलोई रायबरेली

प्रकाशक

न्यू स्टैन्डर्ड पब्लिकेशन्स

१८१३, चन्द्रावल रोड, दिल्ली- ११०००७

दूरभाष : 2911920

मूल्य ३०) रुपया


गाना सुनते हैं
पुण्यवान.
पुण्यवान
वैशंपायन ऋषि
यम दूत
यमदूत
यमदूत.
पापी.
यमदूत.

❀ श्रीः ❀

अथ गरुडपुराणं भाषाटीकासमेतं प्रारभ्यते

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्दः पुराणशाखाढ्यः । क्रतुकुसुमो मोक्षफलो मधुसूदनपादपो जयति ॥१॥ नैमिषे निमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः। सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥२॥ त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः । सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥३॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथितो भवता सम्यग् वेदमार्गः सुखप्रदः । इदानीं श्रोतु-

श्रीपरमेश्वर ही संसाररूपी वृक्ष के बीज हैं जैसा कि लोक में विख्यात है जो वेदों में साफ साफ लिखा है 'यथा पूर्वमकल्पयदित्यादि, अच्युतः कल्पवृक्षो' इन वाक्यों से प्रमाणित है कि इस जगत् के आदि कारण नारायण हैं ऐसे वृक्षरूपी नारायण का धर्म ही मूल है वेद ही उसका स्कन्ध है पुराण ही जिस नारायण रूपी वृक्ष की शाखा है, यज्ञ ही जिस वृक्ष का पुष्प है मोक्ष ही जिसका फल है ऐसे सबसे श्रेष्ठ मधुसूदनरूपी वृक्ष की जय हो ॥ १ ॥ नैमिषारण्य क्षेत्र में सब मुनियों के मान्य शौनक मुनि ने अट्ठासी हजार मुनियों के सहित मोक्ष प्राप्ति के वास्ते एक हजार वर्ष के यज्ञ को आरम्भ किया था ॥२॥ एक समय शौनक आदि मुनियों ने हवन आदि

मिच्छामो यममार्गं भयप्रदम् ॥४॥ तथा संसारदुःखानि तत्क्लेशक्षयसाधनम् । ऐहिकामुष्मिकान् क्लेशान् यथावद्वक्तुमर्हसि ॥५॥ सूत उवाच ॥ शृणुध्वं वो विवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् । सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां दुःखदायकम् ॥६॥ यथा श्रीविष्णुना प्रोक्तं वैनतेयाय पृच्छते । तथैव कथयिष्यामि सन्देहच्छेदनाय वः ॥७॥ कदाचित्सुखमासीनं वैकुण्ठे श्रीहरिं गुरुम् । विनयावनतो भूत्वा पप्रच्छ विनतासुतः ॥८॥ गरुड उवाच ॥

प्रातःकाल के नित्यकर्मों से निवृत्त होकर व्यासजी के शिष्य पौराणिकों में प्रसिद्ध सूतजी का आदर सत्कार करके उनसे प्रश्न किया ॥३॥ हे सूतजी ! आपने सुख को देनेवाले वेदमार्ग अर्थात् यज्ञों को तथा उनके फलों का विस्तार से वर्णन किया इस समय परलोक में भय देनेवाले यममार्ग अर्थात् जीवों की यातना जो नरकों में पतन होने से होती है उसको हम सुनना चाहते हैं ॥४॥ संसार के दुःखों का तदनन्तर उन दुःखों के नाश का उपाय जिससे ऐहिक और पारलौकिक क्लेश न हों वह उपाय कहने में योग्य हो ॥५॥ यह सुन सूतजी ने कहा पापियों की यातना और पुण्यवानों के भोग की और अत्यन्त कठिन यम मार्ग को हे मुनीश्वरो ! आपलोगों के कल्याण के लिये कहता हूँ सुनिये ॥६॥ इसी प्रकार गरुड़ जी ने विष्णु से पूछा था उन्होंने जो इतिहास गरुड़जी को सुनाया है वही मैं आपलोगों से कहता हूँ सुनिये ॥७॥ किसी समय सुख से बैठे हुए विष्णुभगवान् से विनय युक्त हाथ जोड़कर गरुड़जी ने पूछा

भक्तिमार्गो बहुविधः कथितो भवता मम ॥ तथा च कथिता देव भक्तानां गतिरुत्तमा ॥९॥
अधुना श्रोतुमिच्छामि यममार्गं भयङ्करम् । त्वद्भक्तिविमुखानाञ्च तत्रैव गमनं श्रुतम्
॥१०॥ सुगमं भगवन्नाम जिह्वा च वशवर्तिनी । तथापि नरकं यान्ति धिग्धिगस्तु नराध-
मान् ॥११॥ अतो मे भगवन् ब्रूहि पापिनां या गतिर्भवेत् । यममार्गस्य दुःखानि यथा
ते प्राप्नुवन्ति वै ॥१२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वक्ष्येऽहं शृणु पक्षीन्द्र यममार्गं च येन ये ।
नरके पापिनो यान्ति शृण्वतामतिभीतिदम् ॥१३॥ ये हि पापरतास्तार्क्ष्य दयाधर्मवि-

कि हे नाथ ! आपने भक्ति के अनेक मार्ग को और भक्तों की उत्तम गति को बहुत सुनाया है ॥८॥९॥ अतः आपकी भक्ति करना जो प्राणी नहीं जानते हैं, अथवा जानबूझ कर भी अपने स्वार्थ में लीन हो आपको भूल जाते हैं वह कैसे यममार्ग को जाते हैं और वह यम मार्ग कितना दुर्गम है वह मुझसे कहिये ॥१०॥ हे स्वामी ! जिह्वा अपने अधीन है तो आपका नाम स्मरण करना सहज है उसपर भी यदि पापी मनुष्य यमलोक को जाये ऐसे अधम मनुष्यों को धिक्कार है ॥११॥ हे स्वामी ! पापी मनुष्य की जिस प्रकार गति होती है और नरकों के बीच में जो जो भोग भोगते हैं उसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥१२॥ विष्णुभगवान् ने कहा हे गरुड़ जी ! जिस मार्ग से होकर पापी मनुष्य यमलोक को जाते हैं यह कथा सुनने वालों को भी भयभीत करनेवाली है परन्तु आपके पूछने से

वर्जिताः । दुष्टसङ्गाश्च सच्छास्त्रसत्सङ्गतपराङ्मुखा ॥१४॥ आत्मसम्भावितास्तब्धा धन-
मानमदान्विताः । आसुरं भावमापन्ना दैवीसम्पद्विवर्जिताः ॥१५॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता
मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥१६॥ ये नरा
दानशीलाश्च ते यान्ति परमां गतिम् । पापशीला नरा यान्ति दुःखं । यमयातनाम्
॥१७॥ सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा पूर्वं यथार्जितम् । कर्मयोगात्तदा तस्य कश्चिद्

मैं कहता हूं ॥१३॥ सुनिये, जिनका मन सदा पराये धन और स्त्री तथा जूआ आदि बुरे कर्मों में आसक्त रहता है जिनके हृदय में दया और धर्म नहीं रहता है वे वेद शास्त्र की संगति से दूर होकर सुसंगति से दूर होकर कुसंगति में प्रेम करते हैं और सत् संग से विमुख रहते हैं ॥१४॥ तथा अपने को सबसे बड़ा जानकर किसी से भी बिनीत नहीं होते हैं धन और मर्यादा के अभिमान से पूर्ण रहते हैं वह राक्षसी के भाव को प्राप्त हो दैवी संपत्ति से वञ्चित हो जाते हैं अर्थात् राक्षसों के धर्म में उनको जानना चाहिये ॥१५॥ और जिनका मन सदा मोहरूपी जाल में फँसकर अपने सुख की इच्छा से दूसरे के धन और स्त्री में आसक्त रहता है और काम के भोगों में जो निरन्तर लगे रहते हैं उनका पतन घोर नरकों में होता है ॥१६॥ जो सत्य और मिथ्या का विचार करने वाले ज्ञानी पुरुष हैं वह भेद रहित होकर सद्गति (मोक्ष) का लाभ करते हैं और जो पापी मनुष्य हैं वह अनेक प्रकार के नरकों का भोग भोगते हैं ॥१७॥ पापी मनुष्य को जिन लोकों में दुःख मिलता है और उस क्लेश को भोगने के उत्तर जो जो देह मिलती हैं उनको

व्याधिः प्रजायते ॥१८॥ आधिव्याधिसमायुक्तं जीविताशासमुत्सुकम् । कालो बली-
यानहिवदज्ञातः प्रतिपद्यते ॥२०॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयं भृतैः । जरयो-
पात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥२१॥ आस्तेऽवमत्योपन्यस्तो गृहपालइवाहरन् । आमया-
व्यग्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितैः ॥२२॥ वायुनोत्क्रमतोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ।
कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥२३॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्व-

कहता हूँ सुनिये ॥१८॥ पूर्व जन्म के संचित पुण्य अथवा पाप के फल को भोगने पर भी शेष अशुभ कर्मों के संयोग से मनुष्य का शरीर व्याधि से युक्त हो जाता है अर्थात् बिना भोग के कर्मों का क्षय नहीं होता है ॥१९॥ जीवन की आशा में उत्सुक जो प्राणी है उनको मानसिक पीड़ा और शारीरिक पीड़ा ये दोनों कृष्ण भुजंग के समान सिर पर पहुँच जाती हैं ॥२०॥ जो मनुष्य सदा वेदना से हीन हैं अर्थात् कभी किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई है और उन्होंने स्त्री पुत्र आदि कुटुम्बियों का पालन बड़े आदर से किया है उन स्त्री पुत्रों से वृद्धावस्था में पालित होने पर भी चेष्टा हीन वह वृद्ध घर के बीच में मृतक समान होकर रहता है ॥२१॥ और परिवार वालों से दिये हुए अपमान युक्त आहार (भोजन) को कुत्ता के सदृश खाता है और शरीर रोगी होने से मन्दाग्नि के कारण आहार क्षीण हो जाता है चलने फिरने में सामर्थ्य नहीं रहती है ॥२२॥ कफ के वेग से जब कण्ठ का स्वर अर्थात् बोलना बन्द हो जाता है और प्राण वायु नाड़ियों के द्वारा निकलने का उद्योग करता है और वायु के वेग से नेत्रों के द्वार फूट जाते हैं कास श्वास से मूर्च्छित

बन्धुभिः। वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशंगतः ॥२४॥ एवं कुटुम्बभरणे व्यापृतात्मा-
जितेन्द्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नन्तक्षणे तार्क्ष्य
दैवदृष्टिः प्रजायते। एकीभूतं जगत्सर्वं न किञ्चिद्वक्तुमीहते ॥२६॥ विकलेन्द्रियसङ्घाते
चैतन्ये जडतां गते। प्रचलन्ति तत्र प्राणा याम्यैर्निकटवर्तिभिः ॥२७॥ स्वस्थानाच्चलित-
श्वासे कल्पाख्यो ह्यातुरक्षणः ॥ शतवृश्चिकदंष्टस्य या पीडा सानुभूयते ॥२८॥ फेनमुद्गि-

जो प्राणी हैं उनके कण्ठ में घुर घुर शब्द होने लगता है ॥२३। वह प्राणी शय्या पर पड़ा हुआ सोचता है और परिवार वाले तथा इष्ट मित्र चारों तरफ से घेरे खड़े रहते हैं लोगों के बोलाने पर नहीं बोलता है और वह प्राणी काल का कवल हो रहा है ॥२४॥ इस प्रकार परिवार वालों के पालन में जिसका मन लगा है उस परिवार के प्रेम से निमग्न आत्मा वाला प्राणी उनकी वेदना से रोता हुआ प्राण देह से अलग हो जाता है ।.२५॥ हे तार्क्ष्य! मरने पर देवताओं के समान मनुष्य की दिव्य दृष्टि हो जाती है अर्थात् यमदूतों से युक्त यमलोक को तथा इस लोक को बराबर देखता है और आश्चर्यमय दर्शन से अत्यन्त विह्वल हो जाता है ॥२६॥ इन्द्रियाँ व्याकुल हो जाती हैं ज्ञान नष्ट हो जाता है अपने जड़ होकर समीप में आये यमदूतों के भयसे प्राण वायु अपना स्थान छोड़कर चलायमान हो जाता है ॥२७। जब प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, ये पांचों वायु अपने स्थान को छोड़कर चलायमान होते हैं तब उस पापी को एक क्षण भी एक युग के समान बीतता है जैसे सैकड़ों बिच्छुओं को एक साथ काटने से जितनी व्यथा होती है

गरते सोऽथ मुखं लालाकुलं भवेत् । अधोद्वारेण गच्छन्ति पापिनां प्राणवायवः ॥२९॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ । पाशदण्डधरौ नग्नौ दन्तैः कटकटायितौ ॥३०॥ ऊर्ध्वकेशौ काककृष्णौ वक्रतुण्डौ नखायुधौ । स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥३१॥ अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन्कलेवरात् । तदैव गृह्यते दूतैर्याम्यैः पश्यन् स्वकं गृहम् ॥३२॥ यातनादेहमावृत्य पाशैर्बद्धो गले बलात् । नयतो दीर्घमध्वानं

श्वासों के चलायमान होने से भी उतनी ही पीड़ा होती है ॥२८॥ यमदूतों के भय से उस जीव के मुख से फेन गिरता है पापियों का प्राण गुदा आदि नीचे के मार्ग से निकलता है और पुण्यात्माओं का प्राण नेत्र आदि ऊपर की इन्द्रियों द्वारा निकलता है ॥२९॥ उस समय आये हुए दो यमदूतों को पापी प्राणी देखता है, क्रोध से लाल नेत्र वाले भयानक मुख हैं जिनके पास और लोहे के मुद्गर को हाथों में लिये नंगे शरीर दांतों को पीसते खड़े हैं ॥३०॥ सिर के बाल जिनके कौआ के समान कालारंग है जिनका टेढ़ा मुख है जिनका तलवार के समान तीखे और विशाल नख हैं जिनके ऐसे उन दूतों को देखकर भय से मनुष्य मल मूत्र करने लगता है ॥३१॥ और हाय हाय करता हुआ कर्मों के फल को भोगने वाला वह जीव शरीर से निकल कर अंगुष्ठ मात्र शरीर को धारण करता है और अपने घर तथा परिवार वालों को देखता हुआ यमदूतों से बद्ध होकर परलोक को चला जाता है ॥३२॥ उस अंगुष्ठ मात्र चैतन्य शरीर को ढांप कर उसी देह को यातनार्थी समझ कर यमदूत लोग उस जीव के गले में रस्सी बाँधकर ऐसे ले जाते हैं जैसे राजा के सिपाही

दण्ड्यं राजभटा यथा ॥३३॥ तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति च । प्रवदन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः ॥३४॥ शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन्यास्यसि त्वं यमालयम् । कुम्भीपाकादिनरकाँस्त्वां नयावोऽद्य मा चिरम् ॥३५॥ एवं वाचस्तदा शृण्वन् बन्धूनां रुदितं तथा । उच्चैर्हाहेति विलपंस्ताड्यते यमकिङ्करैः ॥३६॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तर्जनैर्जातवेपथुः । पथि श्वभिर्भक्ष्यमाणः पापौघं स्वमनुस्मरन् ॥३७॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः संतप्यमानः पथि तप्तबालुके । कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्य-

अपराधी पुरुष को दण्ड देने के लिये घसीटते ले जाते हैं ॥३३॥ वे यमदूत इस प्रकार जीव को खींचते घसीटते अनेक प्रकार का भय दिखाते और नरकों के भयानक भोग का वर्णन करते मार्ग में चले जाते हैं और उस जीव को तर्जना देकर कहते हैं अरे पापी ! तू जल्दी चल, तुझे यमलोक को चलना होगा और कुम्भीपाक रौरव आदि नरकों का भोग भोगना पड़ेगा इसलिये तुझे जल्दी से ले चलता हूँ ॥३५। यमदूतों के कठोर वचन को सुनकर और अपने कुटुम्बियों के रोने के शब्द को सुनकर अपने भी वह जीव हाय हाय करता हुआ वह प्राणी यमदूतों से ताड़ना किया जाता है ॥३६। यमदूतों के धमकाने से वेदना युक्त होकर भय से कांपता और अपने पाप कर्मों को स्मरण करता हुआ मार्ग में चलता है ॥३७॥ जब भूख और प्यास तथा सूर्य के प्रबल तेज और वायु के वेग से थकित होता है जिस मार्ग में वृक्षों की छाया तथा और विश्राम का स्थान नहीं है ऐसे मार्ग में चलने से असमर्थ प्राणी को यमदूत कोड़ों से मार

शक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥३८॥ तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्छितः पुनरुत्थितः । तथा पापीय-
सा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥३९॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीयते तत्र मानवः । प्रदर्श-
यन्ति दूतास्ताः घोरा नरकयातनाः ॥४०॥ मुहूर्तमात्रात्त्वरितं यमं वीक्ष्य भयं पुमान् ।
यमाज्ञया समं दूतैः पुनरायाति खेचरः ॥४१॥ आगम्य वासनाबद्धो देहमिच्छन्यमानुगैः ॥
धृतः पाशेन रुदति क्षुत्तृड्भ्यां परिपीडितः ॥४२॥ भुक्तं पिण्डं सुतैर्दत्तं दानं चातुर-
कालिकम् ॥ तथापि नास्तिकस्तार्क्ष्य तृप्तिं याति न पातकी ॥४३॥ पापिनो नोपतिष्ठन्ति

कर घसोटते हैं ।३८॥ ऐसे कठिन मार्ग में चलने से मूर्च्छित होकर वह जीव जहाँ जहाँ गिरता है वहाँ वहाँ से घसीट कर उस प्राणी को यमलोक में पहुँचाते हैं ।३९॥ वह जीव क्लेश से पीड़ित यमलोक में पहुँचता है तब यमदूत घोर नरकों की होती हुई यातना को दिखाते हैं ॥४०॥ तीन मुहूर्त में वह जीव यमलोक में पहुँच कर यमराज का दर्शन करता है और यमलोक में नरकों की यातना देखकर यमराज की आज्ञा से फिर वह जीव यमदूतों के साथ मनुष्यलोक में लौट जाता है परन्तु संसारी मनुष्य उसे कोई नहीं देख सकता ।४१॥ इस लोक में आने से वह प्राणी अपने पूर्व शरीर में प्रवेश करने की इच्छा करता है परन्तु यमदूतों के बाँधने के कारण क्षुधा तृषा के दुःसह दुःख को सहन करने में व्याकुल होकर रोता है ॥४२॥ तब मृत्यु के स्थान पर दिये हुए पिण्ड को और मरने के समय में दिये हुए दानको उस समय वह जीव खाता है तो भी उसकी क्षुधा तृषा की शान्ति नहीं होती है ॥४३॥ दान श्राद्ध और जलांजलि पापी

दानं श्राद्धं जलाञ्जलिम् ॥ क्षुद्भिर्व्याकुलतां यान्ति पिण्डदानविवर्जिताः ॥४४॥ भवन्ति
प्रेतरूपास्ते पिण्डदानविवर्जिताः ॥ आकल्पं निर्जनारण्ये भ्रमन्ति बहुदुःखिताः ॥४५॥
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ अभुक्त्वा यातनां जन्तुर्मानुष्यं लभते नहि ॥४६॥
अतो दद्यात् सुतः पिण्डान् दिनेषु दशसु द्विज । प्रत्यहन्ते विभज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम
॥४७॥ भागद्वयं तु देहस्य पुष्टिदं भूतपञ्चके ॥ जन्तुर्निष्पन्नदेहश्च दशमे बलमाप्नुयात्
॥४८॥ दग्धदेहे पुनर्देहः पिण्डैरुत्पद्यते खग ॥ हस्तमात्रः पुमान्येन पथि भुङ्क्ते शुभा-

मनुष्य नहीं पाता है इसी से क्षुधा तृषा को शान्ति न होकर व्याकुलता बनी रहती है ॥४४॥ पिण्डदान जलांजलि न मिलने से प्रेत की देह पाक निर्जन वन में कल्प भर शीत, वात, आतप आदि दुःखों के सहित भ्रमण करता है ॥४५॥ करोड़ों कल्प के बीत जाने पर भी विना भोग किये कर्मों का नाश नहीं होता है और नरकों का भोग बिना किये मनुष्य का जन्म भी नहीं मिलता है ॥४६॥ इसी कारण दश दिन पर्यन्त पिण्डदान करता है। हे गरुड़! उस दिये हुए प्रतिदिन के पिण्ड का चार भाग होता है ॥४७॥ उन श्राद्धों का दो भाग भूतों के लिये मिलता है जिससे शरीर की पुष्टि होती है, तीसरा भाग यमदूतों के लिये मिलता है और चौथा भाग उस जीव को भोजन के लिये मिलता है ॥४८॥ इस प्रकार नव दिन के दिये श्राद्ध का चौथा भाग उस प्रेत को खाने को मिलता है दशवें दिन के दिये श्राद्ध से प्रेत की देह बनती है और उस जीव को चलने की सामर्थ्य होती है ॥४९॥ हे पक्षिराज! पूर्व शरीर के

शुभम् ॥५०॥ प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्धा प्रजायते । ग्रीवास्कन्धौ द्वितीयेन तृतीयाद्धृदयो भवेत् ॥५१॥ चतुर्थेन भवेत्पृष्ठं पञ्चमान्नाभिरेव च ॥ षष्ठेन च कटी गुह्यं सप्तमात्सक्थिनी भवेत् ॥५२॥ जानुपादौ तथा द्वाभ्यां दशमेऽह्नि क्षुधातृषा ॥ पिण्डजं देहमाश्रित्य क्षुधाविष्टस्तृषार्दितः ॥५३॥ एकादशं द्वादशञ्च प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वये ॥ त्रयोदशेऽहनि प्रेतो यन्त्रितो यमकिङ्करैः ॥५४॥ तस्मिन् मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव

नाश हो जाने पर उन्हीं दान किये हुए पिण्डों से फिर भी उस जीव को देह मिलता है वह जीव हाथ भरके शरीर को पाकर यमलोक में अपने किये शुभ और अशुभ कर्मों के फल को भोगता है ॥५०॥ दश दिन के दिये पिण्ड से जिस प्रकार शरीर बनता है उसको सुनिये—प्रथम दिन के श्राद्ध से शिर दूसरे दिन के पिण्ड से गर्दन और कन्धा तीसरे दिन छाती ॥५१॥ चौथे दिन पीठ पाँचवें दिन नाभी बनती है, छठवें दिन कटि (कमर) और गुदा, लिंग, और भग तथा मांस पिण्ड आदि बनता है सातवें दिन सब प्रकार की हड्डियाँ बन जाती हैं ॥५२॥ आठवें और नवें दिन के दो पिण्ड से दोनों जंघा और पैर बनता है, दशवें दिन के पिण्ड से उस नवीन देह में क्षुधा तृषा तैयार होती है ॥५३॥ पिण्डों से उत्पन्न देह का अवलंब लेकर क्षुधा तृषा से पीड़ित जीव ग्यारहवें और बारहवें दिन के श्राद्ध को विभाग करके दो दिन में भोजन करता है ॥५४॥ तेरहवें दिन के कृत्य कार्य को देखकर यमदूतों के पास में बँधा हुआ वह जीव बँधे हुए बन्दर के समान अकेला यमलोक में जाता है उसी देह को यातना का शरीर कहते हैं ॥५५॥ हे तार्क्ष्य !

मर्कटः ॥५५॥ षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ॥ यममार्गस्य विस्तारो विना वैतरणीं खग ॥५६॥ अहन्यहनि वै प्रेतो योजनानां शतद्वयम् ॥ चत्वारिंशत्तथा सप्त-दिवारात्रेण गच्छति ॥५७॥ अतीत्य क्रमशो मार्गे पुराणीमानि षोडश । प्रयाति धर्म-राजस्य भवनं पातकी जनः ॥५८॥ सौम्यं सौरिपुरं नगेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमं क्रौञ्चं क्रूरपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम् । नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं शीताढ्यं बहुभीतिधर्मभवनं याम्यं पुरं चाग्रतः ॥५९॥ याम्यपाशैर्धृतः पापी हाहेति प्ररुदन् पथि ।

वैतरणी के विस्तार को छोड़कर केवल यमलोक छियासी ८६ हजार कोश के विस्तार में हैं उतने ही विस्तार में अट्ठाईस नरक और उनमें रहने वाले जीवों से वह लोक पर्याप्त है ॥५६॥ इस पापी जीवको कमसे कम दो सौ सैंतालिस २४७ योजन मार्ग दिन रात यमदूतों के संग अनेक प्रकार के कष्ट को सहते हुए चलना पड़ता हैं ॥५७॥ उस मार्ग में चलते समय चलने वालों को सोलह ग्राम बीच में पड़ते हैं उन ग्रामों को लाँघकर तब वह जीव धर्मराज के नगर में पहुँचता है ॥५८॥ शौम्यपुर १ सौरिपुर २ नगेन्द्रभवन ३ गन्धर्वशैल ४ आगम ५ क्रौञ्च ६ क्रूरपुर ७ विचित्र भवन ८ बह्वापदनगर ९ दुःखभवन १० नानाक्रन्दपुर ११ सुतप्तभवन १२ रौद्र-नगर । १३ पयोवर्षणपुर १४ शीताढ्यनगर १५ बहुभीतिपुर १६ इन नगरों को लाँघकर आगे धर्मराज के नगर हैं ॥५९॥ यमदूतों

स्वगृहं तु परित्यज्य पुरं याम्यमनुव्रजेत् ॥६०॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां दुःखनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

गरुड उवाच ॥ कीदृशो यमलोकस्य पन्थां भवति दुःखदः । यत्र यान्ति यथा पापास्तन्मे कथय केशव ॥१॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यममार्गं महद्दुःखप्रदं ते कथयाम्यहम् ॥ मम भक्तोऽसि तच्छ्रुत्वा त्वं भविष्यसि कम्पितः ॥२॥ वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः ॥ यस्मिन्मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् समुद्धरेत् ॥३॥ जलं न दृश्यते

के जाल में बँधा हुआ वह जीव हाहाकार करके रोता हुआ अपने गृह को परित्याग करके यमराज के पुर को जाता है ॥६०॥

इस प्रकार गरुडपुराण का भाषाटीका सहित प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

हाथ जोड़कर बड़े नम्र भाव से भयभीत हो कर गरुड़ जी बोले—हे भगवन् ! कितने तरह की यातना देनेवाला यमलोक है और पापी जीव उन यातनाओं को किस प्रकार भोगते हैं हे केशव भगवान् वह सब मुझसे कहो ॥१॥ श्री विष्णुभगवान् ने कहा—हे गरुड़ ! वह यमलोक अत्यन्त दुःख देनेवाला है वहाँ जीवों की यातना विविध प्रकार की होती है उनको सुनने से तुम्हारा हृदय काँप जायगा परन्तु तुम्हारे विशेष आग्रह और प्रेम से मैं कहता हूँ सुनो ॥२॥ उस यमलोक में वृक्षों की छाया नहीं है जहाँ जीव विश्राम कर सके और न तो उस लोक में अन्न आदि है जिससे प्राण का निर्वाह हो सके, ॥३॥ और न तो वहाँ किसी तरह जल

क्वापि तृषितो यत् पिबेज्जलम् ॥ तपते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा खग ॥४॥ तस्मिन् गच्छति पापात्मा शीतवातेन पीडितः ॥ कण्टकैः विध्यते क्वापि क्वचित्सर्पैर्महाविषैः ॥५॥ सिंहैर्व्याघ्रैः श्वभिर्घोरैर्भक्ष्यते क्वापि पापकृत् ॥ वृश्चिकैर्दंश्यते क्वापि क्वचिद्दह्यति वह्निना ॥६॥ ततः क्वचिन्महाघोरमसिपत्रवनं महत् ॥ योजनानां सहस्रे द्वे विस्तीर्णं यदुदाहृतम् ॥७॥ काकोलूकबकव्याघ्रसरघादंशसङ्कुलम् ॥ सदावाग्नि च तत्प-

का आगम है जिससे प्यासे प्राणी पानी पी सके हे गरुड़ ! उस लोक में बारहों कला से सूर्य ऐसे तपते हैं, जैसे प्रलय के अन्त में तपते हैं ॥४॥ उस लोक में यदि दैवात् कभी ठंढी हवा चलती है तो उससे जीवों को अत्यन्त क्लेश होता है . उस दुःख को सहते हुए मार्ग का आक्रमण करते हैं कहीं कहीं बड़े फण विष वाले सर्पों से कटाया जाता है कहीं तीक्ष्ण कंटकों (कांटों) से बेधा जाता है ॥५॥ कहीं सिंह व्याघ्र आदि जन्तुओं के सामने यमदूत उस जीव को आहार रूप में देते हैं और उसे वह खाते हैं कहीं कुत्तों से कटाया जाता है कहीं बिच्छुओं के डंक से और कहीं अग्नि से जलाया जाता है ॥६॥ इन यातनाओं को भोगते हुए उस मार्ग में एक असिपत्र वन है दो हजार योजन जिसका विस्तार है ॥७॥ उस महावन में कौआ, गीध, उल्लू, और मधुमक्खियाँ इनका सदा निवास रहता है और उसके चारों ओर दावाग्नि हर समय लगी रहती है । दंश और मक्खियों के काटने से तथा अग्नि की प्रचण्ड ज्वाला से व्याकुल होकर जब वह जीव उस वृक्ष के नीचे जाता है जिसके पत्ते तलवार के समान चोखे हैं उन वृक्षों के पत्तों को

त्रैश्छिन्नभिन्नः प्रजायते ॥८॥ क्वचित्पतत्यन्धकूपे विकटात्पर्वतात्क्वचित ॥ स याति
क्षुरधारासु शंकूनामुपरि क्वचित ॥९॥ स्खलत्यन्धतमेऽत्युग्रे जले निपतति क्वचित् ॥
क्वचित्पङ्के जलौकाढ्ये क्वचित्सन्तप्तकर्दमे ॥१०॥ सन्तप्तबालुकाकीर्णे ध्मातताम्रायते
क्वचित् ॥ क्वचिदङ्गारराशौ च महाधूमाकुले क्वचित ॥११॥ क्वचिदङ्गारवृष्टिश्च
शिलावृष्टिः सवज्रका ॥ रक्तवृष्टिः शस्त्रवृष्टिः क्वचिदुष्णाम्बुवर्षणम् । क्षारकर्दमवृष्टिश्च
महानिम्नानि च क्वचित । वप्रप्ररोहणं क्वापि कन्दरेषु प्रवेशनम् ॥१२॥ गाढान्धकार-

शरीर में लगने से शरीर कटकर छिन्न भिन्न हो जाता है ॥८॥ वह यातनार्थी शरीर यमदूत द्वारा कहीं अन्धकूप में गिराया जाता है कहीं विकट ऊँचे पर्वतों से गिराया जाता है कहीं छुरी की धार पर से चलाया जाता है कहीं कण्टकों के ऊपर से यमदूत उस जीव को चलने को कहते हैं न चलने पर उसे रस्सी बाँधकर घसीटते हैं ॥९॥ कहीं अन्धकूप में गिराते हैं कहीं जोंकों से भरे कीचड़ में गिराते हैं और जोंकों से कटाते हैं कहीं जलती हुई पृथ्वी में गिराते हैं। १०॥ कहीं जलते हुए बालू में चलाते हैं कहीं तांबे के समान तप्त भूमि पर से चलाते हैं कहीं अग्नि के समूह मे गिरा देते हैं कहीं धुआँ से व्याप्त मार्ग में चलाते हैं। ११ ॥ कहीं उन जीवों पर आग की वर्षा, कहीं पत्थरों की वर्षा, कहीं वज्र का पतन, कहीं रक्तवर्षा, कहीं शस्त्रों की वर्षा, कहीं गरम जल की वर्षा से जीवों को क्लेश देते हैं १२॥ कहीं पर खारे कीच की वर्षा, कहीं बहुत गहरे स्थान में गिराते हैं कहीं बड़े ऊँचे पर्वत से गिराते हैं कहीं

स्तत्रास्ति दुःखारोहशिला क्वचित् ॥ पूयशोणितपूर्णाश्च विष्टापूर्णा ह्रदाः क्वचित् ॥१३॥
मार्गमध्यवहात्युग्रा घोरा वैतरणी नदी । सा दृष्टा दुःखदा किंवा यस्य वार्ता भयावहा
॥१४॥ शतयोजनविस्तीर्णा पूयशोणितवाहिनी ॥ अस्थिवृन्दतटादुर्गा मांसशोणितकर्दमा
॥१५॥ अगाधदुस्तरापापैः केशशैवालदुर्गमा ॥ महाग्राहसमाकीर्णा घोरपक्षिशतैर्वृता
॥१६॥ आगतं पापिनं दृष्ट्वा ज्वालधूमसमाकुला ॥ क्वथते सा नदी तार्क्ष्य कटाहान्त-
र्घृतं यथा ॥१७॥ कृमिभिः संकुलैर्घोरैः सूचीवक्त्रैःसमन्ततः ॥ वज्रतुण्डैर्महागृध्रैर्वा-

अन्धकार पूर्ण पर्वत की कन्दरा में घुमाते हैं ॥१३॥ कहीं अत्यन्त गाढ़ अन्धकार में कहीं दुःख से चढ़ने योग्य पर्वतों पर रक्त और पीब से भरे कुण्ड में और विष्ठा से भरे कुण्ड में जीवों को रहना पड़ता है ॥१४॥ ऐसे दुर्गम मार्ग के बीच में वैतरणी नाम की एक नदी है जो देखने में भय देने वाली है जिसका विस्तार सुनने से मनुष्य के शरीर के रोम खड़े हो जाते हैं ॥१५॥ वह वैतरणी नदी चार सौ कोश की है सौ योजन के विस्तार में पीब और रक्त भरा हुआ है जिसका किनारा हड्डियों से जोड़ा गया है रक्त मांस और पीब की कीचड़ जिसमें भरी है बड़े दुःख से पार होने के जो योग्य हैं ॥१६॥ जिस नदी में मनुष्यों के सिर का केश ही शैवाल (सेवार) है और बड़े २ मगर आदि जलचर जीव जिसमें भरे हैं मांस खानेवाले गिद्ध आदि पक्षियों से जिसका किनारा भरा है ॥१७॥ हे

यस्सैः परिवारिता ॥१८॥ शिशुमारैश्च मकरैर्जलौकामत्स्यकच्छपैः ॥ अन्यैर्जलस्थजीवैश्च पूरितामांसभेदकैः ॥१९॥ पतितास्तत्प्रवाहे च क्रन्दन्ति बहुपायिनः ॥ हा भ्रातः पुत्र तातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः ॥ क्षुधितास्तृषिताः पापाः पिबन्ति किल शोणितम् ॥ सासृग्रुधिरापूरं वहन्ति फेनिलं बहु ॥२१॥ महाघोरातिगर्ज्जन्ति दुर्निरीक्ष्य भयावहा ॥ तस्या दर्शनमात्रेण पापाः स्युर्गतचेतनाः ॥२२॥ बहुवृश्चिकसंकीर्णाः सेविताः कृष्णपन्नगैः॥

गरुड़ ! वह नदी आये हुये पापी को देखकर ऐसी उछलती है जैसे आग से तप्त घी कड़ाहे में खोलता है ॥१८॥ और उसमें रहने वाले जलचर जीव जिनके सुई के समान मुख हैं जिनके चोंच वज्र के समान कठोर हैं ऐसे गिद्ध और काग से वह नदी सँकुल है ॥१९॥ घड़ियाल, मगर, जोंक और कछुआ तथा मछली आदि मांस खाने वाले जीवों से वह आकीर्ण है जिसे देख वह जीव अचेत हो जाता है और उससे किसी प्रकार उद्धार न देखकर हाहाकार करता है ॥२०॥ जब उसे यमदूत बलात्कार से उस नदी में छोड़ते हैं तब वह पापी जीव हे पिता ! हे भाई ! हे पुत्र ऐसा कहकर बार बार चिल्लाता है परन्तु तो भी अपनी रक्षा करने वाला किसी को नहीं देखता है ॥२१॥ जब वह पापी जीव भूख प्यास से क्लेशित होकर यमदूतों से जल और अन्न की प्रार्थना करता है तब वे उसे वहीं रक्त और मांस भोजन को देते हैं । २२॥ महाघोर गर्जन करने वाली देखने में भयानक उस नदी के दर्शन मात्र से जीव

तन्मध्ये पतितानाञ्च त्राता कोऽपि न विद्यते ॥२३॥ आवर्तशतसाहस्रैः पाताले यान्ति पापिनः ॥ क्षणं तिष्ठन्ति पाताले क्षणादुपरिवर्तिनः ॥२४॥ पापिनां पतनायैव निर्मिता सा नदी खग ॥ न पारं दृश्यते तस्या दुस्तरा बहुदुःखदा ॥२५॥ एवं बहुविधक्लेशे यममार्गेऽतिदुःखदे ॥ क्रोशन्तश्च रुदन्तश्च दुःखिता यान्ति पापिनः ॥२६॥ पाशेन यन्त्रिताः केचित्कृष्यमाणास्तथाङ्कुशैः ॥ शस्त्राग्रैः पृष्ठतः प्रोतैर्नीयमानाश्च पापिनः ॥२७॥ नासाग्रे पाशकृष्टाश्च कर्णपाशैस्तथापरे । कालपाशैः कृष्यमाणाः काकैः कृष्यास्तथापरे

अचेत होकर गिर पड़ता है ॥२३॥ जो साँप और बिच्छुओं से भरी है उस नदी में गिरने से पापी जीव की कोई रक्षा नहीं कर सकता है वहाँ अपना किया हुआ शुभ अशुभ कर्म ही रक्षा कर सकता है ॥२४॥ जिस नदी में बड़े बड़े भंवर हैं वह पापी जीव उस नदी के तरङ्ग में पड़कर कभी नीचे अर्थात् रसातल को चला जाता है क्षण भर में फिर ऊपर को आता है उस समय उसका कोई सहायक नहीं होता ॥२५॥ हे गरुड़ ! पापी जीवों के पतन के लिये वह नदी बनाई गई है जिसका पारावार नहीं दिखाई देता ऐसी अत्यन्त दुःख देनेवाली वह नदी है ॥ २६ ॥ जिसमें वर्णन किये हुए अनेक प्रकार के क्लेशों को भोगना पड़ता है ऐसे कठिन दुःखों को भोगने के लिये पापी प्राणी यमलोक को जाता है ॥ २७ ॥ किसी प्राणी को फांश में बाँधकर किसी को अंकुशों में खींचकर किसी

॥२८॥ ग्रीवाबाहुषु पादेषु बद्धाः पृष्ठेषु श‍ृङ्खलैः॥अयोभारञ्च ये केचिद्वहन्तः पथि यान्ति ये ॥२९॥ यमदूतैर्महाघोरैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः॥वमन्तं रुधिरं वक्त्रात्तदेवाश्ननन्ति ते पुनः ॥३०॥शोचन्तः स्वानि कर्माणि ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः ॥ अतीवदुःखसम्पन्नाः प्रयान्ति यममन्दिरम् ॥३२॥ तथापि स व्रजन्मार्गे पुत्रपौत्र इति ब्रुवन् ॥ हाहेति प्ररुदन्नित्यमनुतप्यति मन्दधीः ॥३३॥ महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ॥ तत्प्राप्य न कृतो

के अंग का शस्त्रों से छेदन करते हुए पापी प्राणी को यमदूत यमलोक में ले जाते हैं ॥ २८ ॥ किसी प्राणी की नाक छेदकर उसमें डोरी बाँधकर किसी के कान में रस्सी बाँधकर किसी को फांसी लगाकर मार्ग में ऐसे खींचते हैं जैसे काल की पाश से मनुष्य का प्राण खींचा जाता है ॥ २९ ॥ किसी की गर्दन, भुजा और पाँव को बाँधकर उसके सिर पर लोह का भार लाद देते हैं तब उस प्राणी को मार्ग में चलने के लिये कहते हैं ॥ ३० ॥ जब वह जीव चलने में असमर्थ होकर यमदूतों से प्रार्थना करता है तब वह उसे मुद्गरों से मारते हैं पापी जीव अत्यन्त दुःखी होकर मुख से रुधिर गिराता है और उसीको खाता है ॥ ३१ ॥ फिर अपने किये कर्मों को सोचकर बहुत ग्लानि करके अनेक प्रकार की यातनाओं को भोगता हुआ वह प्राणी यमलोक को जाता है ॥ ३२ ॥ वह मूढ़ और पापी यम मार्ग में जाता हुआ अपने परिवार वालों के नाम को स्मरण करके पुकारता है फिर वहाँ किसी को न देखकर रोदन और वेदना प्रकट करता है ॥ ३३ ॥ बहुत उत्कट पुण्य से मनुष्य का जन्म मिलता है सो मनुष्य का जन्म पाकर भी मैंने कोई शुभ कर्म

धर्मः कीदृशं हि मया कृतम् ॥३४॥ मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं त्रिदशा न पूजिताः ॥ न तीर्थसेवा विहिता विधानतो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्वया कृतम् ॥३५॥ न पूजिता विप्रगणाः सुरापगा न चाश्रिता सत्पुरुषा न सेविताः ॥ परोपकारो न कृतः कदाचन देहिन् क्वचिन्निरतर यत्त्वया कृतम् ॥३६॥ जलाशयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे । गोविप्रवृत्त्यर्थमकारि नाण्वपि देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्वया कृतम् ॥३७॥ न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेदशास्त्रार्थवचः

नहीं किया जिससे इस लोक का दुःख न भोगना पड़ता ॥ ३४ ॥ जीव के विलाप और रोने को सुनकर यमदूत कहते हैं हे देही ! तूने कुछ दान नहीं किया, न तो अग्नि में हवन किया, न तपस्या की और न तो देवताओं का पूजन किया, न तीर्थों में जाकर स्नान किया, इसीसे हे जीव ! अपने किये कर्मों के फल को भोगो ॥ ३५ ॥ न तो ब्राह्मणों का पूजन किया, न कभी गंगा स्नान किया न साधुओं की सेवा की और न तो कभी किसी का परोपकार किया इस लिये हे देही ! अपने किये हुए कर्मों के फल को भोगो ॥ ३६ ॥ न तो पशु पक्षियों के लिये जलाशय बनवाया, न तो ब्राह्मणों की जीविका के लिये कुछ वृत्ति दी इस कारण हे जीव ! अपने किये हुए कर्मों के फल का भोग करो ॥ ३७ ॥ न तो कभी अन्न दान किया न गौओं को पर्याप्त तृण खाने को दिया न

प्रमाणितम् ॥ श्रुतं पुराणं न च पूजितो ज्ञो देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३८॥ भर्तुर्मया नैव कृतं हितं वचः पतिव्रतं नैव कदापि पालितम् ॥ न गौरवं क्वापि कृतं गुरूचितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥३९॥ न धर्मबुध्या पतिरेव सेवितो वह्निप्रवेशो न कृतो मृते पतौ ॥ वैधव्यमासाद्य तपो न सेवितं देहिन् क्वचिन्निस्तर यत्त्वया कृतम् ॥४०॥ मासोपवासैर्न विशोषितं मया चान्द्रायणैर्वा नियमैः सविस्तरैः ॥ नारीशरीरं बहु दुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः

कभी वेद शास्त्र के अर्थों पर श्रद्धा किया, पुराणों को कानों से नहीं सुना है, न तो पुराण वेत्ताओं का कभी पूजन किया है इससे अपने किये कर्मों के फल को भोगो ॥ ३८ ॥ हे स्त्री रूपी जीव! तूने अपने स्वामी की आज्ञा नहीं मानी है और न तो पातिव्रत धर्म का पालन किया है कभी आदर सत्कार से बड़ों की सेवा नहीं की है, इससे अपने किये हुए कर्मों के फल का भोग करो ॥ ३९ ॥ स्त्रियों का पति देवता है इस बुद्धि से जो स्त्री पति की सेवा नहीं किया अथवा मरने पर सती भी नहीं हुई तथा विधवा होने पर तपस्या नहीं किया इससे हे जीव! कर्मों का फल भोगो ॥ ४० ॥ यमदूतों के ऐसे कठोर बचन को सुनकर वह जीव चिन्ता करता है कि मैंने मासोपवास तथा चान्द्रायण आदि ब्रत को तथा उनके नियमों के पालन से शरीर को कृश नहीं किया, दुःख स्वरूप स्त्री

॥४१॥ एवं विलप्य बहुशः संस्मरन् पूर्वदेहिकम् ॥ मानुषत्वं मम कुत इति क्रोशन् प्रसर्पति ॥४२॥ दशसप्तदिनान्येको वायुवेगेन गच्छति ॥ अष्टादशे दिने तार्क्ष्य प्रेतः सौम्यपुरं व्रजेत् ॥४३॥ तस्मिन्पुरवरे रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान् ॥ पुष्पभद्रानदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥४४॥ पुरे तत्र सविश्रामं प्राप्यते यमकिंकरैः ॥ दारपुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥४५॥ धनानि भृत्यमित्राणि सर्वं शोचति वै यदा ॥ तदा प्रेतांस्तु तत्रत्याः किंकराश्चेदमब्रुवन् ॥४६॥ क्व धनं क्व सुता जाया क्व

के शरीर को पूर्व में किये पाप से पाया है । ४१ ॥ इस प्रकार विलाप करता हुआ जीव अपने पूर्व शरीर को स्मरण करके कहता है कि मेरी पूर्व शरीर कहाँ चली गई ऐसा कहकर यम मार्ग को चलता है ॥ ४२ ॥ वह प्रेत वायु के समान वेग से सत्रह दिन तक जब चलता है तब अठारहें दिन वह जीव सौम्यपुर में पहुँचता है ॥ ४३ ॥ उस नगर में प्रेतों के गण रहते हैं वहीं पुष्पभद्रा नाम की नदी है वहीं पर अत्यन्त सुखकारी और प्रिय दर्शन एक बट का वृक्ष है ॥ ४४ ॥ यमदूतों के सहित वह जीव उस बट वृक्ष के नीचे विश्राम करता है और स्त्री पुत्र आदि के सुख को स्मरण करके अत्यन्त दुःखित होता है और अपने किये कर्मों की यातना भोगता है ॥ ४५ ॥ जब प्राणी धन परिवार मित्र सेवक आदि की चिन्ता करता है तब वे यमदूत कहते हैं कि जिनकी चिन्ता तू इस समय

सुहृत्क्व च बान्धवाः ॥ स्वकर्मोपार्जितं भोक्ता मूढ याहि चिरं पथि ॥४७॥ जानासि सम्बलबलं बलमध्वगानां नो सम्बलाय यतसे परलोकपान्थ ॥ गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेव तेन मार्गेण यत्र भवतः क्रयविक्रयौ हि ॥४८॥ आबालख्यातमार्गोऽयं नैव मर्त्य श्रुतस्त्वया ॥ पुराणसंभवं वाक्यं किं द्विजेभ्योऽपि न श्रुतम् ॥४९॥ एवमुक्तस्ततो-दूतैस्ताड्यमानश्च मुद्गरैः ॥ निपतन्नुत्पतन् धावन् पाशैराकृष्यते बलात् ॥५०॥ अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाऽथवा ॥ मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत्

करता है वे तुम्हारे पूर्व देह के साथी इसलोक में कहाँ ? हे मूढ़ अपने किये कर्मों के फल को भोगते हुए एक वर्ष में लाँघने योग्य मार्ग से चलो ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ परलोक के पथिक ! तू यमराज के पराक्रम को नहीं जानता है और तुम्हारे ऐसे पापी प्राणियों के साथ चलने वाले हम सब यमदूत हैं हमारे पराक्रम का भी तू नहीं जानता है तू ने ऐसा शुभ कर्म नहीं किया जिससे यातना न होती ॥ ४८ ॥ यमराम के नाम को तथा यमलोक की यातना को बालक भी जानते हैं क्या तैने यमयातना का नहीं सुना था, कभी ब्राह्मणों के मुख से तैने पुराण भी नहीं सुना है ॥४६॥ ऐसा कहकर यमदूत उस जीव को मुद्गरों से मारते हैं। तब वह जीव मूर्च्छित होकर गिरता फिर उठ कर दौड़ता है तो भी हठ से फाँसी गले में डाल कर घसीटते हैं ॥ ५० ॥ पूर्व स्थान अर्थात् घर से जब तेरहवें

॥५१॥ तत्र नाम्नास्ति राजा वै जंगमः कालरूपधृक् ॥ तं दृष्ट्वा भयभीतोऽसौ विश्रामे कुरुते मतिम् ॥५२॥ उदकं चान्नसंयुक्तं भुंक्ते तत्र पुरे गतः ॥ त्रैपाक्षिके वै यद्दत्तं सतत्पुरमतिक्रमेत् ॥५३॥ ततो नगेन्द्रभवनं प्रेतो याति त्वरान्वितः ॥ वनानि तत्र रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति दुःखितः ॥५४॥ निर्घृणैः कृष्यमाणस्तु रुदते च पुनः पुनः ॥ मासद्वयावसाने तु तत्पुरं व्यथितो व्रजेत् ॥५५॥ भुक्त्वा पिण्डं जलं वस्त्रं दत्तं यद्बान्धवे-

दिन ब्राह्मण भोजन के उपरान्त जीव विदा होकर यमलोक को चलता है तब अठारहवें दिन सौम्यपुर नाम नगर में पहुँचता है वहाँ पहुँच कर पुत्र आदि के दिये हुये मासिक श्राद्ध को भोजन करता है फिर वहाँ से सौरिपुर नगर को रवाना होता है ॥ ५१ ॥ सौरिपुर में यमराज के समान जंगल नाम का एक राजा है उस राजा के स्वरूप को देख कर जीव भयभीत होता है और यमदूतों के सहित वहीं पर विश्राम करता है ॥ ५२ ॥ उस नगर में पहुँच कर घर वालों के दिये हुए अन्न जल को यमदूतों के साथ भोजन करके तीन पक्ष में उस नगर को पार करता है ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त उस जीव को लेकर यमदूत लोग इतनी तेजी से चलते हैं कि पन्द्रह दिन में नगेन्द्र भवन में पहुँचते हैं वहाँ असिपत्र वन है जिसके वृक्षों के पत्ते तलवार के समान हैं उनको देख कर वह जीव अत्यन्त दुःखी होकर रोता और चिल्लाता है ॥ ५४ ॥ निर्दयी यमदूत उस जीव को बार बार खींचते और गले में रस्सी बाँध कर खसीटते ले जाते हैं। उस बन को दो मास में वह प्राणी पार करता है ॥५५॥ उसके बाद परिवार वालों के दिये अन्न-जल और वस्त्र को धारण कर तथा भोजन करके

रिह ॥ कृष्यमाणः पुनः पाशैर्नीयतेऽग्रे च किङ्करैः ॥ ५६ ॥ मासे तृतीये सम्प्राप्ते
प्राप्य गन्धर्वपत्तनम् ॥ तृतीयं मासिकं पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ॥ ५७ ॥ शैलागमं
चतुर्थे च मासि प्राप्नोति वै पुरम् ॥ पाषाणास्तत्र वर्षन्ति प्रेतस्योपरि भूरिशः ॥ ५८ ॥
चतुर्थं मासिकं पिण्डं भुक्त्वा किञ्चित् सुखी भवेत् ॥ ततो याति पुरं प्रेतः क्रौञ्च—
मासेऽथ पञ्चमैः ॥ ५९ ॥ हस्तदत्तं तदा भुङ्क्ते प्रेतः क्रौञ्चपुरे स्थितः ॥ यत्पञ्च-
मासिकं पिण्डं भुक्त्वा क्रूरपुरं व्रजेत् ॥ ६० ॥ सार्द्धैः पञ्चभिर्मासैन्यूर्नषाण्मा-

वहाँ कुछ देर तक विश्राम करता है फिर उन्हीं यमदूतों के साथ आगे को चलता है ॥५६॥ तीसरे मास में वह प्रेत गन्धर्वपत्तनपुर में पहुँचता है वहां पहुँच कर परिवार वालों के दिये अन्न जल को भोजन करके वहाँ से आगे चलता है ।५७॥ चौथे मास में शैलपुर नामक नगर में पहुँचता है वहाँ पत्थरों की वर्षा से जीव अत्यन्त पीड़ित होता है ॥५८॥ और चौथे मास के दिये पिण्ड को भोजन कर कुछ सुख पूर्वक विश्राम करता है फिर वहाँ से रवाना होकर पाँचवें महीने में वह जीव क्रौञ्चपुर नामक नगर में पहुँचता है ॥ ५९ ॥ वहाँ पाँचवें महीने के दिये श्राद्ध आदि को भोजन करके क्रूरपुर में पहुँचता है उस नगर में अत्यन्त निर्दयी प्राणी रहते हैं ॥ ६० । साढ़े पाँच महीने में दिये हुए अन्न जल से क्षुधा को शान्त करके आधे मुहूर्त तक वहाँ विश्राम करके फिर वह यमदूतों के साथ आगे को चलता

सिकं व्रजेत् ॥ तत्र दत्तेन पिण्डेन घटेनाप्यायितः स्थितः ॥ ६१ ॥ मुहूर्तार्द्धन्तु विश्रम्य कम्पमानः सुदुःखितः ॥ तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः ॥ ६२ ॥ प्रयाति चित्रभवनं विचित्रोनाम पार्थिवः ॥ यमस्यैवानुजो भ्राता यत्र राज्यं प्रशास्ति हि ॥ ६३ ॥ तं विलोक्य महाकायं यदाभीतः पलायते । तदा सम्मुख आगत्य कैवर्ता इदमब्रुवन् ॥ ६४ ॥ वयं ते तर्तुकामाय महावैतरणीं नदीम् ॥ नावमादाय सम्प्राप्ता यदि ते पुण्यमीदृशम् ॥ ६५ ॥ दानं वितरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ इयं सा तीर्यते यस्मात्तस्माद् वैतरणी स्मृता ॥ ६६ ॥ यदि त्वया प्रदत्ता गौस्तदा नौरुपसर्पति ॥

है ॥ ६१ ॥ फिर वहाँ आधे क्षण तक ठहर कर यमदूतों की ताड़ना से काँपता हुआ अति दुःखित होता है फिर यमदूतों से खसीटने पर आगे को चलता है ॥ ६२ ॥ वहाँ से चित्रभवन नाम नगर में पहुँचताहै जहाँ यमराज के लघु भ्राता विचित्र नाम के यमराज राज्य करते हैं ॥ ६३ ॥ उस नगर में बड़े विशाल शरीर वाले मनुष्यों को देख कर वह जीव भय के मारे भागना चाहता है परन्तु यमदूतों के वश में पड़ कर असमर्थ हो जाता है वहाँ पर वैतरणी नाम की नदी है । उस नदी को खेने वाले मलाह प्रेत के सामने आकर कहते हैं ॥ ६४ ॥ कि हम लोग वैतरणी को खेने वाले हैं और यही नौका है यदि तुम्हारा पुण्य हो तो इस नौका पर बैठ जाओ ॥६५॥

नान्यथेति वचस्तेषां श्रुत्वा हा दैव भाषते ॥ ६७ ॥ नद्यां प्रक्षेप्तुकामास्तं तान् दृष्ट्वा सोऽति क्रदन्ते ॥ अदत्तदानः पापात्मा तस्यामेव निमज्जति ॥ ६८ ॥ तन्मुखे कण्टकं दत्वा दूतैराकाशसंस्थितैः ॥ बडिशेन यथा मत्स्यस्तथा पारं प्रणीयते ॥ ६९ ॥ षाण्मासिकञ्च यत्पिण्डं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति ॥ मार्गे स विलपन्याति बुभुक्षापीडितो-ह्यलम् ॥ ७० ॥ सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बह्वापदं व्रजेत् ॥ तत्र भुङ्क्ते प्रदत्तं यत्सप्तमे

तत्त्व को देखने वाले मुनियों ने दान को वितरण कहा है उस दान से जिसमें तरी जाय उसको वैतरणी कहते हैं ॥ ६६ ॥ मलाह रूपी जीव उस जीव से कहते हैं कि यदि तू ने गौ का दान दिया है तो नौका निःसन्देह आवे उन मलाहों के वचन को सुन कर वह जीव हाय हाय करता है ॥ ६७ ॥ तब उसे यमदूत वैतरणी में छोड़ना चाहते हैं उससे वह जीव चिल्लाता है जो मनुष्य दान नहीं दिया है वह उस नदी में डूब जाता है ॥ ६८ ॥ फिर आकाश से चलने वाले यमदूत उस प्रेत को कटिया में फँसा कर मछली की तरह खसीट कर उसे नदी के पार पहुँचाते हैं ॥ ६९ ॥ नदी के पार पहुँच कर छठें महीने के दिये पिण्ड आदि को खाकर वह जीव आगे चलता है फिर मार्ग चलने से थकित और भूख से व्याकुल होकर अत्यन्त विलाप करता है ॥ ७० ॥ फिर सातवें महीने में शीत, वात, आतप, को सहन करता हुआ बह्वापद नाम नगर में पहुँचता है वहाँ सातवें महीने के दिये हुये श्राद्ध आदि का भोजन करके कुछ खुस होता है ॥ ७१ ॥ हे गगन में चलने वाले गरुड़ ! उस नगर में से चलायमान होकर वह बहु दुःखद नाम नगर में पहुँचता है वहाँ

मासि पुत्रकैः ॥ ७१ ॥ तत्पुरं तु व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमृच्छति ॥ महद्दुःखमवाप्नोति खे गच्छन्खेचरेश्वर ॥ ७२ ॥ मास्यष्टमे प्रदत्तं यत्पिण्डं भुक्त्वा प्रसर्पति ॥ नवमे मासि संपूर्णे नानाक्रन्दपुरं व्रजेत् ॥ ७३ ॥ नानाक्रन्दगणान् दृष्ट्वा क्रन्दमानान्सुदारुणान् । स्वयं च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुःखितः ॥ ७४ ॥ विहाय तत्पुरं प्रेतस्तर्जितो यमकिङ्करैः ॥ सुतप्तभवनं गच्छेद्दशमे मासि कृच्छ्रतः ॥ ७५ ॥ पिण्डदानं जलं तत्र भुक्त्वापि न सुखी भवेत् ॥ मासि चैकादशे पूर्णे पुरं रौद्रं स गच्छति ॥ ७६ ॥ दशैक-

आकाश मार्ग से चलने में अनेकों प्रकार के दुःखों को भोगता है ।७२॥ वहीं पर आठवें महीने के दिये अन्न और जल से क्षुधा तृषा की कुछ शान्ति करके वह जीव आगे को चलता है और नवाँ महीना पूर्ण होते हुए नानाक्रन्दपुर को पहुँचता है ॥ ७३ ॥ उस नगर के निवास करने वाले क्रन्द गणों को देख कर वह जीव भय से व्याकुल होकर रोता और चिल्लाता है तथा चारों ओर ताकने पर भी अपना सहायक किसी को नहीं देखता है ॥ ७४ ॥ यमदूतों के धमकाने पर मार्ग चलने को तैयार होता है तब बड़े कष्ट से दसवें महीने में सुतप्त नामक नगर में पहुँचता है ॥ ७५ ॥ फिर दसवें मास के दिये श्राद्ध और जल को खाकर भी तृप्त नहीं होता है तो भी वहाँ से चलायमान होकर ग्यारहवें मास के दान किये श्राद्ध और जल आदि का भोजन करता साढ़े ग्यारह महीना पूरा होते वह जीव पयोवर्षण नाम नगर में पहुँचता है ॥ ७६ ॥ वहाँ जीव को दुःख देने वाले मेघ पत्थरों की वर्षा करते हैं उससे वह प्रेत अत्यन्त पीड़ित

मासिकं तत्र भुंक्ते दत्तं सुतादिभिः ॥ सार्द्धे चैकादशे मासि पयोवर्षणमृच्छति ॥ ७७॥ मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः ॥ न्यूनाब्दिकं च यच्छ्राद्धे तत्र भुंक्ते स दुःखितः ॥ ७८ ॥ सम्पूर्णे तु ततो वर्षे शीताढ्यं नगरं व्रजेत् ॥ हिमाच्छतगुणं तत्र महाशीतं पतत्यपि ॥ ७९ ॥ शीतार्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दशो दिशः ॥ तिष्ठते बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति ॥ ८० ॥ किङ्करास्ते वदन्त्यत्र किंते पुण्यं हि तादृशम् ॥ भुक्त्वा च वार्षिकं पिण्डं धैर्यमालम्बते पुनः ॥ ८१ ॥ ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये ॥ बहुभीतिपुरे गत्वा हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥ ८२ ॥ अङ्गुष्ठमात्रो

होता है और वही पर न्यूनाब्दिक मास के दान किये हुये श्राद्ध और जल को दुःख पूर्वक खाता पीता है ॥ ७७ ॥ वर्ष पूर्ण होते होते वह जीव शीताढ्य नाम नगर में पहुँचता है वहाँ हिमालय से सौ गुना अधिक शीत पड़ता है ॥ ७८ ॥ शीत से दुःखित और भूख पीड़ित होकर चारों तरफ मूढ़ के समान देखता है कि क्या यहाँ हमारे कुटुम्ब के कोई है जो हमारे इस दुःख को दूर कर सकें ॥ ८० ॥ तब उस प्रेत से यमदूत कहते हैं तेरा कुछ पुण्य है जिसके प्रभाव से इस दुःखरूपी यातना से छूट सकता है यमदूतों के कठोर वचन को सुन कर पीड़ित वह जीव वार्षिक में दिये श्राद्ध आदि के भोजन से धैर्य धारण करता है ॥ ८१ ॥ वर्ष के अन्त में वह जीव

वायुश्च कर्मभोगाय खेचरः ॥ यातनादेहमासाद्य सह याम्यैः प्रयाति च ॥ ८३ ॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप ॥ एवं कष्टेन ते यान्ति गृहीता दृढबन्धनैः
॥ ८४ ॥ धर्मराजपुरे सन्ति चतुर्द्वाराणि खेचर ॥ यत्रायं दक्षिणद्वारमार्गस्ते परि-
कीर्तितः ॥ ८५ ॥ अस्मिन्पथि महाघोरे क्षुत्तृषाश्रमपीडिताः । यथा यान्ति तथा प्रोक्तं
किम्भूयः श्रोमितुच्छसि ॥ ८६ ॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे यममार्गनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

बहुभीति नाम नगर में पहुँच कर हस्तमात्र के शरीर का त्याग करके छोटे शरीर का लाभ करता है ॥८२॥ वह देह यातनार्थी है केवल कर्मों के भोग के लिये अंगुष्ठ मात्र के शरीर को प्राप्त कर यमदूतों के साथ आगे को जाता है । ८३ ॥ हे गरुड़ ! जिसने मरने के समय और्ध्व दैहिक दान नहीं दिया है तथा पूर्व में धर्मोपार्जन नहीं किया है इस कारण यमदूतों के दृढ़ बन्धनों से बँधे बहुत से को कष्ट भोगते हैं ॥ ८४ ॥ हे गरुड़ ! धर्मराज के नगर के चार दरवाजे हैं उनमें हे पापी ! तुझे दक्षिण मार्ग से होकर चलना पड़ेगा ॥ ८५ ॥ ऐसे महाकष्टदायक मार्ग में जैसे प्राणी जाता है फिर वहाँ पहुँचने पर क्या दशा होती है वह सब मैंने तुमसे कहा अब जो सुनने की इच्छा हो वह पूछो ॥ ८६ ॥

इस प्रकार गरुड़पुराण का भाषाटीका सहित दूसरा अध्याय समाप्त ॥ २ ॥

गरुड उवाच ॥ यममार्गमतिक्रम्य गत्वा पापी यमालये ॥ कीदृशीं यातनां भुंक्ते तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आद्यन्तं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व विनतात्मज ।। कथ्यमानेऽपि नरके त्वं भविष्यसि कम्पितः ॥ २ ॥ चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि काश्यप ॥ बहुभीतिपुरादग्रे धर्मराजपुरं महत् ॥ हाहाकारसमायुक्तं दृष्ट्वा क्रन्दति पातकी ॥ तत्क्रन्दितं समाकर्ण्य यमस्य पुरचारिणः ॥ ४ ॥ गत्वा च तत्र ते सर्वे प्रतीहारं वदन्ति हि ॥ धर्मध्वजः प्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥ ५ ॥ स गत्वा

गरुड़जी ने कहा हे प्रभो ! यम मार्ग को लाँघकर जब वह पापी जीव यमलोक में यमराज के पास पहुँचता है तब किस प्रकार की यातना भोगता है वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्रीविष्णु भगवान बोले–हे पक्षिराज ! मैं इन यातनाओं का आद्यन्त वृत्तान्त कहता हूँ सुनिये परन्तु नरकों का वर्णन सुन कर तुमको अवश्य भय होगा ॥ २ ॥ हे गरुड़ ! जब वह जीव बहुभीतिपुर से आगे चलता है जहाँ ४४ योजन के विस्तार में धर्मराज का बड़ा भारी नगर है ॥ ३ ॥ वहाँ धर्मराज के नगर में पहुँच कर वह जीव अत्यन्त हाहाकार करके चिल्लाता है उसके हाहाकार को सुनकर यमपुर में विहार करने वाले ॥ ४ ॥ धर्मध्वज नाम के जो द्वारपाल वहाँ रहते हैं उससे उस जीव की सब अवस्था का वर्णन करते हैं ॥ ५ ॥ वह धर्मध्वज नाम के द्वारपाल जाकर उस जीव के अशुभ कर्मों को चित्रगुप्त

चित्रगुप्ताय ब्रूते तस्य शुभाशुभम् ॥ ततस्तं चित्रगुप्तोऽपि धर्मराजं निवेदयेत् ॥ ६ ॥ नास्तिका ये नरास्तार्क्ष्य महापापरताः सदा ॥ तांश्च सर्वान् यथायोग्यं सम्यग् जानाति धर्मराट् ॥ ७ ॥ तथापि चित्रगुप्ताय तेषां पापं स पृच्छति ॥ चित्रगुप्तोऽपि सर्वज्ञः श्रवणान्परिपृच्छति ॥ ८ ॥ श्रवणा ब्रह्मणः पुत्राः स्वर्भूपातालचारिणः ॥ दूरश्रवण-विज्ञानाद् दूरदर्शनचक्षुषः ॥ ९ ॥ तेषां पत्न्यस्तथाभूताः श्रवण्यः पृथगाह्वयः ॥ १० ॥ नरैः प्रच्छन्नप्रत्यक्षं यत्प्रोक्तं च कृतं च यत् ॥ सर्वमावेदयन्त्येव चित्रगुप्ताय ते च तम् ॥

से कहते हैं। चित्रगुप्त उस प्राणी के नाम और उसके कर्मों को धर्मराज से कहते हैं ॥ ६ ॥ हे गरुड़! जो वेद शास्त्र की निन्दा करने वाले नास्तिक हैं जिनका मन सदा पाप कर्मों में लगा रहता है उन प्राणियों को धर्मराज भी जानते हैं सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, धर्मराज, दिन, रात्रि, दोनों काल की सन्ध्याएँ, मनुष्य के धर्म अधर्म को जानते हैं ॥ ७ ॥ तो भी उनके पापों को चित्रगुप्त से पूछते हैं। ज्ञानदृष्टि से सब कुछ जानने वाले चित्रगुप्त श्रवणा से उस प्राणी के शुभ अशुभ कर्मों को पूछते हैं ॥ ८ ॥ श्रवणा लोग ब्रह्मा के पुत्र हैं ये सब विना किसी विघ्न के स्वर्ग भूमि और पाताल में घूमने वाले हैं इनको दूर से सुनने तथा दूर से देखने का विशेष ज्ञान रहता है ॥ ९ ॥ और उनकी स्त्रियाँ भी उन्हीं लोगों के समान दूर से देखने वाली और सुनने वाली होती हैं वे सब स्त्रियों के रहस्य को अच्छी तरह जानती हैं ॥ १० ॥ ये सब श्रवणा और श्रावणी पुरुष तथा स्त्रियों के छिपे हुये

॥११॥ चारास्ते धर्मराजस्य मनुष्याणां शुभाशुभम् ॥ मनोवाक्कायजं कर्म सर्वं जानन्ति तत्त्वतः ॥ १२ ॥ एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्यामर्त्याधिकारिणाम् ॥ कथयन्ति नृणां कर्म श्रवणाः सत्यवादिनः ॥ १३ ॥ व्रतैर्दानैश्च सत्योक्त्या यस्तोषयति तान्नरः ॥ भवन्ति तस्य ते सौम्याः स्वर्गमोक्षप्रदायिनः ॥ १४ ॥ पापिनां पापकर्माणि ज्ञात्वा ते सत्यवादिनः ॥ धर्मराजपुरः प्रोक्ता जायन्ते दुःखदायिनः ॥ १५ ॥ आदित्यचन्द्रावनिलोऽनलश्च द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च ॥ अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ १६ ॥ धर्मराजश्चित्रगुप्तः श्रवणा भास्करादयः ॥ कायस्थं तत्र पश्यन्ति

तथा प्रकट में किये कर्मों को और सत्य असत्य वचन को सब चित्रगुप्त से कह देते हैं ॥ ११ ॥ गिर- धर्मराज के दूत मनुष्यों के मन से, वचन से और शरीर से किये गये जितने पुण्य पापरूप कर्म हैं उनके सम्पूर्ण तत्वों का जानते हैं और वे दूत सब प्रकार की शक्ति रखने वाले हैं ॥ १२ ॥ जब मनुष्य और देवताओं के कर्मों को सबके अधिकारी सत्य बोलने वालों में धुरीण श्रवणा लोग कह देते हैं ॥ १३ ॥ व्रत, दान, तथा सत्य आदि व्यवहारों से जो मनुष्य उनको प्रसन्न करते हैं उन्हें वे श्रवणा लोग स्वर्ग तथा मोक्ष को देने वाले हैं ॥ १४ ॥ पापियों के पाप कर्म को जानते हुए भी वे श्रवणा धर्मराज के सामने उन्हें लज्जित होते हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि

पापं पुण्यञ्च सर्वशः ॥ १७ ॥ एवं सुनिश्चयं कृत्वा पापिनां पातकं यमः ॥ आहूय तान्निजं रूपं दर्शयत्यतिभीषणम् ॥ १८ ॥ पापिष्ठास्ते प्रपश्यन्ति यमरूपं भयंकरम् ॥ दण्डहस्तं महाकायं माहिषोपरि संस्थितम् ॥ १९ ॥ प्रलयाम्बुदनिर्घोषं कज्जलाचलसन्निभम् ॥ विद्युत्प्रभायुधैर्भीमं द्वात्रिंशद्भुजसंयुतम् ॥ २० ॥ योजनत्रयविस्तारं वापीतुल्यविलोचनम् ॥ दंष्ट्राकरालवदनं रक्ताक्षं दीर्घनासिकम् ॥ २१ ॥ मृत्युर्ज्वरादिभिर्युक्तश्चित्र-

सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, आकाश, भूमि जल आत्मा, और यम, तथा दिन, रात्रि, दोनों काल की सन्ध्या, और धर्म, ये मनुष्यों के सम्पूर्ण चरित्र को जानते हैं ॥ १६॥ धर्मराज, चित्रगुप्त, और श्रवणा तथा सूर्य आदि जो देवता हैं यह शरीर में रहकर मनुष्यों के सम्पूर्ण कर्मों को देखते हैं ॥ १७ ॥ इस तरह पापी मनुष्यों के पापों को जब धर्मराज अच्छी प्रकार से जान लेते हैं तब उस पापी प्राणी को अपने समीप बुलाकर भयङ्कर स्वरूप दिखाते हैं ॥ १८ ॥ वह पापी जीव हाथ में दण्ड लिये बहुत लम्बे शरीर वाले भैंस के ऊपर सवार ऐसे यमराज के भयानक स्वरूप को देखता है ॥ १९ ॥ प्रलय काल के मेघ के समान गर्जन करने वाले और काले पर्वत के समान विशाल शरीर वाले बिजली के सदृश चमकने वाले शस्त्रों के लिये बत्तीस भुजा से युक्त हैं ॥ २० ॥ तीन योजन अर्थात् बारह कोस का जिसके शरीर का विस्तार है, बावली के समान जिनके नेत्र हैं बड़े बड़े भयानक दाँत हैं लाल नेत्र और लम्बी नाक है जिनकी ॥ २१ ॥ काल ज्वर, व्याधि आदि सेना के सहित मन्त्री चित्रगुप्त भी भयानक स्वरूप को धारण किये हैं उनके सम्मुख उस प्राणी

गुप्तोऽपि भीषणः ॥ सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यास्तदन्तिके ॥ २२ ॥ तं दृष्ट्वा भय-
भीतस्तु हाहेति वदते खलः ॥ अदत्तदानः पापात्मा कम्पते क्रन्दते पुनः ॥ २३ ॥ ततो
वदन्ति तान्सर्वान् क्रन्दमानांश्च पापिनः ॥ शोचन्तः स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया
॥२४॥ भो भोः पापा दुराचारा अहङ्कारप्रदूषिताः ॥ किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरवि-
विवेकिभिः ॥ २५ ॥ कामक्रोधाद्यदुत्पन्नं संगमेन च पापिनाम् ॥ तत्पापं दुःखदं मूढाः
किमर्थं चरितं जनाः ॥ २६ ॥ कृतवन्तः पुरा यूयं पापान्यत्यन्तहर्षिताः ॥ तथैव यातना
भोग्याः किमिदानीं पराङ्मुखाः ॥२७॥ कृतानि यानि पापानि युष्माभिः सुबहून्यपि ॥

को दिखा कर यमदूत लोग अत्यन्त गर्जन करते हैं ॥ २२ ॥ उन सबसे भयभीत होकर वह पापी जीव हाय हाय कर पुकारता है दान धर्म न करने से सत्य न बोलने से वह पापी जीव अत्यन्त चिल्लाता है ॥ २३ ॥ अत्यन्त विलाप से रोदन करते और अपने कर्मों को सोचकर पछताते हुए उस जीव से यमराज की आज्ञा को चित्रगुप्त सुनाते हैं ॥ २४ ॥ अरे पापात्मा ! तू ने अहंकार से प्रमत्त होकर अविवेक के द्वारा इन पापों को क्यों इकट्ठा किया है ॥२५॥ काम तथा क्रोध और पापियों की संगति से जिन कर्मों को संचित किया है, वैसे ही प्रसन्न होकर यमकी यातना को भोगो अब क्यों दुःखी होते हो ॥२७॥ तुम्हारे किये पाप ही तुम्हारे दुःख के कारण हैं

तानि पापानि दुःखस्य कारणं न च वञ्चना ॥ २८ ॥ मूर्खेऽपि पण्डिते वापि दरिद्रे वा श्रियान्विते ॥ सबले निर्बले वापि समवर्ती यमः स्मृतः ॥२६॥ चित्रगुप्तस्येति वाक्यं श्रुत्वा ते पापिनस्तदा । शोचन्तः स्वानि कर्माणि तूष्णीं तिष्ठन्ति निश्चलाः ॥ ३० ॥ धर्मराजोऽपि तान्दृष्ट्वा चौरवन्निश्चलान् स्थितान् ॥ आज्ञापयति पापानां शान्तिं चैव यथोचिताम् ॥३१॥ ततस्ते निर्दया दूतांस्ताडयित्वा वदन्ति च ॥ गच्छ पापिन्महाघोरान्नरकानतिभीषणान् ॥ ३२ ॥ यमाज्ञाकारिणो दूताः प्रचण्डचण्डकादयः ॥ एकपाशेन तान्बध्वा नयन्ति नरकान्प्रति ॥३३॥ तत्र वृक्षो महानेको ज्वलदग्निसमप्रभः ॥ पञ्च-

इसमें कुछ बंचना नहीं किया जाता है ॥ २८ ॥ मूर्ख, पण्डित, धनी दरिद्र, प्रबल, निर्बल इनमें यमराज समान बर्ताव करने वाले हैं ॥ ॥ २६ ॥ चित्रगुप्त के वचन को सुन कर वह पापी जीव मौन होकर निश्चल हो जाता है ॥ ३० ॥ तब धर्मराज निश्चल हो चोर के समान बैठे उस प्राणी को देखकर यमराज उसके कर्मों के अनुसार जो योग्य दण्ड है उसकी आज्ञा देते हैं ॥३१॥ यमराज की आज्ञा से चण्ड प्रचण्ड आदि उनके जो निर्दयी दूत हैं वे ताड़ना देकर कहते हैं हे पापी ! तुझे भयानक तथा घोर नरक को चलना होगा ॥३२॥ यह कह कर उस निश्चल प्राणी को एक रस्सी में बाँध कर खसीटते हुए उस नरक को ले जाते हैं। जहाँ से उसका उद्धार होना कठिन है

योजनविस्तीर्णं एकयोजनमुच्छ्रितः ॥ ३४ ॥ तद्वृक्षे शृङ्खलैर्बध्वाऽधोमुखं ताडयन्ति ते ॥ रुदन्ते ज्वलितस्तत्र तेषां त्राता न विद्यते ॥३५॥ तस्मिन्वै शाल्मलीवृक्षे लम्बन्तेऽनेकपापिनः ॥ क्षुत्पिपासापरिश्रान्ता यमदूतैश्च ताडिताः ॥३६॥ क्षमध्वं भो धर्म्मचराः कृताञ्जलिपुटा इति ॥३७॥ पुनः पुनश्च तैर्दूतैर्हन्यन्ते लोहयष्टिभिः ॥ मुद्गरैस्तोमरैः कुन्तैर्गदाभिर्मुसलैर्भृशम् ॥ ३८॥ ताडनाच्चैव निश्चेष्टा मूर्च्छिताश्च भवन्ति ते ॥ तथा निश्चेष्टितान्दृष्ट्वा किङ्करास्ते वदन्ति हि ॥३९॥ भो भो पापाः दुराचाराः किमर्थं

॥ ३३ ॥ जहां एक बड़ा भारी सेमर का वृक्ष है उसकी छाया अग्नि के समान जलती है उस वृक्ष का विस्तार पांच योजन के घेरे में है और उसकी ऊँचाई एक योजन की है ॥३४॥ उस वृक्ष की शाखा में अधोमुख अर्थात् नीचे को मुख करके उस पापी को बाँधकर मुद्गरों से ताड़ना देते हैं। वृक्ष में बँधने से असमर्थ और रोता हुआ जीव अपनी सहायता करने वाला किसी को नहीं देखता है॥३५॥ उस सेमर के वृक्ष की शाखाओं में लटके हुए अनेक पापी यमदूतों से ताड़ित होकर यातना को भोगते हैं और क्षुधा तृषा से पीड़ित होकर सहन करते हैं ॥ ३६ ॥ तब सहायक हीन वे पापी हाथ जोड़ कर यमदूतों से कहते हैं। हे धर्मराज के अनुचरो! हमारे अपराधों को क्षमा करो ॥ ३७ ॥ इस तरह कहने पर भी उन पापी जीवों को वे दूत लाठी, मुद्गर, तोमर, गदा, भाला और मुसल आदि से

दुष्टचेष्टितम् ॥ सुलभानि न दत्तानि जलान्यन्नान्यपि क्वचित् ॥४०॥ ग्रासार्द्धमपि नो दत्तं न श्ववायसयोर्बलिम् ॥नमस्कृता नातिथयो न कृतं पितृतर्पणम् ॥४१॥ यमस्य चित्रगुप्तस्य न कृतं ध्यानमुत्तमम् ॥ न जप्तश्च तयोर्मन्त्रो न भवेद्येन यातना ॥४२॥ नापि किञ्चित्कृतं तीर्थं पूजिता नैव देवताः ॥ गृहाश्रमस्थितेनाऽपि हन्तकारोऽपि नोद्-धृतः ॥४३॥ शुश्रूषिताश्च नो सन्तो भुंक्ष्व पापफलं स्वकम् ॥ यतस्त्वं धर्महीनोऽसि

खूब मारते हैं ॥ ३८ ॥ मारने से वे पापी प्राणी मूर्छा खाकर गिर पड़ते हैं तब उनसे वे यमदूत कहते हैं ॥ ३९ । हे पापी ! मूढ़ ! दुराचारी ! तूने ऐसे दुष्ट कर्मों को क्यों संचित किया है । सबसे सुलभ जो प्यासा को जल देना पीड़ितों की सहायता तुमने क्यों नहीं की ॥४०॥ कभी गौ, कुत्ता, और कौआ इनको आधा ग्रास भी नहीं दिया; आये हुये अतिथि का सत्कार नहीं किया, पितरों को तर्पण और पिण्डदान नहीं किया है ॥ ४१ ॥ हे जीव अपनी यातना छुड़ाने के लिये न तो तूने कभी यमराज और चित्रगुप्त का ध्यान किया, और न तो कभी इनके मन्त्रों का स्मरण किया ॥ ४२ ॥ न कोई तीर्थ किया न तो देवताओं का पूजन किया गृहस्थ होकर भी अन्न दान नहीं किया है जिससे तुझे यह यातना भोगनी नहीं पड़ती ॥४३॥ हे जीव ! तूने कभी सत्पुरुषों की सेवा नहीं की, इससे अपने किये कर्म फल को भोगो, मनुष्य जन्म पाकर अधर्म ही को स्वयं किया है, इससे यमराज की आज्ञानुसार इस दण्ड का भोग करो ॥ ४४ ॥ हरि अर्थात विष्णु भगवान ही मनुष्यों के अपराध को क्षमा कर सकते हैं । हम सब तो उनके आज्ञाकारी और पापी मनुष्यों

ततः सन्ताड्यसे भृशम् ॥४४॥ क्षमापराधं कुरुते भगवान्हरिरीश्वरः ॥ वयन्तु सापराधानां दण्डदा हि तदाज्ञया ॥४५॥ एवमुक्त्वा च ते दूता निर्दयं ताडयन्ति तान् ॥ ज्वलदंगारसदृशा पतितास्ताडनादधः ॥४६॥ पतनात्तस्य पत्रस्य गात्रच्छेदो भवेत्ततः ॥ तानधः पतितान् श्वानो भक्षयन्ति रुदन्ति ते ॥४७॥ रुदन्तस्ते ततो दूतमुखमापूर्य रेणुभिः ॥ निबध्य विविधैः पाशैर्हन्यन्ते केऽपि मुद्गरैः ॥४८॥ पापिनः केऽपि भिद्यन्ते क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा ॥ क्षिप्त्वा चान्ये धरापृष्ठे कुठारैः खण्डशः कृताः ॥४९॥ अर्धं खात्वाऽवटे केचिद् भिद्यन्ते तीक्ष्णसायकैः ॥ अपरे यन्त्रमध्यस्थाः पीड्यन्ते चेक्षु-

को दण्ड देने वाले हैं ॥ ४५ ॥ यह सब कहकर दया से रहित वे यमदूत उस जीव को ताड़ना देते हैं, जिससे वह नीचे गिर जाता है ॥ ४६ ॥ नीचे गिरने से उन वृक्षों के चोखे पत्तों के स्पर्श मात्र से उस जीव का शरीर छिन्न भिन्न हो जाता है। फिर उन प्राणियों को वृक्षके नीचे रहने वाले कुत्ते काटकर खाते हैं जिससे पापी जीव विकल होकर रोता है ॥ ४७ ॥ फिर रोते हुए उस प्रेत के मुखमें धूलि भरकर रस्सियों से बाँध मुद्गरों से मारते हैं और उसके हृदय में शूल गड़ाते हैं ॥४८॥ इसके बाद जैसे काष्ठ चीरा जाता है वैसे किसी जीव को आरा से चीरते हैं किसी को भूमि में गिराकर कुल्हाड़ियों से काटते हैं ॥ ४९ ॥ किसी के आधे शरीर को गड्ढे में

दण्डवत् ॥५०॥ केचित्प्रज्वलमानैस्तु सांगारैः परितो भृशम् ॥ उल्मुकैर्वेष्टयित्वा च ध्मायन्ते लोहपिण्डवत् ॥५१॥ केचिद् घृतमये पाके तैलपाके तथा परे ॥ कटाहक्षिप्त-बटवत् प्रक्षिप्यन्ते यतस्ततः ॥५२॥ केचिन्मत्तगजेन्द्राणां क्षिप्यंते पुरतः पथि ॥ बद्ध्वा हस्तौ च पादौ च क्रियंते केऽप्यधोमुखाः॥५३॥ क्षिप्यंते केऽपि कूपेषु पात्यंते केऽपि पर्वतात् ॥ निमग्नाः कृमिकुण्डेषु तुद्यन्ते कृमिभिः परे ॥ ५४ ॥ वज्रतुण्डैर्महाकाकैर्गृध्रैरामिषगृध्नुभिः ॥ निष्कुष्यन्ते शिरोदेशे नेत्रे वास्य च चञ्चुभिः ॥ ५५ ॥ ऋणं वै प्रार्थय-

गाड़ कर उसके सिर में तीर से बेधते हैं किसी को कोल्हू में डालकर ऊँख के समान पेरते हैं ॥ ५० ॥ किसी का अंगार सहित जलती हुई लकड़ियों को इकट्ठा करके लोहे के गोला के समान बीच में रखकर तपाते हैं ॥ ५१ ॥ किसी को घी के कड़ाहे में किसी को तेल के कड़ाहे में डाल कर बारा के समान इधर उधर चलाते हैं ॥ ५२ ॥ किसी को मार्ग में मतवाले हाथी के आगे डाल देते हैं और किसी के हाथ पैर को बाँध कर मुख नीचे लटका देते हैं ॥ ५३ ॥ किसी को गहरे कुएँ में डाल देते हैं किसी जीव को ऊँचे पर्वत पर से गिरा देते हैं किसी को कीड़ों से भरे कुण्ड में डुबा देते हैं किसी को सुई के समान मुखवाले कीड़ों से कटवाते हैं ॥ ५४ ॥ आमिष (माँस) को चाहने वाले बड़े बड़े गिद्ध और काक जिनके चोंच वज्र के समान कठोर हैं वे उस पापी जीव के माँस को नोचते हैं तथा

न्त्यन्ये देहि देहि धनं मम ॥ यमलोके मया दृष्टो धनं मे भक्षितं त्वया ॥ ५६ ॥ एवं विवदमानानां पापिनां नरकालये ॥ क्षिप्त्वा संदंशकैर्दूता मांसखण्डान् केरन्ति च ॥५७॥ एवं संताड्य तान्दूताः संकृष्य यमशासनात् ॥ तामिस्रादिषु घोरेषु क्षिप्यंते नरकेषु च ॥५८॥ नरका दुःखबहुलास्तत्र वृक्षसमीपतः ॥ तेष्वस्ति यन्महद्दुःखं तद्वाचामप्यगोचरम् ॥५९॥ चतुरशीतिलक्षाणि नरकाः सन्ति खेचर ॥ तेषां मध्ये घोरतमा धौरेयास्त्वेकविंशतिः ॥ ६० ॥ तामिस्रो लोहशंकुश्च महारौरवशाल्मली ॥ रौरवः कुड्मलः काल-

आँखों में ठोर मारते तथा उसके मुख के माँस को चोंथते हैं ॥ ५५ ॥ जिसके ऋण को खाकर मनुष्य मर जाता है अथवा जो किसी का धरोहर नहीं देता है उससे वे सब माँगते हैं कि मैंने तुमको आज यमलोक में देखा है ॥ ५६ ॥ जब नरक में इस तरह का झगड़ा होने लगता है तब यमदूत सड़सी से उसके माँस को काट कर उन सब माँगने वाले को देते हैं ॥ ५७ ॥ यमराज की आज्ञा से यमदूत उन पापी प्राणियों को इस प्रकार ताड़ना करके अन्धतामिस्र आदि नरकों में डाल देते हैं ॥ ५८ ॥ नरकों में तो अनेक प्रकार के दुःख भोगने ही पड़ते हैं परन्तु उससे मूल वृक्ष के नीचे जो यातना होती है वह मुख से कहते नहीं बनती ॥ ५९ ॥ हे गरुड़ ! नरक तो चौरासी लाख हैं उनमें घोर कष्ट देनेवाले ये इक्कीस मुख्य हैं ॥ ६० ॥ तामिस्र १ लोहकील २ महारौरव ३ शाल्मली ४ रौरव ५

सूत्रकः पूतिमृत्तिकः ॥ ६१ ॥ संघातो लोहितोदश्च सविषः संप्रतापनः ॥ महानिरयका-
कोलौ संजीवनमहापथौ ॥ ६२ ॥ अवीचिरन्धतामिस्रः कुम्भीपाकस्तथैव च ॥ संप्रतापन-
नामैकस्तपनस्त्वेकविंशतिम् ॥ ६३ ॥ नानापीडामयाः सर्वे नानाभेदैः प्रकल्पिताः ॥
नानापापविपाकाश्च किङ्करौघैरधिष्ठिताः ॥ ६४ ॥ एतेषु पतिता मूढाः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः ॥
तत्र भुञ्जंति कल्पांते तास्ताः नरकयातनाः ॥ ६५ ॥ यास्तामिस्रांधतामिस्रा रौरवाद्याश्च
यातनाः ॥ भुङ्क्ते नरो वा नारी वा मिथः संगेन निर्मिताः ॥ ६६ ॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राणा

कुड्मल ६ कालसूत्र ७ पूत्तिमृत्तिक ८ । ६१ ॥ संघात ९ लोहितोद १० सविष ११ संप्रतापन १२ महानिरय १३ काकोल १४ संजीव १५ महापथ १६ ॥ ६२ ॥ आवीच १७ अन्धतामिस्र १८ कुंभीपाक १९ संप्रतापन २० तपन २१ इतने नाम हैं ॥ ६३ ॥ इन इक्कीस नरकों में अनेक प्रकार की यातना जीवों को भोगनी पड़ती है ये नरक अनेक प्रकार के पापों के फलको यमदूतों के साथ देनेवाले हैं । ६४ ॥ इन नरकों में पड़ा हुआ अज्ञानी मूढ़ पापी जीव जो धर्म को नहीं जानता धर्म कार्य करने से विमुख रहता है उसे इन नरकों की यातना कल्प भर भोगनी पड़ती है ॥ ६५ ॥ तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, आदि जितने नरक हैं उनका भोग स्त्री पुरुष के संयोग से होता है ॥ ६६ । पाप से परिवार का पालन करने वाले तथा कुटुम्बियों को न देकर केवल अपना पेट भरने वाले जो

उदरम्भर एव वा ॥ विसृज्येहोभयं प्रेत्य भुंक्ते तत्फलमीदृशम् ॥६७॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वं कलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयो भूतद्रोहेण यद्धृतम् ॥६८॥ दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ॥ भुंक्ते कुटुम्बपोषस्य हृतद्रव्य इवातुरः ॥६९॥ केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः ॥ याति जीवोऽन्धतामिस्रं चरमं तमसः पदम् ॥७०॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावत्यो यातनादयः ॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्राव्रजेच्छुचिः ॥७१॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यमयातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

दोनों प्रकार के मनुष्य हैं उनको ये नरकों का भोग भोगना पड़ता है ॥ ६७ ॥ यातना भोगने वाला जो शरीर है उसको अन्धकार स्वरूप इसी लोक में छोड़कर अन्धतम नरक को जाते हैं और जो प्राणियों के द्रोह से अपने लिये राह खर्च लेते हैं वह उत्तम नहीं है ॥ ६८ ॥ जो केवल अधर्म के द्वारा सदा कुटुम्ब का पालन करते हैं वह प्राणी सबसे अन्त में अन्धतामिस्र नरक को जाता है ॥ ६९ ॥ पहिले यातनाओं के द्वारा नरकों का भोग भोग कर जब पवित्र होता है तब मनुष्य लोक में जन्म मिलता है । ७० ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे यातनानिरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

गरुड उवाच ॥ कैर्गच्छन्ति महामार्गे वैतरण्यां पतन्ति कैः ॥ कैः पापैर्नरकं यान्ति तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ सदैवाकर्मनिरताः शुभकर्मपराङ्मुखाः ॥ नरकान्नरकं यान्ति दुःखाद्दुःखं भयाद् भयम् ॥ २ ॥ धर्मराजपुरे यान्ति त्रिभिर्द्वारैस्तु धार्मिकाः । पापास्तु दक्षिणद्वारमार्गेणैव व्रजन्ति तत् ॥ ३ ॥ अस्मिन्नेव महादुःखे मार्गे वैतरणी नदी । तत्र ये पापिनो यान्ति तानहं कथयामि ते ॥ ४ ॥ ब्रह्मघ्नाश्च सुरापाश्च

जीवों की यातना से डरकर गरुड़जी ने विष्णुभगवान से पूछा—हे प्रभो ! कौन कौन पापों से जीव इस यममार्ग में जाते हैं और कौन से पापों से वैतरणी में तैरना पड़ता है और किन पापों से अन्धतामिस्र आदि नरक भोगने पड़ते हैं, इसे विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये ॥ १ ॥ विष्णुभगवान ने कहा हे गरुड़ ! जो मनुष्य सदा कुकर्म का विचार करते हैं और शुभकर्मों से वञ्चित होकर अशुभ कर्मों का पालन करते हैं, वे मनुष्य मरने पर एक नरक से दूसरे नरक में एक दुःख से दूसरे दुःख और एक भय से दूसरे भय को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ धर्मात्मा जीव तीन मार्ग अर्थात् पूर्व, पश्चिम, तथा उत्तर के द्वार से यमराज के लोक को जाते हैं और पापी प्राणी केवल दक्षिण के द्वार से ही यमलोक को जाते हैं वह मैं तुमसे कहता हूँ सुनो ॥ ३ ॥ दक्षिण से जाने वाले जीवों के मार्ग में वैतरणी नदी है जो महा दुःख देनेवाली है उसमें जो पापी जाते हैं उनके कर्मों को कहता हूँ ॥ ४ ॥ ब्राह्मण, गौ, बालक इनका घात करने वाले तथा व्यभिचार से गर्भपात कराने वाले इसके अतिरिक्त और गुप्त पापों का करने वाले जीव वैतरणी को जाते हैं

गोघ्ना वा बालघातकाः ॥ स्त्रीघाती गर्भघाती च ये च प्रच्छन्नपापिनः ॥५॥ ये हरन्ति गुरोर्द्रव्यं देवद्रव्यं द्विजस्य वा । स्त्रीद्रव्यहारिणो ये च बालद्रव्यहराश्च ये ॥ ६ ॥ ये ऋणं न प्रयच्छन्ति ये वै न्यासापहारकाः । विश्वासघातका ये च सविषान्नेन मारकाः ॥ ७॥ दोषग्राही गुणश्लाघी गुणवत्सु समत्सराः । नीचानुरागिणो मूढाः सत्संगातपराङ्मुखाः ॥ ८ ॥ तीर्थसज्जनसत्कर्मगुरुदेवविनिन्दकाः। पुराणवेदमीमांसान्यायवेदान्तदूषकाः ॥९॥ हर्षिता दुःखितं दृष्ट्वा हर्षिते दुःखदायकाः । दुष्टवाक्यस्य वक्तारो दुष्टचित्ताश्च ये सदा ॥१०॥

॥ ५ ॥ गुरु के धन को तथा देवता के निमित्त दिये धनको, स्त्री के द्रव्य को और ब्राह्मण के द्रव्य को जो हरण कर लेते हैं ॥ ६ ॥ जो किसीका ऋण लेकर नहीं देता है और जो मनुष्य किसीके धरोहर को दबा लेता है जो विश्वासघात करने वाला है और जो अन्न में विष मिलाकर खाने को देता है ॥ ७ ॥ और दूसरे के दोष को ग्रहण करने वाला गुण को छिपाने वाला गुणवानों से ईर्ष्या करने वाला सत्संग को त्याग कर नीच की संगति करने वाला ॥८॥ सत्पुरुषों की, तीर्थों की, शुभकर्मों की, निन्दा करने वाला पुराण, वेद, मीमांसा, न्याय, वेदान्त, आदि शास्त्रों पर दोष देने वाला ॥ ९ ॥ दुखियों को देखकर जो प्रसन्न होने वाले हैं और जो प्रसन्न मनुष्यको दुःख देनेवाले हैं जिनका स्वभाव दुष्टहै जो दुष्ट वचन कहनेवाले हैं ॥१०॥ और जो हितके वचन को नहीं सुनते हैं, जो शास्त्र, पुराण के वचन पर विश्वास नहीं करते न तो शास्त्र पुराणों को कानोंसे सुनते हैं, जो योग्य पुरुष को देखकर घमंड करते हैं और

न शृण्वन्ति हितं वाक्यं शास्त्रवार्तां कदापि न ॥ आत्मसम्भाविताः स्तब्धा मूढाः पण्डि-
तमानिनः ॥ ११ ॥ एते चान्ये च बहवः पापिष्ठा धर्मवर्जिताः ॥ गच्छन्ति यममार्गं
हि रुदन्तस्ते दिवानिशम् ॥ १२ ॥ यमदूतैस्ताड्यमाना यान्ति वैतरणीं प्रति ॥ तस्यां
पतन्ति ये पापास्तानहं कथयामि ते ॥१३॥ मातरं येऽवमन्यन्ते पितरं गुरुमेव च ॥ आचार्यं
चापि पूज्यञ्च तस्यां मज्जन्ति ते नराः ॥१४॥ पतिव्रतां साधुशीलां कुलीनां विनयान्विताम् ॥
स्त्रियं त्यजन्ति ये द्वेषाद्वैतरण्यां पतन्ति ते ॥ १५ ॥ सतां गुणसहस्रेषु दोषानारोपयन्ति

मूर्ख होते हुए भी अपने को पण्डित समझते हैं ॥ ११ ॥ इन कर्मों से युक्त धर्महीन पापी मनुष्य दिन रात्रि रोते रोते यमलोक को जाते हैं ॥ १२ ॥ और यमदूतों से दण्ड पाकर वे पापी जीव वैतरणी को जाते हैं और जो उसके पहिले के जीव उस नदी में गिरे हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १३ ॥ जो माता, पिता, गुरु और पूज्य जनों का अपमान करते उनका वैतरणी में निवास करना पड़ता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य पतिव्रता, शीलवती, कुलीन, विनयशील, स्त्री का मन से परित्याग करता है वे वैतरणी में निवास करते हैं ॥१५॥ मनुष्य के प्रसिद्ध गुणों को छिपाने के लिये जो उनके अप्रसिद्ध दोषों को प्रकट करते हैं और दूसरे का अपमान करते हैं वे प्राणी वैत-रणी नदी में गिराये जाते हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य ब्राह्मण के लिये प्रतिज्ञा करके पूरा नहीं करते हैं अथवा बुलाकर दान नहीं देते हैं वे

ये ॥ तेष्वश्रद्धां च कुर्वन्ति वैतरण्यां पतन्ति ते ॥ १६ ॥ ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः ॥ आहूतो नास्ति यो ब्रूयात्तयोर्वासश्च संततम् ॥ १७ ॥ स्वयं दत्तापहर्ता च दानं दत्वानुतापकः ॥ परवृत्तिहरश्चैव दानं दत्तो निवारकः ॥ १८ ॥ यज्ञविध्वंसकश्चैव कथाभंगकरश्च यः ॥ क्षेत्रसीमाहरश्चैव यश्च गोचरकर्षकः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणो रसविक्रेता यदि स्याद्वृषलीपतिः ॥ वेदोक्तयज्ञादन्यत्र स्वात्मार्थं पशुमारकः ॥ २० ॥ ब्रह्मकर्मपरिभ्रष्टो मांसभोक्ता च मद्यपः ॥ उच्छृङ्खलस्वभावो यः शास्त्राध्ययनवर्जितः ॥ २१ ॥ वेदाक्षरं

वैतरणी में रहने योग्य हैं ॥ १७ ॥ जो दान देकर छीन लेते हैं अथवा देकर पछताते हैं जो दूसरे की दी हुई जीविका का अपहरण करते हैं अथवा दान देने वाले को जो रोक देते हैं वे वैतरणी में वास करते हैं ॥ १८ ॥ और जो यज्ञ को विध्वंस करने वाले हैं जो कथाओं में विघ्न देनेवाले हैं जो खेत का डांगा और गोचर भूमि को जोतते हैं उनका वास वैतरणी में होता है ॥ १९ ॥ रस अर्थात् गुड़, चीनी, शहद, मिठाई, घी, दूध और लवण इनको बेचने वाला शास्त्र में कही पाँच प्रकार की जो वृषला हैं उनका पति वेदोक्त यज्ञों में कही हुई हिंसा के अतिरिक्त अपने सुख के लिये पशुओं की हिंसा करने वाला ॥ २० ॥ कर्म से भ्रष्ट ब्राह्मण जो वेद शास्त्र की मर्यादा से रहित होकर मदिरा मांस को ग्रहण करने वाले हैं उनका पतन वैतरणी में होता है ॥ २१ ॥ जो शूद्र होकर वेद के अक्षरों

पठेच्छूद्रः कपिलायाः पयः पिबेत् ॥ धारयेद् ब्रह्मसूत्रञ्च भवेद्वा ब्राह्मणीपतिः ॥ २२ ॥
राजभार्याभिलाषी च परदारापहारकः ॥ कन्यायां कामुकश्चैव सतीनां दूषकश्च यः ॥२३॥
एते चान्ये च बहवो निषिद्धाचरणोत्सुकाः ॥ विहितत्यागिनो मूढा वैतरण्यां पतन्ति ते
॥ २४ ॥ सर्वमार्गमतिक्रम्य यान्ति पापा यमालये ॥ पुनर्यमाज्ञयागत्य दूतास्तस्यां क्षि-
पन्ति तान् ॥ २५ ॥ ये वै धुरन्धरा सर्वे धौरेयाणां खगाधिप ॥ अतस्तस्यां प्रक्षिपन्ति
वैतरण्यां च पापिनः ॥ २६ ॥ कृष्णागौर्यदि नो दत्ता नोर्ध्वदेहक्रियाः कृताः ॥ तस्यां

को पढ़ता है और कपिला गौ का दूध पान करता है जनेऊको धारण करता है और ब्राह्मणी के साथ गमन करता है उसका पतन वैत-रणी में होता है ॥२२॥ जो राजा की स्त्री को पाने की इच्छा करता है और पराई स्त्री का अपहरण करता है जो विषय भोग के द्वारा कन्याओं को दूषित करता है और पतिव्रता स्त्रियों से जो छल करता है उसका वास वैतरणी में होता है ॥२३॥ इस प्रकार जो अत्यन्त निषिद्ध आचरण का पालन निर्भय होकर करते हैं और शास्त्रों में कहे हुए आचरण का परित्याग करते है वे मूढ़ सदा वैतरणी में निवास करते हैं ॥ २४ ॥ पूर्व में कहे संपूर्ण मार्ग का अतिक्रमण करके तब वह पापी जीव यमलोक को जाते हैं फिर यमराज की आज्ञा पाकर वे यमदूत उन प्राणियों को वैतरणी में डाल देते हैं ॥ २५ ॥ हे गरुड़ ! सब नरकों में मुख्य जो इक्कीस प्रकारके नरक हैं उनमें सबसे

भुक्त्वा महद्दुःखं यान्ति वृत्ततटोद्भवम् ॥२७॥ कूटसाक्ष्यप्रदातारः कूटधर्मपरायणाः ॥ छलेनार्जनसंसक्ताश्चौर्यवृत्त्या च जीविनः ॥२८॥ छेदयन्त्यतिवृत्तांश्च वनारामविभञ्जकाः ॥ व्रतं तीर्थं परित्यज्य विधवाशीलनाशकाः ॥ २६ ॥ भर्त्तारं दूषयेन्नारी परं मनसि धारयेत् ॥ इत्याद्याः शाल्मलीवृत्ते भुञ्जन्ते बहुताडनाम् ॥३०॥ ताडनात्पतितान्दूताः त्तिपन्ति नरकेषु तान् ॥ पतन्ति तेषु ये पापास्तानहं कथयामि ते ॥ ३१ ॥ नास्तिका भिन्नमर्यादा

अधिक जो पीड़ा देने वाले हैं उन नरकों में पापियों को यम की आज्ञा से दूत लोग डाल देते हैं ॥ २६ ॥ जिसने कृष्णा गौ का दान नहीं दिया और देह की और्ध्वदैहिक क्रिया नहीं की वह प्राणी नरकों के कठिन दुःख को भोग कर यातना सहने के लिये वैतरणी के किनारे जो वृक्ष हैं उनपर जाते हैं ॥ २७ ॥ झूठी गवाही देने वाले, झूठे धर्म को मानने वाले, छल से धन को इकट्ठा करने वाले और चोरी के कर्मों से जीविका करने वाले की यातना उन वृक्षों पर होतीं हैं ॥ २८ ॥ जो हरे और ऊँचे वृत्तों को काटने वाले हैं बगीचा या फुलवारी को नष्ट करने वाले, व्रत और तीर्थों की मर्यादा को न मानने वाले, विधवा के शील का नाश करने वाले की यातना वैतरणी के तट पर होती है ॥ २६ ॥ जो स्त्रियाँ अपने पति में दोष देकर दूसरे से मित्रता करती हैं ऐसे पापी सेमर वृत्त के नीचे अनेक प्रकार की यातना भोगते हैं । ३०॥ उस वृत्त पर ताड़न करने से जब जीव नीचे गिर जाते हैं तब उनको यमदूत और नरकों में डाल देते हैं जो पाप करने से मनुष्य नरकों में गिराये जाते हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ३१ ॥ ईश्वर के अस्तित्व को न

कदर्या विषयात्मकाः ॥ दाम्भिकाश्च कृतघ्नाश्च ते वै नरकगामिनः ॥ ३२॥ कूपानां च तडागानां वापीनां देवसद्मनाम् ॥ प्रजागृहाणां भेत्तारस्ते वै नरकगामिनः ॥ ३३ ॥ विसृज्याश्नन्ति ये दाराञ्छिशून्भृत्यांस्तथा गुरून् ॥ उत्सृज्य पितृदेवेज्यां ते वै नरकगामिनः ॥ ३४ ॥ शंकुभिः सेतुभिः काष्ठैः पाषाणैः कण्टकैस्तथा ॥ ये मार्गमुपरुन्धति ते वै नरकगामिनः ॥ ३५ ॥ शिवं शिवां हरिं सूर्यं गणेशं सद्गुरुं बुधम् ॥ न पूजयन्ति ये

मानने वाले जो नास्तिक हैं जो दान का खण्डन करते हैं यह कहते हैं कि दान करने का फल परलोक में कुछ नहीं होता और जो धर्म का खण्डन करने वाले हैं जो कदर्य हैं अर्थात् स्त्री पुत्र अतिथि आदि को दुख देने वाले हैं जो संसारी विषयों में आठों पहर लगे रहते हैं, जो दांभिक हैं अर्थात् झूठी तपस्या आदि करने वाले हैं जो दूसरों के उपकार को नहीं मानते हैं वे इन घोर नरकों में गिरते हैं ॥ ३२ ॥ कुआँ, बावली, तालाब आदि को भेदन करने वाले प्रजाओं के घर को उजाड़ने वाले प्राणी इन नरकों में वास करते हैं ॥ ३३ ॥ जो लोग स्त्री, बालक-वृद्ध, सेवक, और गुरुजनों को अन्न न देकर अकेले भोजन करते हैं देवता और पितरों के निमित्त बलि वैश्वदेव नहीं करते हैं वे निश्चय नरकों में गिरते हैं ॥ ३४ ॥ जो मनुष्य कांटा, काष्ठ पत्थर, अथवा लोह के कटीले तार आदि से मार्ग को रोकते हैं उनको यातना वैतरणी के तट पर होती है ॥ ३५ ॥ शिव, गौरी, विष्णु, सूर्य आदि देवताओं, गुरुजनों तथा विद्वान ब्राह्मण की जो सेवा नहीं करते हैं वे निश्चय नरकों में गिरते हैं ॥ ३६ ॥ जो ब्राह्मण शूद्रा अर्थात् दासी के संग शय्या पर शयन

मन्दास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३६ ॥ आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम् ॥
प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ३७ ॥ न नमस्कारयोग्यो हि स कदापि
द्विजोऽधमः ॥ न पूजयन्ति ये मूढास्ते वै नरकगामिनः ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणानाञ्च कलहं
गोयुद्धं कलहप्रियाः ॥ न वर्जन्त्यनुमोदन्ते ते वै नरकगामिनः ॥ ३९ ॥ अनन्य-
शरणं स्त्रीणामृतुकालव्यतिक्रमम् ॥ ये प्रकुर्वन्ति विद्वेषात्ते वै नरकगामिनः ॥ ४० ॥
येऽपि गच्छन्ति कामान्धान् नरा नारीं रजस्वलाम् ॥ पर्वस्वप्सु दिवा श्राद्धे ते वै नरक-

करता है वह नरक में जाता है और जो शूद्रा स्त्री से सन्तान उत्पन्न करता है वह अपने ब्रह्मत्व से नष्ट हो जाता है ॥ ३७ ॥ शूद्रा में गमन करने वाला ब्राह्मण अधम होता है ऐसे ब्राह्मण को नमस्कार और उसकी पूजा नहीं करनी चाहिये जो मूढ़ देवता को नहीं मानते हैं वे अवश्य नरकों में पड़ते हैं ॥ ३८ ॥ जो मनुष्य गौ और ब्राह्मण के युद्ध को नहीं रोकते हैं आनन्द पूर्वक देखते हैं अथवा उनमें लड़ाई लगाते हैं वे अवश्य नरकों में जाते हैं ॥ ३९ ॥ जो मनुष्य अपनी स्त्री से वैर मान कर ऋतुकाल में भी स्त्री का त्याग करता है वह अवश्य नरकों में गिरता है ॥ ४० ॥ जो काम से अन्धा होकर रजस्वला स्त्री में भोग करता है पर्वकाल में तथा जल में अथवा श्राद्ध के दिन में जो स्त्री गमन करते है वे अवश्य ही नरकों में पड़ते हैं ॥ ४१ ॥ जो मनुष्य अपने शरीर के मल को निकाल

गामिनः ॥ ४१ ॥ ये शारीरं मलं वह्नौ प्रक्षिपन्ति जलेऽपि च ॥ आरामे प्रतिगोष्ठे वा ते वै नरकगामिनः ॥ ४२ ॥ शस्त्राणां ये च कर्तारः शराणां धनुषां तथा ॥ विक्रेतारश्च ये तेषां ते वै नरकगामिनः ॥ ४३ ॥ चर्मविक्रयिणो वेश्याः केशविक्रेयकाः स्त्रियः ॥ विषविक्रयिणः सर्वे ते वै नरकगामिनः ॥ ४४ ॥ अनाथं नानुकम्पन्ति ये सतां द्वेषकारकाः ॥ विनापराधं दण्डयन्ति ते वै नरकगामिनः ॥ ४५ ॥ आशया समनुप्राप्तान् ब्राह्मणा नर्थिनो गृहे । न भोजयन्ति पाकेऽपि ते वै नरकगामिनः॥४६॥

कर अग्नि में डाल देते हैं । बगीचे में तथा गौओं के स्थान में मलमूत्र करते हैं वे अवश्य नरकों में जाते हैं ॥ ४२ ॥ तलवार आदि शस्त्रों को तथा तीर आदि को जो बनाकर द्रव्य के लोभ से बेचते हैं वे निश्चय नरकों में वास करते हैं ॥ ४३ ॥ जो चमड़े को बेचते हैं जो वेश्यावृत्ति से भग को बेचती हैं और जो व्यभिचारिणी हैं और जो विष को बेचने वाले हैं वे निश्चय नरकों में गिरते हैं ॥ ४४ ॥ जो अनाथ और दुखियों पर दया नहीं करते हैं और सज्जनों से विरोध रखते हैं और जो बिना अपराध किसी को दण्ड देते हैं वे निश्चय नरकों को जाते हैं ॥ ४५ ॥ आशा से युक्त घर में आये हुए ब्राह्मण तथा अतिथि को भोजन नहीं देते हैं वे अवश्य ही नरकों में वास करते हैं ॥ ४६ ॥ जो किसी का विश्वास नहीं करते और जीवों पर दया नहीं करते सब प्राणियों के संग कुटिलता

सर्वभूतेष्वविश्वस्तास्तथा तेषु विनिर्दयाः ॥ सर्वभूतेषु जिह्मा ये ते वै नरकगामिनः ॥४७॥ नियमान् समुपादाय ये पश्चादजितेन्द्रियाः ॥ विग्लापयन्ति तान्भूयस्ते वै नरकगामिनः ॥४८॥ अध्यात्मविद्यादातारं नैव मन्यन्ति ये गुरुम् ॥ तथा पुराणवक्तारं ते वै नरकगामिनः ॥ ४९ ॥ मित्रद्रोहकरा ये च प्रीतिच्छेदकराश्च ये ॥ आशाच्छेदकरा ये च ते वै नरकगामिनः ॥ ५० ॥ विवाहे देवयात्रायां तीर्थे सार्थान्विलुम्पति ॥ स वसेन्नरके घोरे तस्मान्नावर्तनं पुनः ॥५१॥ अग्निं दद्यान्महापापी गृहे ग्रामे तथा

करने वाले हैं वे अवश्य नरकगामी होते हैं ॥ ४७ ॥ सन्ध्या वन्दन, कृच्छ्र, चन्द्रायण, चातुर्मास्य आदि जो व्रत हैं उनको प्रतिज्ञा पूर्वक अंगीकार करके पीछे इन्द्रियों के वश में पड़कर जो नियम को छोड़ देते हैं वे निश्चय नरकों में वास करते हैं ॥ ४८ ॥ अध्यात्म विद्या देने वाले गुरु की जो पूजा नहीं करते हैं और पुराण वक्ता व्यास को भी जो गुरु भाव से नहीं मानते हैं वे निश्चय नरक को जाते हैं ॥ ४९ ॥ जो मित्रों से द्रोह करने वाले हैं, प्रीति और आशा लगा कर पीछे भंग करते हैं वे अवश्य नरकगामी होते हैं ॥ ५० ॥ विवाह, देवयात्रा और तीर्थ के साथ में रहने वाले को जो भ्रष्ट करते हैं वे निश्चय घोर नरकों में पड़ते हैं। वहाँ से उनका लौटना नहीं होता है ॥ ५१ ॥ घर में गाँव में तथा वन में जो आग लगाने वाले हैं उन्हें यमदूत पकड़ कर अग्निकुण्ड में पकाते हैं

वने ॥ स नीतो यमदूतैश्च वह्निकुण्डेषु पच्यते ॥ ५२ ॥ अग्निना दग्धगात्रोऽसौ यश्च छायां प्रयाचते ॥ नीयते च तदा दूतैरसिपत्रवनान्तरे ॥ ५३ ॥ खड्गतीक्ष्णैश्च तत्पत्रैर्गात्रच्छेदो यदा भवेत् ॥ तदोचुः शीतलच्छाये सुखंनिद्रां कुरुष्व भोः ॥ ५४ ॥ पानीयं पातुमिच्छन्वै तृषार्तो यदि याचते ॥ पानार्थं तैलमत्युष्णं तदा दूतैः प्रदीयते ॥ ५५ ॥ पीयतां भुज्यतां पानमन्नमूचुस्तदेति ते ॥ पीतमात्रेण तेनैव दग्धान्त्रा निपतन्ति ते ॥ ५६ ॥ कथञ्चित्पुनरुत्थाय प्रलपन्ति सुदीनवत् ॥ विवशा उच्छ्वसन्तश्च ते वक्तुमपि नाशकन् ॥ ५७ ॥ इत्येवं बहुशस्तार्क्ष्य यातनाः पापिनां

जब अग्नि में शरीर को जलने से वह पापी प्राणी छाया माँगता है तब जीव को दूत लोग पकड़ कर असिपत्र वन में ले जाते हैं। ५२। ॥ ५२ ॥ तलवार के सदृश चोखे पत्तों के लगने से जब शरीर कट जाता है तब यमदूत कहते हैं, हे पापी ठण्ढी छाया का सुख पूवक भोग करो ॥ ५४ ॥ आग की गर्मी से संतप्त हो कर जब पापी प्राणी जल पीने को माँगता है तब यमदूत लोग उसे पीने के लिये गरम तेल देते हैं ॥ ५५ ॥ और कहते हैं कि लीजिये इसी को आदर सहित पान कीजिये जब वह जीव असमर्थ होकर उम गरम तेल को पीता है तब उसकी आँते जल जाती हैं फिर वह मूर्छित होकर जमीन पर गिर पड़ता है ॥ ५६ ॥ बड़ी कठिनाइयों से

स्मृताः ॥ किमेतैर्विस्तरात्प्रोक्तैः सर्वशास्त्रेषु भाषितैः ॥ ५८ ॥ एवं वै क्लिश्यमाना-
स्ते नरा नार्यः सहस्रशः ॥ पच्यन्ते नरके घोरे यावदाभूतसंप्लवम् ॥५६॥ नस्याक्षयं
फलं भुक्त्वा तत्रैवोत्पद्यते पुनः ॥ यमाज्ञया महीं प्राप्य भवन्ति स्थावरादयः॥६०॥वृक्ष-
गुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च ॥ स्थावरा इति विख्याता महामोहसमावृताः ॥६१॥
कीटाश्च पशवश्चैव पक्षिणश्च जलेचराः ॥ चतुरशीतिलक्षेषु कथिता देवयोनयः ॥६२॥
एताः सर्वाः परिभ्रम्य ततो यान्ति मनुष्यताम् ॥ ६३ ॥ मानुषेऽपि श्वपाकेषु जायन्ते

उठकर दीनता पूर्वक यमदूत को देखता है और लम्बी साँसें लेता है परन्तु परवश होने के कारण इतने पर भी कुछ नहीं कहता ॥५७॥ हे गरुड़ ! तुम्हारे आग्रह से पापियों की यातना का मैंने वर्णन किया नरकों का वृत्तान्त तो सब पुराणों में कहा है ॥ ५८ ॥ हे गरुड़ ! पापी प्राणी जितने स्त्री अथवा पुरुष हैं वे इस प्रकार हजारों क्लेश भोग कर प्रलय तक घोर नरकों में वास करते हैं ॥ ५६ ॥ ऐसे पाप के अन्नय फल को भोग कर सृष्टि के आरम्भ में नरक में रहने वाला शरीर उनको मिलता है अथवा पृथ्वी में आकर वृक्ष आदि की योनि में जन्म लतं हं ॥ ६० ॥ वृक्ष, गुल्म, कन्द, लता, वल्ली, पर्वत, तृण, घास, आदि को स्थावर कहते हैं। सो उनको स्थावर की योनि भी भोगने को मिलती है ॥ ६१ ॥ कीट, पशु, पक्षी, जलचर आदि चौरासी लाख देवयोनियाँ हैं। इनमें ञ्रमण

नरकागताः ॥ तत्रापि पापचिह्नैस्ते भवन्ति बहुदुःखिताः ॥ ६४ ॥ गलत्कुष्ठाश्च जन्मान्धा महारोगसमाकुलाः ॥ भवन्त्येवं नरा नार्यः पापचिह्नोपलक्षिताः ॥ ६५ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

श्रीगरुड उवाच ॥ येन येन च पापेन यद्यच्चिह्नं प्रजायते ॥ यां यां योनिं च गच्छन्ति तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यैः पापैर्यान्ति यां योनिं पापिनो नरकागताः ॥ येन पापेन यच्चिह्नं जायते मम तच्छृणु ॥ २ ॥ ब्रह्महा

करके मनुष्य का जन्म मिलता है परन्तु जो नरक से आकर मनुष्य होते हैं। वे चाण्डाल आदि के घर जन्म लेकर पूर्व में किये पाप चिह्न से बहुत दुःखी होते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ स्त्री हो चाहे पुरुष नरक के चिह्न से अर्थात् गलित कुष्ठ तथा जन्म के अन्धे अथवा और भी भयानक रोगों से पीड़ित होते हैं ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

इस प्रकार गरुडपुराण का भाषाटीका सहित चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

जीवों की यातना को सुन कर भय पूर्वक विनीत होकर गरुड़ जी बोले—हे स्वामी ! जिन पापों से मनुष्य में जो चिन्ह होते हैं और जिन योनियों में जन्म होता है, वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ गरुड़ जी के प्रश्न को सुन कर विष्णु भगवान ने कहा नरक से लौट

क्षयरोगी स्याद् गोघ्नः स्याद् कुब्जको जडः ॥ कन्याघाती भवेत्कुष्ठी त्रयश्चाण्डाल-योनिषु ॥३॥ स्त्रीघाती गर्भघाती च पुलिन्दो रोगवान्भवेत् ॥ अगम्यागमनात् षण्ढो दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥ ४ ॥ मांसभोक्तातिरक्ताङ्गः श्यावदन्तस्तु मद्यपः ॥ अभक्ष्य-भक्षको लौल्याद् ब्राह्मणः स्यान्महोदरः ॥५॥ अदत्वा मिष्टमश्नाति स भवेद् गलग-ण्डवान् ॥ श्राद्धेऽन्नमशुचिं दत्वा श्वित्रकुष्ठी प्रजायते ॥ ६ ॥ गुरोर्गर्वेणावमानाद्-

कर आये हुए पापी जिन पापों से जिस योनि में जन्म लेते हैं और उनमें जो चिन्ह रहता है वह तुमसे कहते हैं सावधान हो कर सुनो ॥ २ ॥ ब्राह्मण को मारने वाला क्षय के रोग से युक्त होता है, गौ का वध करने वाला कुबड़ा तथा जड़ होता है और कन्या का घाती कोढ़ी होता है ये तीनों चाण्डाल की योनि में जन्म लेते हैं ॥ ३ ॥ स्त्री का वध करने वाला तथा गर्भ नष्ट करने वाला म्लेच्छ-जाति में उत्पन्न होकर सदा रोगी रहता है । कन्या तथा पुत्र की स्त्री के साथ गमन करने वाला नपुंसक होता है और गुरुपत्नी में गमन करने वाला दुश्चर्म रोग से पीड़ित होता है ॥४॥ मांस खाने वाले का अंग अत्यन्त लाल होता है मदिरापान करने वाले के दांत काले होते हैं और जीभ की चंचलता से जो अभक्ष्य भक्षण करते हैं उनका बहुत बड़ा उदर होता है ॥५॥ जो दूसरे को न देकर स्वादिष्ट वस्तु अपने खाता है वह गलगंड के रोग से पीड़ित होता है जो श्राद्ध में अपवित्र अन्न ब्राह्मणों को देता है वह सफेद कुष्ठी होता है ॥ ६ ॥ अभिमानपूर्वक जो गुरु का अपमान करता है वह मूर्छा के रोग से पीड़ित होता है और शास्त्र की निन्दा करने वाला पाण्डु

पस्मारी भवेन्नरः ॥ निन्दको वेदशास्त्राणां पाण्डुरोगी भवेद् ध्रुवम् ॥ ७ ॥ कूटसाक्षी भवेन्मूकः काणः स्यात पंक्तिभेदकः । अनोष्ठः स्याद् विवाहध्नः जन्मान्धः पुस्तकं हरत ॥ ८ ॥ गोब्राह्मणपदाघातात खञ्जः पंगुश्च जायते ॥ गद्गदोऽनृतवादी स्यात्तच्छ्रोता वधिरो भवेत ॥ ९ ॥ गरदः स्याज्जडोन्मत्तः खल्वाटोऽग्निप्रदायकः ॥ दुर्भगः पलविक्रेता रोगवान् परमांसभुक् ॥ १० ॥ हीनजातौ प्रजायेत रत्नानामपहारकः ॥ कुनखी स्वर्णहर्ता स्याद्धातुमात्रहरोऽधनः ॥ ११ ॥ अन्नहर्ता भवेदाखुः शलभो धान्यहारकः ॥ चातको जलहर्ता स्याद् विषहर्ता च वृश्चिकः ॥ १२ ॥ शाकादिहर्ता नक्रः

रोगी होता है ॥ ७ ॥ असत्य साक्षी देनेवाला गूंगा, पंक्तिभेद करने वाला काणा, लगे हुए विवाह को बिगाड़नेवाला ओष्ठहीन और पुस्तकों को चुरानेवाला जन्मान्ध होता है ॥८॥ ब्राह्मण तथा गौ पर जो लात चलाता है वह पंगु होता है, असत्य बोलनेवाला गद्गद् और असत्य सुनने वाला बहिरा होता है ॥ ९ ॥ विषका देनेवाला उन्मत्त (पागल) होता है घर में आग लगाने वाला गंजा होता है और मांस का बेचने वाला दुर्भग तथा दूसरे के मांस का खाने वाला रोगी होता है ॥ १० ॥ रत्न का चुराने वाला नीच कुल में जन्म लेता है सोना चुराने वाला नख से हीन और धातुओं को चुराने वाला निर्धन होता ॥११॥ अन्न का चुराने वाला चूहा सावां

स्याद् हृत्वा गन्धाञ्छुच्छुन्दरी ॥ मधु दंशः पलं गृध्रो लवणं च पिपीलिका ॥ १३ ॥
ताम्बूलफलपुष्पादिहर्ता स्याद् वानरो वने ॥ उपानत्तृणकार्पासहर्ता स्यान्मेषयोनिषु ॥ १४ ॥
यश्च रौद्रोपजीवी च मार्गे सार्थान् विलुम्पंत ॥ मृगयाव्यसनी यस्तु छागःस्याद् बधिकालये ॥ १५ ॥ यो मृतो विषपानेन कृष्णसर्पो भवेद गिरौ ॥ निरंकुशः स्वभावः स्यात् कुञ्जरो निर्जने वने ॥ १६ ॥ वैश्वदेवमकर्तारः सर्वभक्ताश्च ये द्विजाः ॥ शूद्रान्नस्य च भोक्तारो व्याघ्राः स्युर्निर्जने वने ॥ १७ ॥ गायत्रीं न स्मरेद्यस्तु यो न सन्ध्या-

कोदों धान्य आदि का चुराने वाला टिड्डी, जल का चुराने वाला पपीहा और विष का चुराने वाला बिच्छू होता है ॥१२॥ शाक पत्र आदि का हरनेवाला मकर होता है गन्ध को चुरानेवाला छुछुन्दर, मधु को चुरानेवाला डांस, और मांस को चुरानेवाला गीध और नमक चुरानेवाला चींटी होता है ॥१३॥ पान, फूल, और फल का चुराने वाला जंगली बानर होता है, जूता तृण-कपास आदि का चुरानेवाला मेष (बकरा) की योनि को पाता है ॥१४॥ जीवों की हिंसा करने वाला तथा उससे जीविका करने वाला- यात्रियों के धन को लूटने वाला, मृगया करने वाला कसाई के घर में बकरा होता है ॥ १५ ॥ जो विष पान करके मरता है वह काला नाग होता है और जो उद्दण्ड स्वभाव से रहता है वह जंगल में उन्मत्त हाथी होता है ॥ १६ ॥ जो ब्राह्मण बलि-वैश्वदेव नहीं करता है तथा अभक्ष्य वस्तुओं

मुपासते ॥ अन्तर्दुष्टो बहिःसाधुः स भवेद् ब्राह्मणो बकः ॥ १८ ॥ अयाज्ययाजको विप्रः स भवेद् ग्रामसूकरः ॥ खरो वै बहुयाजित्वात्काको निर्मन्त्रभोजनात् ॥ १९ ॥ पात्रे विद्यामदाता च बलीवर्दो भवेद् द्विजः ॥ गुरुसेवामकर्ता च शिष्यः स्याद् गोखरः पशुः ॥२०॥ गुरुं हुङ्कृत्य तुंकृत्य विप्रान् निर्जित्य वादतः ॥ अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ २१ ॥ प्रतिश्रुतं द्विजे दानमदत्वा जम्बुको भवेत् ॥ सतामस-

का भक्षण करता है अथवा शूद्रों का अन्न जो भोजन करता है उसे वन में व्याघ्र की योनि मिलती है ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण सन्ध्या गायत्री का पालन नहीं करता है जिसका स्वभाव कपट से मलिन है ऊपर से स्वच्छ बना रहता है उसे बगुला का जन्म मिलता है ॥ १८ ॥ शूद्रों के यज्ञ कराने वाले जो ब्राह्मण हैं उन्हें सूअर की योनि मिलती है और जो बहुतों की पुरोहिती कराते हैं उन्हें गदहा का जन्म मिलता है और जो बिना निमंत्रण के भोजन करते हैं वह कौवा का जन्म पाते हैं ॥ १९ ॥ योग्य विद्यार्थियों में जो ब्राह्मण विद्या दान नहीं करते वह बलवान बैल होता है जो गुरु को जवाब देता है और विवाद से ब्राह्मण जीतने वाला है उसे ब्रह्मराक्षस की योनि मिलती है ॥ २० ॥ घर पर बुलाकर जो ब्राह्मण को दान नहीं देता है वह सियार होता है और जो सज्जनों का आदर नहीं करता वह फीत्कार की योनि पाता है ॥ २१ ॥ मित्र से द्रोह करने वाला पहाड़ी गीध, धोखा देकर खरीदने वाला उल्लू, वर्णाश्रम का खण्डन करने वाला जंगली कबूतर होता है ॥ २२ ॥ जो आशा को भंग करता है जो स्नेह को दूषित करता है और द्वेष से स्त्री का

त्कारकरः फेत्कारोऽग्निमुखो भवेत् ॥ २२ ॥ मित्रध्रुग्गिरिगृध्रः स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात् ॥ वर्णाश्रमपरीवादात्कपोतो जायते वने ॥ २३ ॥ आशाच्छेदकरो यस्तु स्नेहच्छेदकरस्तु यः ॥ यो द्वेषात् स्त्रीपरित्यागी चक्रवाकश्चिरं भवेत् ॥ २४ ॥ मातृपितृगुरुद्वेषी भगिनीभ्रातृवैरकृत ॥ गर्भे योनौ विनष्टःस्याद्यावद्योनिसहस्रशः ॥२५॥ श्वश्रोर्गालिप्रदा नारी नित्यं कलहकारिणी ॥ सा जलौका च यूका स्याद् भर्तारं भर्त्सयंते च या ॥ २६ ॥ स्वपतिं च परित्यज्य परपुंसानुवर्तिनी । वल्गुनी गृहगोधा स्याद्द्विमुखी वाथ सर्पिणी ॥ २७ ॥ यः स्वगोत्रोपघाती च स्वगोत्रस्त्रीनिषेवणात् ॥ तरक्षुः

परित्याग करता है वह अधिक समय तक चकवा चकवी होते हैं ॥ २३ ॥ जो माता, पिता, गुरु, भाई, बहिन से बैर करता है वह बार-बार जन्म लेते और गर्भ में ही नष्ट हो जाते हैं उनको संसार में रहने के लिये कुछ भी आयु नहीं मिलती ॥२४॥ सास-श्वसुर को गाली देनेवाली प्रतिदिन कलह करने वाली तथा अपने पति को धिक्कार से तिरस्कार करनेवाली स्त्री को यूँक (जूँ) अथवा खटमल का जन्म मिलता है ॥ २६ ॥ जो स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे गोत्र के पुरुष से प्रीति करती है उसे गोह का अथवा छिपकली का या दो मुखवाली साँपिन का जन्म मिलता है ॥ २७ ॥ जो मनुष्य अपने गोत्र को भ्रष्ट करने के लिये अपने गोत्र की स्त्री में गमन

शल्लको भूत्वा ऋक्षयोनिषु जायते ॥ २८ ॥ तामसीगमनात्कामी भवेन्महापिशाचकः ॥ अप्राप्तयौवनासङ्गाद् भवेदजगरो वने ॥ २९ ॥ गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेन्नरः ॥ राज्ञीं गत्वा भवेद् दुष्टो मित्रपत्नीं च गर्दभः ॥ ३० ॥ गुदगोविड्वराहः स्याद् वृषः स्याद् वृषलीपतिः ॥ महाकामी भवेद् यस्तु स्यादश्वः कामलम्पटः ॥ ३१ ॥ मृतस्यैकादशाहं तु भुञ्जानः श्वा विजायते ॥ लभेद् देवलको विप्रो योनिकुक्कुटसंज्ञकाम् ॥ ३२ ॥ द्रव्यार्थं देवतापूजां यः करोति द्विजाधमः ॥ स वै

करता है वह तरक्षु और साही की योनि भोग कर भालू का जन्म पाता है ॥ २८ ॥ तामस स्वभाव वाली स्त्री में गमन करने से पिशाच की योनि मिलती है और तामसी स्त्री में भोग करने से मनुष्य को अजगर का जन्म मिलता है ॥ २९ ॥ गुरुपत्नी में गमन करने वाला गिरगिट, राजा की स्त्री की इच्छा करने वाला दुष्ट और मित्र की स्त्री में भोग करने वाले को गदहा का जन्म मिलता है ॥ ३० ॥ गुदा में गमन करने वाला सूकर होता है और वृषली (शूद्रा) से भोग करने वाला बलवान बैल होता है और जो महाकामी लम्पट है वह घोड़े का जन्म पाता है ॥ ३१ ॥ मृतक के एकादशाह के दिन भोजन करने वाला कुत्ते का जन्म पाता है और देवताओं के भाग को खाने वाला कुक्कुट होता है ॥ ३२ ॥ जो ब्राह्मण द्रव्य की लालच से देवताओं का पूजन करता है वह देवलक कहा

दैवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः ॥३३॥ महापातकजान् घोरान्नरकान्प्राप्य दारुणान् ॥ कर्मक्षये प्रजायन्ते महापातकिनास्त्विह ॥ ३४ ॥ खरोष्ट्रमहिषीणां हि ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥ वृकश्वानशृगालानां सुरापा यान्ति योनिषु ॥ ३५ ॥ कृमिकीटपतङ्गत्वं स्वर्णस्तेयी सदाप्नुयात् । तृणगुल्मलतात्वं च क्रमशो गुरुतल्पगः ॥ ३६ ॥ परस्य योषितं हृत्वा न्यासापहरणेन च ॥ ब्रह्मस्वहरणाच्चैव जायते ब्रह्मराक्षसः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मस्वं प्रणयाद् भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् ॥ बलात्कारेण चौर्येण दहत्या-

जाता है उसे देवकार्य और पितृकार्य में नहीं बुलाना चाहिये क्योंकि वह ब्राह्मण निन्दित कहा जाता है ॥ ३३ ॥ महापातकों से युक्त होकर जो घोर नरकों की यातना को भोग कर कर्म के नाश होने पर इस संसार में अधम कुल में जन्म होता है फिर भी वे महापातकी होते हैं ॥ ३४ ॥ जो ब्राह्मण की हत्या करता है वह गदहा, ऊँट, और भैंस की योनि में जन्म लेता है, मदिरा पीनेवाला वृक कुत्ता और सियार की योनि में जन्म लेता है । ३५ ॥ सोना चुराने वाले को कीड़ा पतङ्ग आदि की योनि मिलती है । गुरु की स्त्री में गमन करने वाला क्रम से तृण, लता, वृक्ष आदि की योनियों में जन्म लेता है । ३६ ॥ दूसरे की धरोहर को हड़पने वाला देवता और ब्राह्मण के धनको हरने वाला ब्रह्मराक्षस होता है । ३७ ॥ छलकर के प्रेम से जो ब्राह्मण का धन खाता है उसके सातपीढ़ी को वह जला

चन्द्रतारकम् ॥३८॥ लोहचूर्णाश्मचूर्णे च विषं च जरयेन्नरः ॥ ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥ ३९ ॥ ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च ॥ युद्धकाले विशीर्यन्ते सैकताः सेतवो यथा ॥ ४० ॥ देवद्रव्योपभोगेन ब्रह्मस्वहरणेन च ॥ कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥४१॥ स्वमाश्रितं परित्यज्य वेदशास्त्रपरायणम् ॥ अन्येभ्यो दीयते दानं कथ्यतेऽयमतिक्रमः ॥४२॥ ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे वेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य नहि भस्मनि हूयते ॥४३॥ अतिक्रमे कृते

देता है और जो बलात्कार से तथा चोरी से ब्राह्मण का धन हरण करता है वह धन कल्प भर उसके कुलको जलाता है ॥ ३८ ॥ लोह और पत्थर के चूर्ण को अथवा विष को मनुष्य पचा सकता है परन्तु ब्राह्मण के धन को तीनों लोक में कोई नहीं पचा सकता ॥ ३९ ॥ ब्राह्मण के धन से पालन किये हाथी घोड़ा आदि वाहन तथा सेनाएं सब युद्ध के समय ऐसे बिखर जाते हैं, जैसे बालू की बांध जल के वेग से टूट जाती है ॥ ४० ॥ देवताओं के निमित्त जो द्रव्य है उसको खाने से तथा ब्राह्मण का धन हरण करने से और ब्राह्मण के अतिक्रमण करने से कुल नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ वेद और शास्त्र को जानने वाले अपने आश्रित ब्राह्मण को छोड़कर जो दूसरे को दान दिया जाता है उसे ब्राह्मण का अतिक्रमण करना कहते हैं ॥ ४२ ॥ वेद, शास्त्र से हीन जो ब्राह्मण है उसका अतिक्रमण नहीं होता क्योंकि जलती हुई अग्नि को छोड़कर राख में हवन नहीं किया जाता है ॥ ४३ ॥ हे तार्क्ष्य ! ब्राह्मण

तार्क्ष्य भुक्त्वा च नरकान्क्रमात् ॥ जन्मान्धः सन्दरिद्रःस्यान्नदाता किंतु याचकः॥४४॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेच्च वसुन्धराम् ॥ षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते
कृमिः ॥ ४५ ॥ स्वयमेव च यो दत्त्वा स्वयमेवापकर्षति ॥ स पापी नरकं याति
यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ४६ ॥ दत्त्वा वृत्तिं भूमिदानं यत्नतः परिपालयेत् ॥ न
रक्षति हरेद्यस्तु स पंगुः श्वाभिजायते ॥४७॥ विप्रस्य वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलं भवेत् ॥
विप्रस्य वृत्तिहरणान्मर्कटः श्वा कपिर्भवेत् ॥ ४८ ॥ एवमादीनि चिह्नानि योनयश्च

का अतिक्रमण करने से क्रमसे नरकों का भोगकर फिर जन्म का अंधा होता है बाद में दरिद्री होता है अन्न को देनेवाला इन यातनाओं को ही भोगता है किन्तु मांगने वाला भोगता है ॥ ४४ ॥ अपनी दी हुई तथा दूसरे की दी हुई भूमि को जो मनुष्य ब्राह्मण से छीन लेता है वह साठ हजार वर्ष तक विष्ठा में रहने वाला कीड़ा होकर बास करता है ॥ ४५ ॥ जो मनुष्य स्वयं ही ब्राह्मण को भूमि देकर और अपने ही छीन लेता है वह पापी जीव प्रलयकाल तक नरकों में निवास करता है ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण को भूमि दान देकर दी हुई जीविका की प्रयत्न पूर्वक रक्षा करे जो उस जीविका की रक्षा न करके आपही छीन लेता है वह पंगु कुत्ता होता है ॥ ४७ ॥ ब्राह्मण को जीविका देने में एक लाख गौ देने का पुण्य होता है और उस जीविका को छीन लेने में कुत्ता और वन्दर की योनि को प्राप्त

खगेश्वर ॥ स्वकर्मविहिता लोके दृश्यन्तेऽत्र शरीरिणाम् ॥ ४९ ॥ एवं दुष्कर्मकर्तारो भुक्त्वा निरययातनाम् ॥ जायन्ते पापशेषेण प्रोक्तास्वेतासु योनिषु ॥५०॥ ततो जन्मसहस्रेषु प्राप्य तिर्यक्छरीरिणाम् ॥ दुःखानि भारवहनोद्भवादीनि लभन्ति ते ॥ ५१ ॥ पक्षी दुःखं ततो भुक्त्वा वृष्टिशीतातपोद्भवम् ॥ मानुषं लभते पश्चात्समीभूते शुभाशुभे ॥ ५२ ॥ स्त्रीपुंसोस्तु प्रसंगेन भूत्वा गर्भे क्रमादसौ ॥ गर्भादिमरणान्तं च प्राप्य दुःखं म्रियेत्पुनः ॥ ५३ ॥ समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते सर्वदेहिनाम् ॥ एवं

होता है ॥ ४८ ॥ हे गरुड़ ! ये सब चिन्ह उन उन योनियों में कर्मों से प्राप्त देहों की दीख पड़ती हैं, इस से उनको नरक से आया हुआ जानो ॥ ४९ ॥ इस प्रकार अशुभ कर्म करने वाले घोर नरकों की यातना को भोगकर शेष पापों से इन योनियों में जन्म लेकर फिर भी पाप करते हैं ॥ ५० ॥ इसके उपरान्त हजारों जन्म पशु पक्षी आदि की देह पाकर भार ढोने योग्य ऊँट, गदहा, भैंसा आदि के शरीर को पाते हैं ॥ ५१ ॥ उसके बाद वर्षा शीत और घाम को सहने वाले पक्षियों के दुःख को भोगने से जब अशुभ कर्म शान्त होता है तब मनुष्य का जन्म मिलता है ॥ ५२ ॥ स्त्री पुरुष के प्रसंग से यह गर्भ में क्रम से लेकर मरण काल पर्यन्त अनेक प्रकार के दुःखों को भोगकर फिर मरजाता है ॥ ५३ ॥ सब देहों की उत्पत्ति और विनाश होता है परन्तु अण्डज, स्वदेज, उद्भिज, और जरायुज

प्रवर्तितं चक्रं भूतग्रामं चतुर्विधम् ॥५४॥ घटीयंत्रं यथा मर्त्या भ्रमन्ति मम मायया ॥ भूमौकदाचिन्नरके कर्मपाशसमावृताः ॥५५॥ अदत्तदानाच्च भवेद् दरिद्रो दरिद्रभावाच्च करोति पापम् ॥ पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी ॥ ५६ ॥ अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापचिह्ननिरूपणो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हैं इनमें इसी प्रकार का चक्र चलता है ॥ ५४ ॥ मनुष्य जो जीव हैं वह मेरी माया से बँधे हुए घटीयन्त्र के समान भ्रमण करते हैं कर्मों के वश हो कभी भूमि में कभी स्वर्ग और कभी रसातल में बास करते हैं । ५५ । दान न देने से मनुष्य दरिद्री होता है दरिद्री होने से पाप करता है पापके प्रभाव से नरकों में जाता है बार बार दरिद्री और पापी होता है ॥ ५६ ॥ अपने किये शुभ अशुभ कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा कर्मों के फल को बिना भोगे करोड़ों कल्प में भी नाश नहीं होता है ॥ ५७ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

गरुड उवाच ॥ कथमुत्पद्यते मातुर्जठरे नरकागतः ॥ गर्भादिदुःखं यद् भुङ्क्ते तन्मे कथय केशव ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच—स्त्रीपुंसोस्तु प्रसंगेन निरुद्धे शुक्रशोणिते ॥ यथाऽयं जायते मर्त्यस्तथा वक्ष्याम्यहं तव ॥ २ ॥ ऋतुमध्ये हि पापानां देहोत्पत्तिः प्रजायते ॥ इन्द्रस्य ब्रह्महत्यास्ति यतस्तस्मन्दिनत्रये ॥ ३ ॥ प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ॥ तृतीये रजकी ह्येता नरकागतमातरः ॥ ४ ॥ कर्मणा दैवयोगेन जन्तुर्देहोपपत्तये ॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ ५ ॥

गरुड़ जी ने पूछा हे प्रभो ! नरक आये हुए जीव माता के उदर में कैसे गर्भ के दुःख को भोगते हैं वह मुझसे कहिये ॥ १ ॥ विष्णु भगवान् ने कहा स्त्री पुरुष के प्रसंग से वीर्य और रज के मिश्रण से स्त्री को गर्भाधान होता है वह मैं तुम से कहता हूँ ॥ २ ॥ ऋतु के मध्य में हत्या चतुर्थांश शेष रहती है उसी में पापियों के देहकी उत्पत्ति होती है अर्थात् इन्द्र की ब्रह्महत्या स्त्रियों में तीन दिन तक रहती है इन्हीं में पापियों को शरीर मिलता है ॥ ४ ॥ ईश्वर ही उस जीव का प्रवर्तक है पूर्व जन्म के कर्मों से देह प्राप्ति के लिये पुरुष का वीर्य ही आश्रय होकर स्त्री के शुक्र (वीर्य) शोणित (रक्त) इनके संयोग से पिन्डकी उत्पत्ति होती है रक्त अधिक होने पर स्त्री और वीर्य अधिक होने पर पुरुष का देह मिलता है दोनों समान होनेपर नपुंसक होता है वीर्य विभाग होने पर यमज

कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् दशाहेन तु कर्कन्धुः पेश्यण्डं वा ततः परम् ॥ ६ ॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वंगाद्यङ्गविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भवास्त्रिभिः ॥ ७ ॥ चतुर्भिर्धातवस्सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥ षड्भिर्जरायुणावीतः कुक्षौ भ्रमति दक्षिणे ॥ ८ ॥ मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधोधातुरसंमते ॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे ॥ ९ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥ मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ १० ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादि-

अर्थात् दोसन्तान एक साथ होते हैं ॥ ५ ॥ एक रात्रि में कलल पांच रात्रि में बुद्-बुद अर्थात् गोलाकार होने लगता है दशरात्रिं में बेर के समान मांस का पिन्ड हो जाता है दूसरी योनियों में अन्डा हो जाता है ॥ ६ ॥ दो मास में शिर और भुजा आदि शरीर के भाग का विभाग होता है और तीसरे मास में नख रोम हड्डी चर्म और लिङ्ग आदि स्थापन होते हैं ॥ ७ ॥ चार मास में सातों धातु उत्पन्न होते हैं पाँचवें महीने में क्षुधा तृषा की उत्पत्ति होती है छठे महीने में जरायु (झिल्ली) में बँधकर माता की कोख में भ्रमण करता है ॥ ८ ॥ माता के भोजन किये हुये जो रूक्ष, कटु, अम्ल आदि अन्न हैं जिनसे दुर्गन्ध आती हैं तो भी उससे आकुल होकर मल मूत्र के गर्त (गड्ढे) में सोता है ॥ ९ ॥ और उस गर्भ में कीड़ों के काटने से शरीर में घाव हो जाता है इससे वह जीव

सिरुल्बणैः ॥ मातृभुक्तैरपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥ उल्बेन संवृतस्तस्मिन् समन्ताद् बहिरावृतः ॥ ११ ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भग्नपृष्ठशिरोधरः ॥ अशक्तस्वांग-चेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥ १२ ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्मजन्मशतोद्भवम् ॥ स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ १३ ॥ नाथमान ऋषिभ्रातः सप्तावधि कृतांजलिः ॥ स्तुवीत तं विक्लवया वाचा यो नोदरेर्पितः ॥ १४ ॥ आरभ्य सप्तमा-न्मासाल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ १५ ॥ जीव

बार बार मूर्छित होता है और गर्भ के कठिन दुःख को सहकर क्षुधित होता है ॥ १० ॥ कडुआ, रूखा, गर्म लवण, और आमिल आदि माता के भोजन किये पदार्थों से उस जीव के सर्वांग में पीड़ा उत्पन्न होती है फिर जरायु से लपेटा परवश में वहीं गर्भ में वास करता है ॥ ११ ॥ शिरको कोख में और पीठ तथा गर्दन को टेढ़ा करके प्रयत्न करता है परन्तु असमर्थ होकर पिंजरे के पक्षी के समान रहता है ॥ १२ ॥ पूर्व के कर्मों से गर्भ के दुःखों को सहन करने से जब ज्ञान होता है तब लंबी सांस लेकर पछताता है और सुखको नहीं प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ देह की यातना से आकुल होकर सात बन्धनों से बँधा हुआ वह जीव हाथ जोड़कर व्याकुल वाणी से परमेश्वर की स्तुति करता है ॥ १४ ॥ सातवें महीने से लेकर जब उस जीव को ज्ञान होता है तब वह प्राणी प्रसूति की वायु से काँपता

उवाच । श्रीपतिं जगदाधारमशुभक्षयकारकम् ॥ व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतव-
त्सलम् ॥ १६ ॥ त्वन्मायामोहितो देहे तथा पुत्रकलत्रके ॥ अहं ममाभिमानेन
गतोऽहं नाथ संसृतिम् ॥ १७ ॥ कृतं परिजनस्यार्थे मया कर्म शुभाशुभम् ॥ एकाकी
तेन दग्धोऽहं ते गताःफलभोगिनः ॥ १८ ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्स्मरिष्ये पदं
तव ॥ तमुपायं करिष्यामि येन मुक्तिं व्रजाम्यहम् ॥ १९ ॥ विण्मूत्रकूपे पतितो
दग्धोऽहं जाठराग्निना ॥ तमेव शरणं यामि पुनर्मे माऽस्तु संसृतिः ॥ २१ ॥ न च

हुआ एक स्थान में नहीं ठहरता है और विष्ठा में रहने वाले कृमि के समान ॥ १५ ॥ वह जीव कहता है हे लक्ष्मी के पति, जगत् के आधार अशुभ कर्मों को नाश करने वाले शरणागत की रक्षा करने वाले मैं आपकी शरणागत हूँ ॥ १६ ॥ तुम्हारी माया से मोहित होकर देह में पुत्र, स्त्री में जो अहंकार अभिमान है उससे हे नाथ ! मैं संसार में प्राप्त होता हूँ ॥ १७ ॥ कुटुम्ब के लिये मैंने अनेक शुभ-अशुभ कर्म किये उनसे अकेला भस्म हुआ और उन कर्मों के फल को भोगने वाला अकेला हुआ ॥ १८ ॥ जो मैं इस योनि से छूटूँगा तो आपके चरणों को स्मरण करके ऐसा उपाय करूँगा जिससे मुक्त हो जाऊँ ॥ १९ ॥ इस समय विष्ठा में जठराग्नि से जलता हूँ यहाँ से बार बार निकलने की इच्छा होती है । हे नाथ ! इससे बाहर कब निकालोगे ॥२०॥ जिस दीन दयालु ने मुझे ऐसा

निगन्तुमिच्छामि बहिर्गर्भात्कदाचन ॥ यत्र यातस्य मे पापकर्मणा दुर्गतिर्भवेत् ॥२२॥
तस्मादत्र महद्दुःखे स्थितेऽपि विगतक्लमः ॥ उद्धरिष्यामि संसारादात्मानं ते
पदाश्रयः ॥ २३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥
सद्यः क्षिपत्यवाचीनप्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २४ ॥ तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक्शिर-
आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २५ ॥ पतितो भुवि
विण्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयते गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ २६ ॥ गर्भे

ज्ञान दिया है उसी की शरण में जाने से फिर संसार के बन्धन से छूट जाऊँगा ॥ २१ ॥ इसलिये गर्भ से बाहर कदापि नहीं होना चाहता हूँ क्योंकि बाहर होने से पापों के द्वारा मेरी दुर्गति होगी ॥२२॥ इस वास्ते इस गर्भ में अनेक दुःखों को भोगकर भी मैं तुम्हारे चरणों का आश्रय पाकर अपना उद्धार करने का प्रयत्न करूँगा ॥ २३ ॥ गरुड़ जी से भगवान् ने कहा कि इस तरह प्रेम करने वाला दस मास का जीव जिसका मुख नीचे की ओर लटका है स्तुति को प्रेरणा करने वाला वायु अति शीघ्र ही उसे गर्भ से बाहर करने के लिये प्रेरणा करता है ॥ २४ ॥ जब उस वायु से प्रेरणा किया जाता है तब उच्छ्वास से रहित हो जाता है और उसकी स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है अब मूढ़ होकर दुःखों को सहने के लिये गर्भ से बाहर होता है ॥ २५ ॥ और पृथ्वी में गिरकर विष्ठा में रहने वाले

व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत् ॥ सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्येत बन्धनात् ॥ २७ ॥ यदा गर्भाद् बहिर्याति कर्मभोगस्तदन्तरम् ॥ तदैव वैष्णवीमाया मोहयत्येव पूरुषम् ॥ २८ ॥ स तदा मायया स्पृष्टो न किंचिद्वदतेऽवशः ॥ शैशवादि-भवं दुःखं पराधीनतयाऽश्नुते ॥ २९ ॥ अज्ञातेन परच्छन्दं पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातमनीश्वरः ॥ ३० ॥ शायितो शुचिपर्यङ्के जन्तुस्वेदजदू-षिते ॥ नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ ३१ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा

कीड़ों के समान चेष्टा करता है तथा ज्ञान से हीन होकर विपरीत गति को प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ गर्भ में, व्याधि के समय, श्मशान में, और पुराणों को सुनने के समय जो बुद्धि होती है वह यदि सदा स्थिर रहे तो संसारी बन्धन से कौन नहीं छूट जा सकता है ॥२७॥ नरक भोगने के बाद जब जीव गर्भ से बाहर आता है तभी वैष्णवी माया पुरुष को मोहित करती है, जिससे अज्ञान हो जाता है ॥२८॥ तब वह माया के अधीन होकर परवश हो जाता है और बालकपन के नियम से कभी भय कभी क्लेश आदि को पराधीनता से भोगता है ॥ २९ ॥ बालक के अभिप्राय को न जानने वाले जो माता पिता आदि कुटुम्बी हैं उनसे पालन किया जाता है तो भी अपने प्रतिकूल उनके व्यवहार को रोकने में असमर्थ होता है ॥ ३० ॥ और अशुद्ध शय्या पर सोने से खटमल आदि छोटे जीवों के काटने से मैले

मशका मत्कुणादयः ॥ रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ ३२ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा स स्वपौगण्डमेव च ॥ ततो यौवनमासाद्य याति संपदमासुरीम् ॥ ३३ ॥ तदा दुर्व्यसनासक्तो नीचसंगपरायणः ॥ शास्त्रसत्पुरुषाणां च द्वेष्टा स्यात्कामलम्पटः ॥३४॥ दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः ॥ प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतंगवत् ॥ ३५ ॥ कुरंगमातंगपतंगभृङ्गमीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ॥ एकः प्रमादी स

वस्त्र को ओढ़ने से अंग खुजलाने में आसन से उठने में भी असमर्थ हो वह जीव दुःख से रोदन करता है ॥ ३१ ॥ डांस, मसा, कीट आदि जन्तु जब उसके नरम चमड़े में काटते हैं तब अत्यन्त रोदन करके मूर्छित हो जाता है ॥ ३२ ॥ इस प्रकार बालकपन के दुःख को भोगकर पौगंड अवस्था को प्राप्त होता है उसमें पीढ़ने आदि के अनेक दुःखों को सहता है फिर युवावस्था को प्राप्त दंभ दर्प अभिमान आदि आसुरी संपत्ति को लाभ करता है ॥ ३३ ॥ फिर युवावस्था के अनेक दुर्व्यसन में आसक्त हो नीच संगति की चाह करता है शास्त्र तथा सत्पुरुषों की चेष्टा होती है और काम में लंपट हो जाता है ॥ ३४ ॥ स्त्रियों को देखकर तथा उनके कटाक्ष आदि भावनाओं से लुब्ध हो इन्द्रियों के वश में पड़कर अग्नि में पतंग के समान अन्धकार में गिरता है ॥ ३५ ॥ हरिण, हाथी, और पतंग जो दीपक में गिरते हैं भृंग, (भँवर) और मीन यह पाँचों ही विषयों से मारे जाते हैं और यह एक प्रमादी पुरुष जो पाँच इन्द्रियों के द्वारा पाँचों विषयों का सेवन करते हैं वह क्यों न मारे जावें ॥ ३६ ॥ स्त्री आदि के पूर्ण सुख को लाभ नहीं करने वाला अज्ञानता

कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ ३६ ॥ अलुब्धाभीप्सितो ज्ञानादिभिर्मन्युः शुचार्पितः ॥ सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ ३७ ॥ करोति विग्रहं कामी कामीष्वन्ताय चात्मने ॥ बलाधिकः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ॥ ३८ ॥ एवं यो विषयासक्त्या नरत्वमतिदुर्लभम् ॥ वृथा नाशयते मूढस्तस्मात्पापाधिको हि कः ॥ जातीशतेषु लभते भुवि मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् ॥ यस्तन्न-पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥ ४० ॥ ततस्तां

से क्रोध को ग्रहण करने वाला शोक से सदा युक्त इसी प्रकार क्रोध शोक से युक्त हो वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥ अपने नाश के लिये कामी कामिनी में विरोध करते हैं परन्तु वह कामी युवा पुरुष बल में अधिक होने के कारण कामिनी से ऐसा मारा जाता है जैसे एक हाथी से दूसरा हाथी मारा जाता है ॥ ३८ ॥ इस प्रकार विषयों में आसक्त होकर दुर्बल जो मनुष्य का जन्म है उसको वृथा नाश करते हैं इनसे अधिक पापी कौन है ॥ ३९ ॥ पशु, भूमि, वृक्ष, लता आदि जो असंख्य जाति हैं उनमें जन्म लेते लेते मनुष्य का जन्म मिलता है मनुष्यों में ब्राह्मण का जन्म अत्यन्त दुर्लभ है जो द्विज युवावस्था को पाकर विषयों के भोग में इन्द्रियों को लंपट करते हैं उनको ऐसा समझना चाहिये कि हाथ में आये हुए अमृत को आलस्य से नीचे गिरा देता है ॥ ४० ॥ तरुणाई के बाद जब

वृद्धतां प्राप्य महाव्याधिसमाकुलः ॥मृत्युं प्राप्य महद्दुःखं नरकं याति पूर्ववत् ॥४१॥
एवं गताः गतैः कर्मपाशैर्बद्धाश्च पापिनः ॥ कदापि न विरज्यन्ते मम मायाविमोहिताः
॥४२॥ इति ते कथिता तार्क्ष्य पापिनां नारकी गतिः ॥ अन्त्येष्टिकर्महीनानां किं भूयः
श्रोतुमिच्छसि ॥ ४३ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे पापिजन्मादिदुःखनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वृद्धावस्था को पहूँचता है तब महा व्याधियों से युक्त होकर काल के अधीन हो मृत्यु को प्राप्त होकर फिर नरकों में जाता है ॥ ४१ ॥
ऐसे गतागत में लगा हुआ प्राणी कभी पृथ्वी में कभी नरकों में इस प्रकार कर्मजाल में बँधा हुआ जीव मेरी माया से मोहित कभी वैराग्य को नहीं प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ हे गरुड़ ! इस प्रकार मैंने तुमसे नरकों की गति को कहा और अन्त्येष्टि कर्मों से हीन जो पापी हैं उनकी गति को सुनो ॥ ४३ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे जन्मादिदुःखनिरूपणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूत उवाच ॥ इति श्रुत्वा तु गरुडः कम्पितोऽश्वत्थपत्रवत् ॥ जनानामुपकारार्थं
पुनः पप्रच्छ केशवम् ॥१॥ गरुड उवाच ॥ कृत्वा पापानि मनुजाः प्रमादात् बुद्धितोऽ-
पि वा ॥ न यान्ति यातना याम्याः केनोपायेन कथ्यताम् ॥ २ ॥ संसारार्णवमग्नानां
नराणां दीनचेतसाम् ॥ पापोपहतबुद्धीनां विषयोपहतात्मनाम् ॥ ३ ॥ उद्धारार्थं वद
स्वामिन्पुराणार्थं विनिश्चयम् ॥ उपायं येन मनुजाः सद्गतिं यान्ति माधव ॥ ४ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टस्त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै ॥ शृणुष्वावहितो-

सूतजी ने मुनियों से कहा कि विष्णु भगवान् के मुख से जीवों की यातना सुनकर गरुड़जी पीपल के पत्र के समान काँपने लगे और मनुष्यों के उपकार के लिये श्री विष्णु भगवान् से फिर पूछने लगे ॥१॥ हे प्रभो ! मनुष्य ज्ञान अथवा अज्ञान से जो पाप करते हैं उन पापों के बदले यम की यातना न भोगनी पड़े ऐसा कौन उपाय है सो कहिये ॥२॥ संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए दीन चित्त वाले पापों से बुद्धि हीन और विषयों के आघात से जिनकी आत्मा टकराती है उनको ॥ ३ ॥ हे नाथ ! नरकों के लिये पुराणों का अर्थ जो निश्चय है वह उपाय कहिये जिससे मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है वह कहिये ॥ ४ ॥ विष्णु भगवान् बोले हे गरुड़ ! मनुष्यों के कल्याण के वास्ते तूने बहुत उत्तम प्रश्न किया अब तुम सावधान चित्त होकर सुनो मैं तुमसे सब कहता हूँ ॥ ५ ॥ पुत्र

श्रुत्वा सर्वं ते कथयाम्यहम् ॥ ५ ॥ दुर्गतिः कथिता पूर्वमपुत्राणां च पापिनाम् ॥
पुत्राणां धार्मिकाणां तु न कदाचित्खगेश्वर ॥ ६ ॥ पुत्रजन्मनिरोधः स्यात् यदि केनापि
कर्मणा ॥ तदा कश्चिदुपायेन पुत्रोत्पत्ति प्रसाधयेत् ॥ ७ ॥ हरिवंशकथां श्रुत्वा
शतचण्डीविधानतः ॥ भक्त्या श्रीशिवमाराध्य पुत्रमुत्पादयेत् सुधीः ॥ ८ ॥ पुन्नाम्नो-
नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः ॥ तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥ ९ ॥
एकोऽपि पुत्रो धर्मात्मा सर्वं तारयते कुलम् ॥ पुत्रेण लोकाञ्जयति श्रुतिरेषा

नहीं जो पापी हैं उनकी गति को मैंने तुमसे पहिले कहा हे तार्क्ष्य ! पुत्रवान् जो धर्मात्मा हैं उनकी दुर्गति कभी नहीं होती है ॥ ६ ॥ यदि उस धर्मात्मा पुरुष को किसी कर्म के विरोध से सन्तान की उत्पत्ति न होतो किसी उपाय से पुत्र उत्पन्न होने की उत्पत्ति का साधन करे ॥ ७ ॥ हरिवंश पुराण की कथा को सुनकर, विधिपूर्वक शतचण्डी की आराधना तथा भक्ति पूर्वक शिवजी का पूजन करके सुन्दर बुद्धि वाले मनुष्य पुत्र को उत्पन्न करते हैं ॥ ८ ॥ पुत्र जो है वह पितरों को नरकों से बचाता है इसलिये ब्रह्मा जी ने स्वयं इसे पुत्र शब्द से कहा है ॥ ९ ॥ एकही धर्मात्मा पुत्र संपूर्ण कुलों को तार देता है और पुत्री से सब लोकों को जीत लेता है यह सन्तानो व्युत्पत्ति है ॥ १० ॥ यह उत्तम पुत्र का माहात्म्य वेदों में कहा है इसलिये पुत्र का मुख देखकर पिता पितृ ऋण से छूट जाता

सनातनी ॥ १० ॥ इति वेदैरपि प्रोक्तं पुत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ तस्मात्पुत्रमुखं दृष्ट्वा मुच्यते पैतृकादृणात ॥ ११ ॥ पौत्रस्य स्पर्शनान्मर्त्यो मुच्यन्ते च ऋणत्रयात् ॥ लोकानन्त्यं दिवप्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोढा पुत्रान्नयति सगृहीत स्त्वधो नयेत् ॥ एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातेः सुतां त्यजेत् ॥ १३ ॥ सवर्णेभ्यः सवर्णासु ये पुत्रा औरसाः खग ॥ त एव श्राद्धदानेन पितॄणां स्वर्गहेतवः ॥ १४ ॥ श्राद्धेन पुत्रदत्तेन स्वर्यातीति किमुच्यते ॥ प्रेतोऽपि परदत्तेन गतः स्वर्गमथो

है ॥ ११ ॥ और पौत्र को स्पर्श करने से मनुष्य तीन प्रकार के ऋण से छूट जाता है और यमलोक आदि दुर्गम लोकों को लांघकर जाता है और पुत्र तथा पौत्र से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥ १२ ॥ ब्राह्म विवाह की विधि से जिस स्त्री का ब्याह हुआ है उससे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मोढा होता है वह पुत्र अपने पितरों को स्वर्ग आदि लोकों में पहुँचता है और विना विवाहिता से उत्पन्न जो पुत्र है वह नरकों में पहुँचाता है इस बातको जानकर मनुष्य हीन जाति की कन्या का त्याग करे ॥ १३ ॥ हे पक्षिराज ! सवर्णस्त्रियों में सवर्ण पुरुष से जो पुत्र होवे हैं वह श्राद्ध के दान से पितरों को स्वर्ग पहुँचाने का कारण होते हैं ॥ १४ ॥ और यह जो तुमने पूछा कि पुत्र के श्राद्ध दान से जैसे मनुष्य स्वर्ग जाने का अधिकारी होता है वैसे ही दूसरे के दिये हुए श्राद्ध से प्रेत भी सद्गति को पाया इसपर एक

शृणु ॥ १५ ॥ अत्रैवोदाहरिष्यन्ति सेतिहासं पुरातनम् ॥ और्ध्वदेहिकदानस्य परं माहात्म्यसूचकम् ॥ १६ ॥ पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजसीद् बभ्रुवाहनः ॥ महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥ १७ ॥ यज्वा दानपतिः श्रीमान् ब्रह्मण्यः साधुवत्सलः ॥ शीलाचारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥ १८ ॥ पालयामास धर्मेण प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ क्षत्रधर्मरतो नित्यं सदण्ड्यान् दण्डयन्नृपः ॥ १९ ॥ स कदाचिन्महाबाहुः ससैन्यो मृगयां गतः ॥ वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् ॥ २० ॥

पुराना इतिहास कहते हैं सुनो ॥ १५ ॥ यह इतिहास उदाहरण रूप में है जो और्ध्वदैहिक दान के माहात्म्य को सूचित करने वाला है ॥ १६ ॥ हे गरुड़ ! त्रेतायुग में बभ्रु वाहन नाम राजा अत्यन्त सुन्दर धर्मात्मा महोदय पुर नाम नगर में हुआ ॥ १७ ॥ वह यज्ञों का करने वाला, दानी, लक्ष्मीवान्, ब्राह्मणों का भक्त, साधुओं में रुचि करने वाला और शीलवान्, आचार तथा सब गुणों से युक्त, दया दाक्षिण्य से युक्त हुआ ॥ १८ ॥ धर्म से अपने और इस पुत्र के समान प्रजाओं का पालन करने वाला दण्ड देने योग्य को दण्ड देनेवाला वह राजा क्षत्रियों के धर्म में परायण रहने वाला हुआ ॥ १९ ॥ किसी समय वह राजा मृगया के लिये सेना सहित नाना प्रकार के वृक्ष और लताओं से सघन वन में प्रवेश किया ॥२०॥ वह वन नाना प्रकार के मृगों से परिपूर्ण, भाँति भाँति के पक्षियों

नानामृगगणाकीर्णं नानापक्षिनिनादितम् ॥ वनमध्ये तदा राजा मृगं दूरादपश्यत
॥ २१ ॥ तेन विद्धो मृगो तीव्रबाणेन सुदृढेन च ॥ बाणमादाय तं तस्यवनेऽदर्शनम्
मेयिवान् ॥ २२ ॥ कक्षेण रुधिरार्द्रेण स राजानुजगाम तम् । ततो मृगप्रसंगेन वनम-
न्यद् विवेश सः ॥ २३ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसंतापमूर्छितः ॥ जलाशयं समा-
साद्य साश्वएव व्यगाहत ॥ २४ ॥ पपौ तदुदकं शीतपद्मगन्धाधिवासितम् ॥ ततोऽ-
वतीर्य सलिलाद्विश्रमो बभ्रुवाहनः ॥२५॥ ददर्शाग्रे च न्यग्रोधं तच्छायं सुमनोहरम् ॥

से पर्याप्त वन की अपूर्व शोभा को देखता हुआ उस राजा ने दूरसे एक मृग को देखा ॥ २१ ॥ फिर वह राजा अपने दृढ़ और तीक्ष्ण बाणों से उस मृग को घायल किया परन्तु वह मृग राजा के बाण को लेकर उस वनमें अदृश्य हो गया ॥२२॥ वह राजा मृग के रुधिरों का चिन्ह देखता हुआ उस मृग का पीछा किया और उसी मृग के प्रसंग से राजा दूसरे वन में चला गया ॥ २३ ॥ क्षुधा और तृषा से पीड़ित राजाने जलाशय पर पहुँच कर घोड़े के सहित उस जलाशय में स्नान किया और अपने श्रम को दूर करने के लिये ॥२४॥ कमल से सुगन्धित उस जलाशय का शीतल जल इच्छापूर्वक पान किया बाद में जलसे बाहर निकल कर अपने श्रमको दूर किया॥२५॥ जलाशय के आगे सुन्दर छाया से और बड़ी शाखाओं से युक्त एक महा विशाल वट के वृक्ष को देखा जिसपर अनेक प्रकार के पक्षी

महाविटपविस्तीर्णं पक्षिसंघनिनादितम् ॥ २६ ॥ वनस्य तस्य सर्वस्य महाकेतुमिव स्थितम् ॥ मूलं तस्य समासाद्य निषसाद महीपतिः ॥ २७ ॥ अथ प्रेतं ददर्शाऽसौ क्षुत्तृड्भ्यां व्याकुलेन्द्रियम् ॥ उत्कचं मलिनं कुब्जं निर्मांसं भीमदर्शनम् ॥ २८ ॥ तं दृष्ट्वा विकृतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः ॥ प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम् ॥ २६ ॥ समुत्सुकमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागतः ॥ अब्रवीत्स तदा तात प्रेतो राजानमादरात् ॥ ३० ॥ प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ॥ त्वत्संयोगान्महाबाहो जातो धन्यतरोऽस्म्यहम् ॥ ३१ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णवर्णो करा-

किल्लोल करते हैं ॥ २६ ॥ सब वृक्षों से अधिक ऊँचा होने के कारण उस वृक्ष के समीप पहुँच कर राजा छाया में बैठ गया ॥२७॥ बैठा हुआ वह राजा भूख प्यास से व्याकुल हैं इन्द्रियां जिसकी सिर के बाल ऊपर को खड़े हैं अत्यन्त मलिन स्वरूप है भयानक दर्शन जिसका ऐसे एक प्रेत को देखा ॥ २८ ॥ विकृत और घोर राक्षस को देखकर राजा बड़े आश्चर्य में पड़ा और उस घोर बनमें आये राजा को देखकर वह प्रेत भी विस्मित हुआ ॥ २६ ॥ और बड़ा उत्कंठित होकर वह प्रेत राजा के पास आया और आदर पूर्वक उस राजा से बोला ॥ ३० ॥ हे राजन् ! तुम्हारे संयोग से आज मेरी प्रेतयोनि छूटी और मैं सद्गति को प्राप्त होकर आज

त्वास्य प्रेतत्वं घोरदर्शनम् ॥ केन कर्मविपाकेन प्राप्तं ते बह्वमंगलम् ॥ ३२ ॥ प्रेतत्वकारणं तात ब्रूहि सर्वमशेषतः ॥ कोऽसि त्वं केन दानेन प्रेतत्वं ते विन-श्यति ॥ ३३ ॥ प्रेत उवाच ॥ कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव ॥ प्रेतत्व-कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ३४ ॥ वैदेशं नामनगरं सर्वसंपत्समन्वितम् ॥ नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥ ३५ ॥ हर्म्यैः प्रासादशोभाढ्यं नानाधर्म-समन्वितम् ॥ तत्राहं न्यवसे तात देवार्चनरतः सदा ॥ ३६ ॥ वैश्यो जात्या सुदेवोऽहं

धन्य हुआ ॥ ३१ ॥ राजा ने कहा काला रंग भयानक मुख और तेरा घोर दर्शन और अत्यन्त अमंगल स्वरूप तूने किस कर्म के फल से पाया है ॥ ३२ ॥ हे तात ! तू प्रेत देह मिलने का कारण कहो तू कौन से दान से तेरा प्रेतपन छूटेगा ॥ ३३ ॥ राजा के ऐसे वचन सुनकर प्रेत ने कहा हे राजाओं के मान्य ! तुम दया करने के योग्य हो इसलिये आदि से अन्त तक मैं अपना सब वृत्तान्त तुम से कहता हूँ मेरे प्रेतपन के कारण सुनो ॥ ३४ ॥ संपूर्ण संपत्तियों से युक्त वैदेश नाम नगर धन रत्न से भरा पूरा है ॥ ३५ ॥ वहाँ बड़े बड़े धनिकों के स्थान बने हैं जिससे वह नगर अत्यन्त शोभायमान है और श्रौत स्मार्त जो धर्म है, उनका अनुष्ठान करने वाले हैं, हे तात ! मैं देवताओं का पूजन करके उस नगर में निवास करता था ॥ ३६ ॥ मैं जाति का वैश्य और सुदेव मेरा नाम है

नाम्ना विदितमस्तु ते ॥ हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरस्तथा ॥ ३७ ॥ विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः संतर्पिता मया ॥ दीनान्धकृपणेभ्यश्च दत्तमन्नमनेकधा ॥ ३८ ॥ तत्सर्वं निष्फलं राजन् मम दैवादुपागतम् ॥ यथा मे निष्फलं जातं सुकृतं तद्वदामि ते ॥ ३९ ॥ मम वै सन्ततिर्नास्ति न सुतो न च बान्धवः ॥ न च मित्रं हि मे तादृग्यः कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ४० ॥ यस्य न स्यान्महाराज श्राद्धं मासिकषोडशम् ॥ प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ ४१ ॥ त्वमौर्ध्वदैहिकं कृत्वा मामुद्धर महीपते ॥ वर्णानां चैव सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते ॥ ४२ ॥ तन्मां तारय

मैं सदा धर्मों का आचरण करने वाला हव्य से देवताओं को और कव्य से पितरों को सन्तुष्ट किया करता था ॥ ३७ ॥ और अनेक प्रकार के दान से ब्राह्मणों को और नित्य अन्न दान से अन्धे, लँगड़े, लूले, दीन, अनाथ, और कृपण आदि को प्रसन्न किया ॥ ३८ ॥ हे राजन् ! दैवयोग से वह सब दान मेरा निष्फल हो गया जिस कारण से मेरा पुण्य नष्ट हुआ वह मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ३९ ॥ मुझे बेटा नहीं बन्धु बान्धव आदि कोई भी नहीं जो मेरे परलोक की क्रिया करे ॥ ४० ॥ हे राजन् ! जिसका षोडश और मासिक श्राद्ध नहीं होता है उसके सैकड़ों श्राद्ध करने पर भी प्रेतत्व नहीं जाता है ॥ ४१ ॥ हे पृथ्वीपाल ! तुम और्ध्वदैहिक श्राद्ध करने से मेरा

राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते ॥ यथा मे सद्गतिर्भूयात् प्रेतयोनिश्च गच्छति ॥४३॥
तथा कार्यं त्वया वीर मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ क्षुधातृषादिभिर्दुःखैः प्रेतत्वं दुःसहं मम
॥४४॥ स्वादूदकं फलं चास्ति वनेऽस्मिञ्छलिलं शिवम् ॥ न प्राप्नोमि क्षुधार्तोऽहं
तृषार्तो न जलं क्वचित् ॥४५॥ यदि मे हि भवेद्राजन्विधिर्नारायणो महान् ॥ तदग्रे वेद
मन्त्रैश्च क्रियासर्वौर्ध्वदैहिकी ॥४६॥ तदा नश्यति मे नूनं प्रेतत्वं नात्र संशयः ॥
वेदमन्त्रास्तपोदानं दया सर्वेषु जन्तुषु ॥४७॥ सच्छास्त्रश्रवणं विष्णोः पूजा सज्जनसंगतिः॥

उद्धार करो क्योंकि इस लोक में सब वर्णों का बन्धु राजा कहा जाता है ॥४२॥ हे राजेन्द्र! मुझे तारने का उपाय करो तुमको मणि रत्न देता हूँ जिसमें प्रेतयोनि से छूट कर सद्गति को प्राप्त होऊँ ॥ ४३ ॥ हे राजा! मेरा औदेर्ध्वहिक श्राद्ध जो किया चाहता हो तो करो क्योंकि प्रेत को क्षुधा तृषा अधिक होती है और यह दुःख सहने योग्य नहीं होता ॥ ४४ ॥ हे नृपति! इस बनमें स्वादिष्ट और स्वच्छ जल से पूर्ण जलाशय हैं तथा अनेक फलों से भरा हुआ यह बन है परन्तु मैं सदा भूखा प्यासा रहता हूँ वह मुझको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥ हे राजन्! जो मेरी बड़ी नारायणी विधि वेद मन्त्रों से सब और्ध्वदैहिक क्रिया जाय तो ॥ ४६ ॥ निश्चय मेरा प्रेतपन नष्ट हो सकता है इसमें सन्देह नहीं, वेदमन्त्र. तपस्या, दान, तथा सब जीवों पर दया ॥ ४७ ॥ उत्तम शास्त्रों का सुनना

प्रेतयोनिविनाशाय भवन्तीति मया श्रुतम् ॥४८॥ अतो वक्ष्यामि ते विष्णुपूजां प्रेतत्व-
नाशिनीम् ॥ सुवर्णद्वयमानीय सर्वाङ्गन्याससञ्चिताम् ॥ तस्य नारायणस्यैकां प्रतिमा-
मुपकल्पयेत् ॥४९॥ पीतवस्त्रयुगच्छन्नां सर्वाभरणभूषिताम् ॥ स्नापितां विविधैस्तो-
यैरधिवास्य यजेत्ततः ॥५०॥ पूर्वं तु श्रीधरं तस्या दक्षिणे मधुसूदनम् । पश्चिमे वामनं
देवमुत्तरे च गदाधरम् ॥५१॥ मध्ये पितामहं चैव तथा देवं महेश्वरम् ॥ पूजयेच्च
विधानेन गन्धपुष्पादिभिः पृथक् ॥५२॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य वह्नौ सन्तर्प्य देवताः ॥
घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवांश्च तर्पयेत् ॥५३॥ ततो स्नातो विनीतात्मा यजमानः समा-

और विष्णु की पूजा, तथा सज्जनों की संगति ये सब प्रेतयोनि को नाश करने वाले हैं ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! प्रेतपन का नाश करने वाली विष्णु की पूजा को तुमसे कहता हूँ बत्तीस मासा सुवर्ण लेकर सर्वांग सहित नारायण की एक प्रतिमा बनावे ॥४९॥ उस प्रतिमा को दो पीताम्बर ओढ़ावे और अलंकार से शोभित करे और तीर्थों के जल से प्रतिमा को स्नान करावे और सिंहासन पर स्थापित कर विधिवत् पूजन करे ॥ ५० ॥ उस सुवर्णमयी प्रतिमा के पूर्वभाग में श्रीधर दक्षिण में मधुसूदन पश्चिम में वासुदेव और उत्तर में गदाधर को स्थापित करे ॥ ५१ ॥ प्रतिमा के मध्य में ब्रह्मा और शिवजी का विधि पूर्वक षोडशोपचार से पूजन करे ॥ ५२ ॥ फिर

हितः ॥ नारायणाग्रे विधिवत्सर्वां क्रियामौर्ध्वदैहिकीम् ॥५४॥ आरभेत यथा शास्त्रं क्रोधलोभविवर्जितः ॥ कुर्याच्छ्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ॥५५॥ ततः पदानि विप्रेभ्यो दद्याच्चैव त्रयोदश ॥ शय्यादानं प्रदायाथ घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ॥५६॥ राजोवाच ॥ कथं प्रेतघटं कुर्याद् दद्यात्केन विधानतः ॥ ब्रूहि सर्वानुकम्पार्थं घटं प्रेतविमुक्तिदम् ॥५७॥ प्रेत उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज कथयामि निबोध ते ॥ प्रेतत्वं न भवेद् येन दानेन सुदृढेन च ॥५८॥ दानं प्रेतघटं नाम सर्वाशुभविनाशनम् ॥ दुर्लभं

प्रदक्षिणा करके अग्नि में देवताओं को सन्तुष्ट करके घी, दही, से विश्वेदेवा को तृप्त करे ॥ ५३ ॥ इसके उपरान्त प्रेतयोनि को छुड़ाने के लिये नारायण के सामने और्ध्वदैहिक क्रिया करे ॥ ५४ ॥ फिर क्रोध तथा लोभ का परित्याग करके शास्त्र की रीति से सब श्राद्धों का आरंभ करे बाद में वृषोत्सर्ग करे ॥ ५५ ॥ त्रयोदशाह के दिन ब्राह्मणों के लिये तेरहपद भूमि दान करे और शय्या दान करके प्रेत की तृप्ति के लिये घट दान करे ॥ ५६ ॥ यह सुनकर राजा उस प्रेत से पूछने लगे कि प्रेत को मुक्ति देनेवाला किस विधि से घट दान किया जाता है वह सब तुम मुझसे कहो ॥ ५७ ॥ प्रेत ने कहा हे राजन्! सब जीवों के हित के लिये दुर्लभ घटदान की विधि कहता हूँ जिससे प्रेतपन नष्ट हो जावे उसे मन लगा कर सुनो ॥ ५८ ॥ यह प्रेत घट नाम दान सब अशुभ का

सर्वलोकानां दुर्गतिक्षयकारकम् ॥५९॥ सतप्तहाटकमयं तु घटं वितीर्य ब्रह्मेशकेशवयुतं
सहं लोकपालैः ॥ क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किम-
न्यैः ॥६०॥ ब्रह्मा मध्ये तथा विष्णुः शंकरः शंकरोऽव्ययः ॥ प्राच्यादिषु च तत्कण्ठे
लोकपालान्क्रमेण तु ॥६१॥ संपूज्य विधिवद्राजन्धूपैः कुसुमचन्दनैः ॥ ततो दुग्धाज्य-
सहितं घटं देयं हिरण्मयम् ॥६२॥ सर्वदानाधिकं चैतन्महापातकनाशनम् ॥ कर्तव्यं
श्रद्धया राजन्प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥६३॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एवं संजल्पतस्तस्य प्रेतेन सह
काश्यप ॥ समाजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसंकुले ॥६४॥ ततो बले समायाते दत्त्वा राज्ञे

नाश करने वाला है ॥ ५९ ॥ उत्तम स्वर्ण का घट बनाकर ब्रह्मा, शिव, केशव और इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि जो लोकपाल हैं इनसे युक्त करके दूध घी से भरकर ब्राह्मणों को दान करे ॥ ६० ॥ घट के मध्य में ब्रह्मा, विष्णु, और शिवजी का पूजन करे और उन घड़ों को पूर्व आदि दिशाओं में रखकर घट के कंठ में लोकपालों की पूजा करे ॥ ६१ ॥ हे राजन्! पुष्प, चन्दन, आदि उपचारों से पूजा करके दूध और घी से युक्त उस घट को ब्राह्मण के लिये देवे ॥ ६२ ॥ महापातक को नाश करने वाले धर्म घट का दान सब दानों में श्रेष्ठ है इसलिये प्रेतयोनि से छुड़ाने के लिये यह दान मनुष्यों को अवश्य करना चाहिये ॥६३। श्री विष्णु

महात्मणिम् ॥ नमस्कृत्य पुनः प्रार्थ्य प्रेतोऽदर्शनमेयिवान् ॥६५॥ तस्माद्वनाद्विनिष्क्रम्य राजापि स्वपुरं ययौ ॥ स्वपुरं च समासाद्य तत्सर्वं प्रेतभाषितम् ॥६६॥ चकार विधिवत्पक्षिन्नौर्ध्वदैहिकजं विधिम् ॥ तस्य पुण्यप्रसादेन प्रेतो मुक्तो दिवं ययौ ॥६७॥ श्राद्धेन परदत्तेन गतः प्रेतोऽपि सद्गतिम् ॥ किं पुनः पुत्रदत्तेन पिता यातीति सद्गतिम् ॥६८॥ इतिहासमिमं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः ॥ न तौ प्रेतत्वमायातः पापाचारयुतावपि ॥६९॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे बभ्रुवाहनप्रेतसंस्कारोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भगवान् बोले हे गरुड़ ! राजा उस प्रेत के साथ बात चीत करते थे इतने में उनकी चतुरंगिणी सेना पीछे से आ गई ॥६४। सेना के आने पर वह प्रेत राजा को अपनी सद्गति के लिये मणि रत्न देकर अन्तर्धान हो गया ॥ ६५ ॥ सेना समेत राजा भी वन से लौटकर अपने नगर पहुँचे और प्रेत से कही उन सब और्ध्वदेहिक क्रियाओं को करने में तत्पर हुए ॥६६॥ जब राजा ने मरने के पीछे की क्रियाओं का विधिपूर्वक किया तब वह प्रेत अपनी योनि से छूटकर उस पुण्य के बल से स्वर्ग को चला गया ॥६७॥ जब दूसरे के दिये श्राद्ध से प्रेत उत्तम गति को प्राप्त हुआ तब जो पुत्रों से दिये श्राद्ध हैं उनसे पिता आदि को स्वर्ग होता है तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥६८॥ इस पुरातन और पवित्र इतिहास को जो सुनेगा और कहेगा वे दोनों पापी होने पर भी प्रेतयोनि को नहीं पावेंगे ॥६९॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

गरुड उवाच ॥ आमुष्मिकीं क्रियां सर्वां वद सुकृतिनां मम ॥ कर्तव्या सा यथा पुत्रस्तथा च कथय प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै ॥ धार्मिकाहं च यत्कृत्यं तत्सर्वं कथयामि ते ॥ २ ॥ सुकृती वार्धकं दृष्ट्वा शरीरव्याधिसंयुतम् ॥ प्रतिकूलान्ग्रहांश्चैव प्राणघोषस्य चाश्रुतिम् ॥ ३ ॥ तदा स्वमरणं ज्ञात्वा निर्भयः स्यादतन्द्रितः ॥ अज्ञातज्ञातपापानां प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ ४ ॥ यदा स्यादातुरः कालस्तदा नूनं समारभेत ॥ पूजनं कारयेद्विष्णोः शालग्रामस्वरूपिणः ॥ ५ ॥ अर्चयेद्-

गरुड़जी ने पूछा हे महाराज ! परलोक में सहायता करने वाला जो पुण्य हैं और पुत्र आदिकों के करने योग्य जो क्रियाएँ हैं उन सबको मुझसे कहिये ॥ १ ॥ श्री विष्णु भगवान् बोले हे गरुड़ ! संसारी मनुष्यों के लिये तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया जो कार्य पुण्यवानों के योग्य है वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ २ ॥ बुद्धिमान् को चाहिये कि वृद्धावस्था में शरीर को रोग युक्त देख कर और अपने प्रतिकूल ग्रहों की दृष्टि जानकर अपने इन्द्रियों की शिथिलता देखकर ॥ ३ ॥ अपने मरण का समय जानकर निर्भय और आलस्य रहित हो पापों का प्रायश्चित्त करे ॥ ४ ॥ जब अंत काल उपस्थित हो जावे तब स्नान कर संध्या वन्दन के उपरान्त शालिग्राम का पूजन करे ॥ ५ ॥ गन्ध पुष्प आदि अनेक उपचारों से भक्तिपूर्वक विष्णु भगवान का पूजन करके उनसे प्रार्थना करे कि मेरे पापों को

गन्धपुष्पैश्च कुंकुमैस्तुलसीदलैः ॥ धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्बहुभिर्मोदकादिभिः ॥६॥ दत्वा च दक्षिणां विप्रान्नैवेद्याद्देव भोजयेत् ॥ अष्टाक्षरं जपेन्मन्त्रं द्वादशाक्षरमेव च ॥७॥ संस्मरेच्छृणुयाच्चैव विष्णोर्नाम शिवस्य च ॥ हरेर्नाम हरेत्पापं नृणां श्रवणगोचरम् ॥८॥ रोगिणोऽन्तिकमासाद्य शोचनीयो न बान्धवः ॥ स्मरणीयं पवित्रं मे नामधेयं मुहुर्मुहुः ॥९॥ मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नारसिंहश्च वामनः ॥ रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्की तथैव च ॥१०॥ एतानि दश नामानि स्मर्तव्यानि सदा बुधैः ॥ समीपे रोगिणो ब्रूयुर्बान्धवास्ते प्रकीर्तिताः ॥११॥ कृष्णेति मंगलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ॥ तस्य भस्मी-

क्षमा करो ॥ ६ ॥ और नैवेद्य ही में से ब्राह्मणों को भोजन कराके दक्षिणा देवे और अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर मन्त्रों का जप करे ॥७॥ और क्रिष्णु तथा शिव के पवित्र नाम का स्मरण करे और लोगों के मुखसे कहे गये विष्णु का नाम कानों में पड़नेसे अनेक पापों को हर लेता है ॥ ८ ॥ रोगी के समीप जाकर बन्धु भाइयों को सोच न करना चाहिये और बारंबार मेरे पवित्र नाम का स्मरण करना चाहिये ॥ ९ ॥ मत्स्य, कूर्म, वाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि ॥ १० ॥ यह भगवान् के दश नाम पण्डितों को सदा स्मरण रखना चाहिये बन्धुओं को उचित है कि ये दश नाम रोगी के समीप उच्चारण करें ॥११॥ कृष्ण यह

भवन्त्याशु महापातककोटयः ॥१२॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजा-
मिलोप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥१३॥ हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥१४॥ हरेर्नाम्नश्च या शक्तिः पापनिर्हरणे
द्विज ॥ तावत्कर्तुं समर्थो न पातकं पातकीजनः ॥१५॥ किंकरेभ्यो यमः प्राहानयन्वै
नास्तिकं जनम् ॥ नैवानयत भो दूताः हरिनामस्मरं नरम् ॥१६॥ अच्युतं केशवं
रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम् ॥ श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीना-

मंगल नाम जिसके मुख से निकलता है उसके करोड़ों महापातक शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं ॥ १२ ॥ बेटे से कहे गये विष्णु के स्मरण से मरने वाला पुरुष मुक्ति पाता है विष्णु के नामके प्रताप से अजामिल वैकुण्ठ धाम को गया और जो श्रद्धासे स्मरण करता है उसका क्या कहना है ॥ १३ ॥ दुष्ट चित्त वाले भी यदि परमेश्वर के नामों का स्मरण करते हैं तो उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं जैसे बिना इच्छा के भी छूने से अग्नि जला ही देती है ॥१४॥ हे गरुड़ ! पापों को हरण करने में जो सामर्थ्य विष्णु के नामोंमें है उतना पाप पापी मनुष्यों के करने का सामर्थ्य नहीं है ॥ १५ ॥ यमराज ने अपने दूतों को आज्ञा दी है कि जो नास्तिक हैं उन्हें हमारे यहाँ ले आना और जो विष्णु के भक्त हों उन्हें कदापि मत ले आना ॥ १६ ॥ अच्युत, केशव, राम, नारायण, कृष्ण, दामोदर, वासुदेव, हरि,

यकं रामचन्द्रं भजे ॥१७॥ कमलनयनवासुदेवविष्णो धरणिधराऽच्युतशंखचक्रपाणिन् । भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥१८॥ तानानयध्वमसतो-विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ॥ निष्किञ्चनैः परमहंसकुलैरसङ्गैर्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि वद्धतृष्णान् ॥१९॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽ-कृतविष्णुकृत्यान् ॥२०॥ तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मंगलमंहसाम् ॥ महतामपि

श्रीधर, माधव, गोपिकावल्लभ और जानकीनायक जो रामचन्द्र हैं उनको मैं भजता हूँ ॥ १७ । हे दूतो ! जो कमलनयन, वासुदेव, विष्णु, धरणीधर, अच्युत, शंख चक्रपाणि, भवशरणम्, इत्यादि नामों को उच्चारण करते हैं उनको दूरही से त्याग करना अर्थात् उनके पास कभी मत जाना ॥ १८ ॥ जो दुष्ट स्वभाव के हैं और भगवान के कमलरूपी चरणों में प्रेम नहीं करनेवाले हैं सन्तों की सेवा से विमुख हैं दरिद्रों की सेवा करने वाले और बड़ी तृषा वालों को मेरे लोक में ले आना ॥ १९ ॥ जिनकी जिह्वा भगवान के नामों को नहीं कहती और हृदय में परमेश्वर के चरणकमल का स्मरण नहीं करते हैं एक बार भी परमात्मा को नमस्कार नहीं किया ऐसे दुष्टों को मेरे लोकों में ले आओ ॥ २० ॥ हे पक्षियों में इन्द्र ! संसार का मंगल स्वरूप संपूर्ण पापों को हरण करने वाले प्रायश्चित्त स्वरूप

पक्षीन्द्र विद्ध्येकान्तिकनिष्कृतिम् ॥२१॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥
न निष्पुनन्ति दुर्बुद्धिं सुराकुम्भमिवापगाः ॥२२॥ कृष्णनाम्ना न नरकं पश्यन्ति गत-
किल्बिषाः ॥ यमं च तद्भटांश्चैव स्वप्नेऽपि न कदाचन ॥२३॥ मांसास्थिरक्तवत्कायवै-
तरण्यां पतेन्न सः ॥ योऽन्ते दद्याद् द्विजेभ्यश्च नन्दनन्दनगामिनि ॥२४॥ अतः स्मरे-
न्महाविष्णोर्नाम पापौघनाशनम् ॥ गीतासहस्रनामानि पठेद्वा शृणुयादपि ॥२५॥
एकादशीव्रतं गीता गंगाम्बुतुलसीदलम् ॥ विष्णोः पदाम्बुनामानि मरणे मुक्तिदानि च

भगवान कृष्ण के नाम को जानो ॥ २१ ॥ नारायण से विमुख होकर जो प्रायश्चित्त करते भी हैं वे ऐसे ही शुद्ध और पवित्र नहीं होते जैसे मदिरा का घट नदी के जल से नहीं पवित्र होता है ॥२२॥ कृष्ण के नाम को स्मरण करने वाले सब पातकों से रहित होकर नरकों का दर्शन नहीं करते हैं और यमदूतों को तो स्वप्न में भी नहीं देखते हैं ॥ २३ ॥ मांस अस्थि (हड्डी) रुधिर से युक्त काया-रूपी वैतरणी है, क्योंकि वैतरणी भी मांस रुधिर के कीच से भरी है ब्राह्मण को गौ देनेवाले वैतरणी में नहीं गिरते हैं और भगवान को भजने वाले कायारूपी वैतरणी में नहीं गिरते हैं अर्थात् मुक्त हो जाते हैं ॥ २४ ॥ पापों को नाश करने वाले विष्णु के नामों को स्मरण करे गीता पाठ तथा विष्णुसहस्रनाम का पाठ करे या औरों से सुने ॥२५॥ एकादशी को व्रत, गीतापाठ, गंगाजल, तुलसीदल और

॥२६॥ ततः संकल्पयेदन्नं सघृतं च सकाञ्चनम् ॥ सवत्सा धेनवो देयाः श्रोत्रियाय द्विजातये ॥२७॥ अन्ते जनो यद्ददाति स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥ तदक्षयं भवेत्तार्क्ष्य यत्पुत्रश्चानुमोदते ॥२८॥ अन्तकाले तु सत्पुत्रः सर्वदानानि दापयेत् ॥ यत्तदर्थं सुतो लोके प्रार्थ्यते धर्मकोविदैः ॥२९॥ भूमिष्ठं पितरं दृष्ट्वा अर्धोन्मीलितलोचनम् ॥ पुत्रैस्तृष्णा न कर्तव्या तद्धने पूर्वसंचिते ॥३०॥ स तद्ददाति सत्पुत्रो यावज्जीवत्यसौ चिरम् ॥ अतिवाहस्तु तन्मार्गे दुःखं न लभते यतः ॥३१॥ आतुरे चोपरागे च द्वयं दानं विशि-

विष्णु का चरणामृत, तथा विष्णु के नाम ये सब मरण समय में मुक्ति को देनेवाले हैं ॥ २६ ॥ पश्चात् घी, और सुवर्ण सहित अन्न को संकल्प करके और दूध देनेवाली गौ वेदपाठी ब्राह्मण को दान करे ॥ २७ ॥ हे गरुड़ ! अन्त समय में जो मनुष्य थोड़ा अथवा बहुत दान करता है वह अक्षय होता है और जो उसका पुत्र पिता के परलोक के लिये देता है वह भी अक्षय होता है ॥ २८ ॥ सत्पुत्र अर्थात् पिता का भक्त अन्त समय में पिता से सब दान दिलावे आतुर दान के लिये ही धर्मात्मा पुरुष पुत्र की चाहना करते हैं ॥ २९ ॥ पिता को मरण शय्यापर पड़े हुए भूमि पर देखकर पुत्र को उचित है कि पिता के उपार्जित धन की तृष्णा नहीं करे ॥ ३० ॥ पुत्र जो पिता के लिये श्राद्ध दान आदि करता है उससे जब तक वह जीव जीता है तब तक परलोक के राह में पहले कहे गये दुःखों को नहीं पाता है ॥ ३१ ॥ आतुर काल में और ग्रहण के समय में जो दान दिये जाते हैं वे सब दानों से श्रेष्ठ होते हैं

ष्यते ॥ अतोऽवश्यं प्रदातव्यं अष्टदानं तिलादिकम् ॥३२॥ तिला लोहं हिरण्यं च कार्पासो लवणं तथा ॥ सप्तधान्यं क्षितिर्गावो एकैकं पावनं स्मृतम् ॥३३॥ एतदष्टमहादानं महापातकनाशनम् ॥ अन्तकाले प्रदातव्यं शृणु तस्य च सत्फलम् ॥३४॥ मम स्वेदसमुद्भूताः पवित्रास्त्रिविधास्तिलाः ॥ असुरा दानवा दैत्यास्तृप्यन्ति तिलदानतः ॥३५॥ तिलाः श्वेतास्तथा कृष्णा दानेन कपिलास्तिलाः ॥ संहरन्ति त्रिधा पापं वाङ्मनःकायसंचितम् ॥३६॥ लोहदानं च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना ॥ यमसीमां न चाप्नोति न गच्छेत्तस्य वर्त्मनि ॥३७॥ कुठारो मुसलो दण्डः खड्गश्च क्षुरिका तथा ॥

इनमें आठ महादान तो अवश्य देना चाहिये ॥ ३२ ॥ तिल १ लोहा २ सोना ३ कपास ४ लवण ५ सप्तधान ६ भूमि ७ गौ ८ ये आठ महादान हैं और एक से एक पवित्र हैं ॥३३॥ ये आठ महादान पातकों का नाश करने वाले हैं अन्तकाल में इनके देने का जो फल है वह तुमसे कहता हूँ सावधान होकर सुनो ॥ ३४ ॥ मेरे स्वेद (पसीना) से उत्पन्न तीन प्रकार के तिल हैं तिल दान करने से असुर दानव दैत्य ये प्रसन्न होते हैं ॥ ३५ ॥ सफेद, काले, और भूरे रंग के तिल से मन, वचन और काम से उत्पन्न तीन प्रकार के पाप नाश हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ भूमि में हाथ रख कर लोह दान करना चाहिये लोह दान करने वाले यमलोक के मार्ग का तथा

शस्त्राणि यमहस्ते च निग्रहे पापकर्मणाम् ॥३८॥ यमायुधानां सन्तुष्ट्यै दानमेतदुदाहृतम् ॥ तस्माद्दद्याल्लोहदानं यमलोके सुखावहम् ॥३९॥ ऊर्णः श्यामञ्च सूत्रञ्च शुण्डामर्कोऽप्युदुम्बरः ॥ शेषं बलो महादूता लोहदानात्सुखप्रदाः ॥४०॥ शृणु तार्क्ष्य परं गुह्यं दानानां दानमुत्तमम् ॥ दत्तेन तेन तुष्यन्ति भूर्भुवःस्वर्गवासिनः ॥४१॥ ब्रह्माद्या ऋषयो देवा धर्मराजसभासदः ॥ स्वर्णदानेन सन्तुष्टा भवन्ति वरदायकाः ॥४२॥ तस्माद्देयं स्वर्णदानं प्रेतोद्धरणहेतवे ॥ न याति यमलोकं स स्वर्गतिं तात गच्छति ॥४३॥ चिरं

उस लोक को नहीं देखते ॥ ३७ ॥ पापी मनुष्यों को दण्ड देने के लिये यम के हाथ में फरसा, मुसल, दण्ड और खड्ग तथा छूरी रहती है ॥ ३८ ॥ यमकी प्रसन्नता के लिये लोह दान शास्त्र में विहित है इसलिये यमलोक में सुख देनेवाले लोह दान को अवश्य करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे गरुड़ ! लोक के प्राणी सन्तुष्ट ऊर्णदान से तथा काले सूत्र के दान से शुण्डामर्क प्रसन्न होते हैं और लोह के दान से उदुम्बर और शेषबल यमलोक में सुख देनेवाले होते हैं ॥ ४० ॥ सब दानों में उत्तम दान को तुमसे कहता हूँ जिस दान से तीनों लोक के प्राणी सन्तुष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥ ब्रह्मा, इन्द्र, ऋषि, मुनि और धर्मराज की सभा के लोग स्वर्ण दान से सन्तुष्ट होकर वरदान देते हैं ॥ ४२ ॥ जो मनुष्य प्रेत के उद्धार के लिये सुवर्ण दान करते हैं वह यमलोक को न देखकर स्वर्ग में वास करते हैं ॥ ४३ ॥ और चिरकाल तक सत्यलोक में निवास करके फिर इस लोक में राजा के घर में जन्म लेता है और रूपवान, धर्मात्मा,

वसेत्सत्यलोके ततो राजा भवेदिह ॥ रूपवान्धार्मिको वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः ॥४४॥ कार्पासस्य तु दानेन दूतेभ्यो न भयं भवेत् ॥ लवणं दीयते यच्च तेन नैव भयं यमात् ॥४५॥ अयोस्लवणकार्पासतिलकाञ्चनदानतः ॥ चित्रगुप्तादयस्तुष्टा यमस्य पुरवासिनः ॥४६॥ सप्तधान्यप्रदानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् ॥ तुष्टा भवन्ति येऽन्येऽपि त्रिषु द्वारेष्वधिष्ठिता ॥४७॥ व्रीहयो यवगोधूमा मुद्गा माषाः प्रियङ्गवः । चणकाः सप्तमा ज्ञेयाः सप्तधान्यमुदाहृतम् ॥४८॥ गोचर्ममात्रं वसुधा दत्ता पात्रे विधानतः ॥ पुनाति ब्रह्महत्यांच दृष्टमेतन्मुनीश्वरैः ॥४९॥ न व्रतेभ्यो न तीर्थेभ्यो नान्यदानाद्विनश्यति ॥ राज्ये कृतं

बोलने में चतुर, लक्ष्मीवान और बड़ा पराक्रमी होता है ॥ ४४ ॥ कपास के दान से यमदूतों का भय नहीं होता है और लवण के दान से यमराज का भय नहीं होता है ॥ ४५ ॥ लोहादान, लवण, कपास, तिल और सुवर्ण के दान से यमपुर रहने वाले चित्रगुप्त आदि सब मन्त्रियों के सहित यमराज प्रसन्न होते हैं ॥ ४६ ॥ धान, जव, गेहूँ, मूंग, उरद और कंगुनी तथा चना इनको सप्तधान्य कहते हैं इनके दान से मनुष्य को अक्षय सुख मिलता है ॥ ४७ ॥ जो मनुष्य गोचर्म मात्र अर्थात् जितनी भूमि में गाय बैठ सकती हो उतनी भूमि दान करता है तो ब्रह्म हत्या आदि पातकों से छूट जाता है यह मुनीश्वरों ने देखा है ॥४८-४९॥ व्रत, तीर्थ, तथा

महापापं भूमिदानाद्विलीयते ॥५०॥ पृथिवीं सस्यसम्पूर्णां यो ददाति द्विजातये ॥ स प्रयातीन्द्रभवने पूज्यमानः सुरासुरैः ॥५१॥ अत्यल्पफलदानि स्युरन्यदानानि काश्यप ॥ पृथिवी दानजं पुण्यमहन्यहनि वर्द्धते ॥५२॥ यो भूत्वा भूमिपो भूमीं न ददाति द्विजातये ॥ न करोति कुटीं ग्रामे दरिद्रीस्याद्भवे भवे ॥५३॥ अदानाद्भूमिदानस्य भूपतित्वाभिमानतः ॥ निवसेन्नरके यावत् शेषो धारयते धराम् ॥५४॥ तस्माद् भूमीश्वरो भूमिदानमेव प्रदापयेत् ॥ अन्येषां भूमिदानार्थं गोदानं कथितं मया ॥५५॥ ततोऽन्त्यधे-

और दानों से राज्य में किये महापाप नाश होते हैं परन्तु भूमि के दान से अवश्य दूर हो जाते हैं ॥ ५० ॥ जो मनुष्य धान्य से पूर्ण पृथ्वी को दान करता है वह देवता और दैत्यों से पूजित होकर इन्द्र लोक को जाता है ॥ ५१ ॥ हे काश्यप ! और जितने दान हैं सब थोड़े फल को देनेवाले हैं पृथ्वी के दान से उत्पन्न पुण्य दिनों दिन बढ़ता है ॥ ५२ ॥ जो राजा होकर ब्राह्मण के लिये पृथ्वी नहीं देता है गाँव में रहने का स्थान नहीं बनवा देता है वह अनेकों जन्म दरिद्री होता है ॥ ५३ ॥ पृथ्वी दान न करने से तथा राजपन के अभिमान से तब तक नरकों में वास करता है जब तक शेषनाग पृथ्वी को धारण किये हैं ॥ ५४ ॥ पृथ्वी का स्वामी होकर ब्राह्मण के लिये भूमि अवश्य देना चाहिये अन्य प्राणियों को भूमिदान के बदले गोदान कहा है क्योंकि पृथ्वीरूपी गाय है ॥५५॥ गोदान पाँच

नुर्दातव्या रुद्रधेनुं प्रदापयेत् ॥ ऋणधेनुं ततो दत्वा मोक्षधेनुं प्रदापयेत् ॥५६॥ दद्याद्वै-
तरणीधेनुं विशेषविधिना खग ॥तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् ॥५७॥ बाल-
त्वे यच्च कौमारे यत्पापं यौवने कृतम् ॥ वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि
॥५८॥ यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्नयोः ॥ संध्ययोर्यत्कृतं पापं कायेन मनसा
गिरा ॥५९॥ दत्वा धेनुं सकृद्वापि कपिलां क्षीरसंयुताम् ॥ सोपस्करां सवत्सां च तपोवृ-
त्तसमन्वितैः ॥६०॥ ब्राह्मणे वेदविदुषि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ उद्धरेदन्तकाले स दातारं

प्रकार का है अन्तधेनु १ जो आतुर काल में होता है, रुद्रधेनु २ जो कठिन दुःख के समय गोदान होता है, ऋणधेनु ३ जो जान अनजान के ऋण छुड़ाता है और मोक्षधेनु ४ जिसके दान से मोक्ष को प्राप्ति होती है और वैतरणीधेनु ५ जो वैतरणी के पार उतरने के लिये गोदान होता है। गौ का दान तीन प्रकार के पापों को हर लेता है ॥५६॥५७॥ बालकपन, कुमारावस्था तथा वृद्धावस्था में किये जो पाप हैं और दूसरे जन्म के संचित जो पाप हैं ॥ ५८ ॥ रात्रिकाल प्रातःकाल मध्याह्न और अपराह्न तथा दोनों सन्ध्याओं में जो पाप मन, वचन और देह से होता है ॥ ५९ ॥ वह सब एक बार के दूध देनेवाली गाय के विधिपूर्वक दान करने से सब ऐसा नष्ट हो जाता है जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार ॥ ६० ॥ वेद को जानने वाले ब्राह्मण को दान देकर मनुष्य सब पापों से छूट

पापसंचयात् ॥६१॥ एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यातुरस्य च गोशतम् ॥ सहस्रं म्रियमा-
णस्य दत्तं वित्तसमन्वितम् ॥६२॥ मृतस्यैतत्पुनर्लक्षं विधिपूतं च तत्समम् ॥ तीर्थपात्र-
समोपेतं दानमेकं च लक्षधा ॥६३॥ पात्रे दत्तं च यद्दानं तल्लक्षगुणितं भवेत् ॥ दातुः
फलमनन्तं स्यान्न पात्रस्य प्रतिग्रहः ॥६४॥ स्वाध्यायहोमसंयुक्तः परपाकविवर्जितः ॥ रत्न-
पूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥६५॥ विषशीतापहौ मन्त्रवह्नी किं दोषभागिता ॥
अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् ॥६६॥ कुलैकशतसंयुक्तं ग्रहीतारं तु पात-

जाता है वह अन्त में फल देनेवाले को पाप समूह से उद्धार करता है ॥६१॥ सावधान चित्त से एक गाय, आतुरकाल में एक सौ गाय और मरते समय हजार गाय दान करने का बराबर फल होता है ॥६२॥ मरने के पीछे एकलाख गाय विधिपूर्वक दान करने से समान मिलता है तीर्थ और सत्पात्र युक्त वह दान लक्ष प्रकार का होता है ॥ ६३ ॥ पात्र में जो दान दिया जाता है उसका लाख गुणा अधिक फल होता है, देनेवाले को अनन्त फल होता है और सत्पात्र को प्रतिग्रह का दोष भी नहीं होता है ॥६४॥ वेदपाठ नित्य हवन करने वाले दूसरे के बनाये पाक से रहित अर्थात् अपने हाथ पाक बनाकर भोजन करने वाले ब्राह्मण, रत्न से पूर्ण पृथ्वी का दान लेकर प्रतिग्रह के दोष से दूषित नहीं होते हैं ॥६५॥ विष को दूर करनेवाले मन्त्र तथा शीत को नष्ट करनेवाली अग्नि कभी अपवित्र

येत ॥ नापात्रे विदुषा देया ह्यात्मनः श्रेय इच्छता ॥६७॥ एका ह्येकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन ॥ सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम् ॥६८॥ कथिता या मया पूर्वं तव वैतरणी नदी ॥ तस्यास्तु द्धरणोपायं गोदानं कथयामि ते ॥६९॥ कृष्णां वा पाटलां वापि धेनुं कुर्यादलंकृताम् ॥ स्वर्णशृंगीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहनीम् ॥७०॥ कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां कण्ठघण्टासमन्विताम् ॥ कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रं सचैलकम् ॥७१॥ यमं हैमं न्यसेत्तत्र लोहदण्डसमन्वितम् ॥ कांस्यपात्रे घृतं कृत्वा सर्वं तस्यो-

नहीं होती है परन्तु अपात्र में दिया गोदान मनुष्य को नरक में पहुंचाता है ॥६६ अपनी भलाई चाहने वाले विद्वान अपात्र में गाय का दान न देवे। अपात्र का दान देनेवाले को एक सौ कुल समेत नरकों में पहुँचाता है । ६७। एक गौ एक ही ब्राह्मण को देना चाहिए बहुतों को कभी न देवे, बेंचने से अथवा विभाग करने से वह गौ सात कुल पर्यन्त जला देती है ॥६८॥ हे गरुड़ ! मैंने पहिले जो वैतरणी का वृत्तान्त कहा अब उसको पार करने का उपाय गाय का दान कहता हूँ ॥६९॥ काली अथवा लाल रंग की गायको सोने की सींगे, चांदी की खुर और कांस्य के पात्र से अलंकृत करे । ७०॥ काले रंग के जोड़े वस्त्र से गौ को आच्छादित कर उसके कंठ में सुन्दर घंटा बाँधे कपास के ऊपर बैठाकर वस्त्रों सहित कांस्यपात्र को रक्खे । ७१॥ और लोह दंड के लिये सोने के बने यमराज की मूर्ति

परि न्यसेत् ॥७२॥ नावमिक्षुमयीं कृत्वा पट्टसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ गर्तं विधाय सजलं कृत्वा तस्मिन्क्षिपेत्तरिम् ॥७३॥ तस्योपरि स्थितां कृत्वा सूर्यदेहसमुद्भवाम् ॥ धेनुं सङ्कल्पयेत्तत्र यथा शास्त्रविधानतः ॥७४॥ सालंकाराणि वस्त्राणि ब्राह्मणाय प्रकल्पयेत् ॥ पूजां कुर्याद्विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥७५॥ पुच्छं संगृह्य धेनोस्तु नावमाश्रित्य पादतः । पुरस्कृत्य ततो विप्रमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥७६॥ भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् ॥ त्राता त्वं हि जगन्नाथ शरणागतवत्सल ॥७७॥ विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ मामुद्धर महीसुर ॥

की स्थापना करे कांसपात्र में घी को रख कर उसके ऊपर रखे ॥७२॥ ऊँख की नौका बनाकर रेशम का सूत उसमें लपेटे और गड्ढे में उस नाव को छोड़ देवे ॥७३॥ सूर्य की देह से उत्पन्न यम की मूर्ति उस गाय के ऊपर रखकर शास्त्रोक्त विधि से उस गाय का संकल्प करे ॥७४॥ अलंकार सहित वस्त्र ब्राह्मण को दान करे और गंध पुष्प अक्षत आदि से विधिपूर्वक उसकी पूजा करे ॥७५॥ गाय की पूँछ पकड़ कर उसकी नौका में पैर रखकर ब्राह्मण को आगे करके इस मन्त्र को पढ़े ॥७६॥ हे जगन्नाथ ! हे शरणागत पर प्रेम करने वाले ! संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए को और शोक सन्ताप रूपी तरङ्गों से दुःखी मनुष्यों की आप रक्षा करनेवाले हैं ॥७७॥ हे विष्णुरूपी ब्राह्मण देवता ! हे महीसुर मेरा उद्धार करो मैंने तुमको वैतरणी दिया है तुमको नमस्कार है ॥७८॥ अतिघोर यमलोक के

सदक्षिणा मया दत्ता तुभ्यं वैतरणी नमः ॥७८॥ यममार्गे महाघोरे तां नदीं शतयोजनाम् ॥ तर्तुकामो ददाम्येतां तुभ्यं वैतरणी नमः ॥७९॥ धेनुके मां प्रतीक्षस्व यमद्वारे महापथे ॥ उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमोऽस्तु ते ॥८०॥ गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ॥ गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥८१॥ या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे प्रतिष्ठिता ॥ धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥८२॥ इति मन्त्रैश्च संप्रार्थ्य साञ्जलिर्धेनुकां यमम् ॥ सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥८३॥ एवं दद्या-

राह में सौ योजन की नदी है उसको मैं पार उतरना चाहता हूँ और तुम्हारे लिये इस वैतरणी को दिया है तुमको नमस्कार है ।७९॥ हे धेनुके! हे देवेशि! यमद्वार के महा पथ में उतारने के लिये तू मेरा मार्ग देखना, तुमको नमस्कार है ॥८०। गायें मेरे आगे रहें और गायें मेरे पीछे रहें मेरे हृदय में सदा गौ का वास रहे और मैं सदा गायों के मध्य में निवास करूँ ॥८१। जो लक्ष्मी सब प्राणियों में हैं जो लक्ष्मी देवताओं में स्थित हैं वह धेनुरूपी देवी मेरे पापों को नाश करें ॥८२॥ हाथ जोड़ कर इन मन्त्रों को पढ़ कर गौ की और यमराज की प्रदक्षिणा करके प्रार्थना पूर्वक सब ब्राह्मणों को देवे ॥८३। हे गरुड़! इस विधि से जो गौ को वैतरणी में देता है वह धर्म के मार्ग में होकर धर्मराज की सभा के मध्य में जाता है ॥८४॥ जबतक शरीर स्वस्थ रहे तभी वैतरणी पार होने की इच्छा से

दूविधानेन यो गां वैतरणीं खग ॥ स याति धर्ममार्गेण धर्मराजसभान्तरे ॥८४॥ स्वस्थावस्थे शरीरे तु वैतरण्यां व्रतं चरेत् ॥ देया च विदुषा धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥८५॥ सा नायाति महामार्गे गोदानेन नदी खग ॥ तस्मादवश्यं दातव्यं पुण्यकालेषु सर्वदा ॥८६॥ गंगादिसर्वतीर्थेषु ब्राह्मणावसथेषु च ॥ चन्द्रसूर्योपरागेषु संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥८७॥ अयने विषुवे चैव व्यतीपाते युगादिषु ॥ अन्येषु पुण्यकालेषु दद्याद् गोदानमुत्तमम् ॥८८॥ यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा ॥ स एव पुण्यकालः स्याद्यतःसम्पत्तिरस्थिरा ॥८९॥ अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ॥ नित्यं सन्निहितो मृत्युः

विद्वान ब्राह्मण को अलंकार सहित गौ का दान करना चाहिये ॥८५॥ हे गरुड़ ! गो दान करने से वह महानदी मार्ग के मध्य में नहीं आती है इसलिये पुण्यकाल में अवश्य गोदान करना चाहिये ॥८६॥ गङ्गा आदि तीर्थों के तटपर ब्राह्मणों के स्थान पर सूर्य चन्द्र ग्रहण काल में संक्रान्ति तथा अमावस्या को ॥८७॥ अयनों के काल में मेष, कर्क, मकर और तुलाको संक्रान्ति में व्यतिपात योग में अक्षय तृतीया आदि तिथियों में तथा और पुण्यकाल में उत्तम गोदान करना उचित है ॥८८॥ इसके अतिरिक्त जबही श्रद्धा उत्पन्न हो और पात्र ब्राह्मण का संयोग हो जावे उसी को पुण्यकाल जाने क्योंकि संपत्ति सदा स्थिर नहीं रहती ॥८९॥ शरीर नाशवान,

कर्तव्यो धर्मसंचयः ॥९०॥ आत्मवित्तानुसारेण तत्र दानमनन्तकम् ॥ देयं विप्राय विदुषे स्वात्मनः श्रेय इच्छता ॥९१॥ अल्पेनापि हि वित्तेन स्वहस्तेनात्मने कृतम् ॥ तदक्षय्यं भवेद्दानं तत्कालं चोपतिष्ठति ॥९२॥ गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि ॥ अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि ॥९३॥ यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः यमलोकपथे तानि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ॥९४॥ महापुण्यप्रभावेण मानुषं जन्म लभ्यते ॥ यस्तत्प्राप्य चरेद्धर्मं स याति परमां गतिम् ॥९५॥ अविज्ञाय नरो धर्मं दुःखमायाति

संपत्ति चंचल, मृत्यु को समीप जाने इसलिये धर्म का संग्रह अवश्य करना चाहिये ॥९०॥ अपने वित्त के अनुसार अच्छे समय का थोड़ा भी दान अनन्त होता है तो अपना कल्याण चाहने वाले को उचित है कि विद्वान् ब्राह्मण को दान देवे ॥९१॥ अपने हाथ से अपने लिये किया गया थोड़ा भी दान अनन्त और अक्षय होता है और तत्काल फल देनेवाला होता है ॥९२॥ परलोक में राह खर्च जो दान है उसको लेकर मनुष्य सुख से महामार्ग में जाता है बिना दान किये वह प्राणी मार्ग में क्लेशित होता है ॥९३॥ जो जो दान पृथ्वी पर मनुष्यों से दिये गये हैं वे दान परलोक में आगे मिलते हैं इसलिये दान की मर्यादा बड़ी है ॥९४॥ बड़े पुण्य के प्रभाव से मनुष्य का जन्म मिलता है जो मनुष्य के शरीर में धर्म का आचरण करता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥९५॥ मनुष्य धर्म को

याति च ॥ मनुष्यजन्मसाफल्यं केवलं धर्मसेवनम् ॥९६॥ धनपुत्रकलत्रादिशरीरमपि बान्धवाः । अनित्यं सर्वमेवेदं तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥ ९७ ॥ तावद् बन्धुःपिता तावद्या-वज्जीवति मानवः ॥ मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेही निवर्तते ॥९८॥ आत्मैव ह्यात्म-नो बन्धुरिति विद्यान्मुहुर्मुहुः ॥ जीवन्नपीति संचिन्त्य मृतेभ्य कः प्रदास्यति ॥९९॥ एवं जानन्निदं सर्वं स्वहस्तेनैव दीयताम् ॥ अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात्कोऽपि न दास्यति ॥१००॥ मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ॥ विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तम-

न जान कर दुःख से संसार में आता है और फिर चला जाता है मनुष्य जन्म को सफल करना केवल धर्म का संग्रह करना है ॥९६॥ धन, पुत्र, स्त्री, भाई, बन्धु और अपनी देह यह सब अनित्य हैं इसलिये मनुष्य को उचित है कि धर्म का सेवन करे ॥९७॥ जब तक मनुष्य जीता है तब तक पिता माता भाई बन्धु सभी हैं मरने के बाद क्षणभर में सब स्नेह दूर हो जाता है ॥९८॥ अपनी आत्मा ही बन्धु भाई है इस बात को बार बार जाने और सोचे कि मरने के बाद कौन किसको देता है ॥९९॥ यह सोच कर मनुष्य को उचित है कि जो कुछ करना हो अपने हाथों से करे । जीवन अनित्य है पीछे कोई नहीं देगा ॥१००॥ मरी हुई देह को काष्ठ तथा कंकड़ के समान पृथ्वी में छोड़कर मुख मोड़ बन्धु बान्धव चले जाते हैं केवल धर्म ही उसके साथ जाता है ॥१०१॥ घर से संचित धन निवृत्त

नुगच्छति ॥१०१॥ गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात् सर्वबान्धवाः ॥ शुभाशुभं कृतं कर्म
गच्छन्तमनुगच्छति ॥१०२॥ शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहास्थितम् ॥ पुण्यं वा यदि
पापं वा भुंक्ते सर्वत्र मानवः ॥१०३॥ न कोऽपि कस्यचिद् बन्धुः संसारे दुःखसागरे ॥
आयाति कर्मसम्बन्धाद्याति कर्मक्षये पुनः ॥१०४॥ मातृपितृसुतभ्रातृबन्धुदारादिसंगमः ॥
प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चलः ॥१०५॥ कस्य पुत्राश्च पौत्राश्च कस्य भार्या
धनं च वा ॥ संसारे नास्ति कः कस्य स्वयं तस्मात्प्रदीयताम् ॥१०६॥ आत्मायत्तं धनं

हो जाता है बन्धु भाई श्मशान से लौट जाते हैं केवल किया हुआ शुभ अशुभ कर्म ही उसके साथ जाता है ॥१०२॥ शरीर आग से जल जाता है परन्तु किया हुआ पुण्य पापरूप कर्म के फल को मनुष्य सब जगह भोगता है ॥१०३॥ दुःख रूप इस संसार में कोई किसी का बन्धु नहीं है कर्म के सम्बन्ध से मनुष्य आता है और कर्म के क्षीण होने पर फिर चला जाता है ॥१०४॥ माता, पिता, पुत्र, भाई, बन्धु और स्त्री आदि का संग पौसाला पर इकट्ठा हुए जीवों के समान है अथवा नदी के तटपर इकट्ठा हुए काष्ठ समूह के समान चलायमान है ॥१०५॥ पुत्र, पौत्र, स्त्री, धन, इस संसार में कोई किसी का नहीं है इसलिये जो कुछ करना हो अपने ही करे ॥१०६॥ जब तक धन अपने हाथ में है तब तक दान करे जब दूसरे के हाथ में धन चला जावे तब कुछ करने का उत्साह न

यावत्तावद्द्विप्रे समर्पयेत् पराधीने धने जाते न किञ्चिद्वक्तुमुत्सहेत् ॥१०७॥ पूर्वजन्म-
कृताद्दानादत्र लब्धं धनं बहु ॥ तस्मादेवं परिज्ञाय धर्मार्थं दीयतां धनम् ॥१०८॥
धर्मात्सञ्जायतेऽर्थश्च धर्मात्कामोऽभिजायते॥धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् ॥१०९॥
श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः ॥ निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं
गताः ॥११०॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहृतम-
श्नामि प्रयतात्मनः ॥१११॥ तस्मादवश्यं दातव्यं तदा दानं विधानतः ॥ अल्पं वा बहु वा
वित्तं गणनां नैव कारयेत् ॥११२॥ धर्मात्मा च सुपुत्रो वै दैवतैरपि पूज्यते ॥ दापये-

करे ॥१०७॥ पूर्व जन्म में किये दान से इस लोक में धन मिला यह जान कर धर्म के लिये धन को खर्च करे ॥१०८॥ धर्म से अर्थ काम और मोक्ष सभी मिलते हैं इस कारण धर्म को अवश्य संचय करना चाहिये ॥१०९॥ धर्म की श्रद्धा से करना चाहिये श्रद्धाहीन धन की अधिकता से धर्म नहीं होता धनहीन मुनियों ने श्रद्धा के कारण परमपद को पाया है ॥११०॥ पत्र, पुष्प, फल और जल जो मुझको श्रद्धा-भक्ति और पवित्र चित्त से देता है उसको मैं भोजन करता हूँ ॥१११॥ इस विधि से थोड़ा अथवा अधिक दान अवश्य देना चाहिए दान देने की गिनती कभी न करे ॥११२॥ देवता धर्मात्मा और सुपुत्र की पूजा करते हैं जो आतुरकाल में पिता से दान

यस्तु दानानि पितरं ह्यातुरं भुवि ॥११३॥ पित्रोर्निमित्तं यद्वित्तं पुत्रैः पात्रे समर्पितम् ॥ आत्मापि पावितस्तेन पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥११४॥ पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरेव च ॥ भगिनीदशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम् ॥११५॥ न चैवापद्रवो दातुर्न वा नरकयातनाः ॥ मृत्युकाले च न भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥११६॥ यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके ॥ मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्याः पापिनः खग ॥११७॥ पुत्राः पौत्राः सह भ्रात्रा सगोत्राः सुहृदस्तु ये ॥ यच्छन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नास्ते न संशयः ॥११८॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे आतुरदाननिरूपणो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

दिलाता है ॥११३॥ जो पुत्र माता-पिता के निमित्त पात्र में दान देता है उस दान से सात पीढ़ी नीचे की और अपने को पवित्र कर देता है ॥ ११४ ॥ पिता के निमित्त सौगुना, माता को हजार गुना, बहिन के निमित्त पात्र में दिये दान का फल दस हजार गुना और सहोदर भाई के निमित्त दिया अक्षय होता है ॥ ११५ ॥ देनेवाले को कोई उपद्रव और नरकों की यातना तथा अन्तकाल में यमदूतों का भय नहीं होता है ॥११६॥ आतुरकाल में जो मनुष्य लोभ से दान नहीं करता है वह कृपण पापीमरने के बाद सोच करता है ॥११७॥ भाई, पुत्र, सगोत्री, इष्ट, मित्र, जो आतुर काल में दान नहीं दिलाते हैं उनको निःसन्देह ब्रह्म हत्या का पाप लगता है ॥११८॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीगरुडउवाच ॥ कथितं भवता सम्यग्दानमातुरकालिकम् ॥ म्रियमाणस्य यत् कृत्यं तदिदानीं वद प्रभो ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि देहत्यागस्य तद्विधिम् ॥ मृता येन विधानेन सद्गतिं यान्ति मानवाः ॥२॥ कर्मयोगाद्यदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः ॥ तुलसी सन्निधौ कुर्यान्मण्डलं गोमयेन तु ॥ ३ ॥ तिलांश्चैव विकीर्याथ दर्भांश्चैव विनिक्षिपेत् । स्थापयेदासने शुभ्रे शालिग्रामशिलां तदा ॥ ४ ॥ शालिग्रामशिला यत्र पापदोषभयापहा ॥ तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिर्जन्तोः सुनिश्चिता ॥ ५ ॥ तुलसी विटपच्छाया यत्रास्ति भवता-

गरुड़जी ने पूछा, हे प्रभो ! आतुरकाल के दान की श्रेष्ठता को आपने यथार्थ वर्णन किया अब इस समय मरे हुए प्राणी के कृत्य को मुझसे कहो ॥ १ ॥ विष्णुभगवान् बोले हे गरुड़ ! देह त्यागने की विधि को तुमसे कहता हूँ जिस विधि से मरे हुए प्राणी सद्गति को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जब देही कर्म योग से शरीर को त्याग करना चाहे उस समय तुलसी के समीप गोबर का मण्डल बनावे ॥३॥ वहाँ तिल बिछावे उसपर कुशासन बिछावे फिर सुन्दर आसन रखकर उसपर शालिग्राम की शिला को स्थापित करे ॥ ४ ॥ पाप, दोष और भय को नाश करने वाली शालिग्राम की शिला के समीप मरने से अवश्य मुक्ति होती है ॥ ५ ॥ संसार के ताप को

पहा ॥ तत्रैव मरणान्मुक्तिः सर्वदा दानदुर्लभा ॥ ६ ॥ तुलसीविटपस्थानं गृहं यस्याव-तिष्ठते ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि न यान्ति यमकिङ्कराः ॥ ७ ॥ तुलसीमञ्जरी युक्तो यस्तु प्राणान्विमुञ्चति ॥ यमस्तं नेक्षितुं शक्तो युक्तं पापशतैरपि ॥ ८ ॥ तस्या दलं मुखे कृत्वा तिलदर्भासने मृतः ॥ नरो विष्णुपुरं याति पुत्रहीनोऽप्यसंशयः ॥९॥ तिलाः पवित्रास्त्रिविधा दर्भाश्च तुलसी तथा ॥ नरं निवारयन्त्येते दुर्गति यान्त-मातुरम् ॥ १० ॥ मम स्वेदसमुद्भूता यतस्ते पावनास्तिलाः ॥ असुरा दानवा दैत्या

दूर करने वाली तुलसी के वृक्ष की छाया के समीप मरने से भी मुक्ति होती है वह सब दानों से दुर्लभ है ॥ ६ ॥ जिसके घर में तुलसी का वृक्ष है उसका घर तीर्थ रूप है उसमें यम के दूत नहीं जाते हैं ॥ ७ ॥ जो मनुष्य तुलसी की मंजरी से युक्त होकर प्राण को छोड़ता है सैकड़ों पापों से युक्त होने पर भी उस प्राणी को यमराज नहीं देख सकते हैं ॥ ८ ॥ तुलसीदल को मुख में रखकर और कुशासन पर जो प्राण छोड़ता है वह पुत्र हीन होने पर भी विष्णुलोक को जाता है ॥ ९ ॥ तीन प्रकार के तिल और कुशा तथा तुलसी ये मनुष्य की दुर्गति का निवारण करने वाले हैं ॥ १० ॥ मेरे स्वेद से उत्पन्न तिल हैं इससे पवित्र हैं उन तिलों के दान से असुर दानव दैत्य सब भाग जाते हैं ॥ ११ ॥ हे गरुड़ ! हमारे रोम से उत्पन्न कुशा मेरी विभूति है कुशा के स्पर्श मात्र से मनुष्य

छिद्रयन्ति तिलैस्ततः ॥ ११ ॥ दर्भा विभूतिर्मे तार्क्ष्य मम रोमसमुद्भवाः ॥ अतस्त-
त्स्पर्शनादेव स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः ॥ १२ ॥ कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जना-
र्दनः ॥ कुशाग्रे शङ्करो देवस्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥ १३ ॥ अतः कुशा वन्हिमन्त्र-
तुलसीविप्रधेनवः ॥ नैते निर्माल्यतां यान्ति क्रियमाणाः पुनः पुनः ॥ १४ ॥ दर्भाः
पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणः प्रेतभोजने ॥ मन्त्रा गौस्तुलसी नीचे चितायां च हुता-
शनः ॥ १५ ॥ गोमयेनोपलिप्ते तु दर्भास्तरणसंस्कृते ॥ भूतले ह्यातुरं कुर्यादन्त-
रिक्षं विवर्जयेत् ॥ १६ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे देवा हुताशनः ॥ मण्डलोपरि

स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥ १२ ॥ कुशा के मूल में ब्रह्मा कुशा के मध्य में विष्णु और कुशा के अग्रभाग में शिवजी, इस प्रकार तीनों देवता कुश में स्थित रहते हैं ॥ १३ ॥ इसलिये कुशा, अग्नि, मन्त्र, तुलसी, ब्राह्मण और गौ बराबर काम में लाने पर भी निर्माल्य नहीं होते हैं ॥ १४ ॥ श्राद्ध का कुशा प्रेत भोजन करने वाला ब्राह्मण, मन्त्र, गौ और तुलसी नीच के घर में तथा चिता की अग्नि निर्माल्य हो जाती है ॥ १५ ॥ आकाश से वर्जित भूतल को गोबर से लीप कर कुशासन बिछा कर उस पर आतुर को सुलावे और वहाँ मण्डल कर देवे ॥ १६ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये सब देवता मंडल के ऊपर निवास करते हैं इसलिये मंडल

तिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् ॥ १७ ॥ सर्वत्र वसुधा पूता लेपो यत्र न विद्यते यत्र लेपः कृतस्तत्र पुनर्लेपेन शुद्ध्यति ॥ १८ ॥ राक्षसाश्च पिशाचाश्च भूताः प्रेता यमानुगाः ॥ अलिप्तदेशे खट्वायामन्तरिक्षे विशंति च ॥ १९ ॥ अतोऽग्निहोत्रं श्राद्धं च ब्रह्मभोज्यं सुरार्चनम् ॥ मण्डलेन विना भूम्यामातुरं नैव कारयेत् ॥ २० ॥ लिप्तभूम्यामतः कृत्वा स्वर्णं रत्नं मुखे क्षिपेत् ॥ विष्णोः पादोदकं दद्याच्छालग्राम-स्वरूपिणः ॥ २१ ॥ शालग्रामशिलातोयं यः पिबेद्बिन्दुमात्रकम् ॥ स सर्वपापनिर्मुक्तो वैकुंठभुवनं व्रजेत् ॥ २२ ॥ ततो गंगाजलं दद्यान्महापातकनाशनम् ॥ सर्वतीर्थ-

अवश्य करना चाहिये ॥ १७ ॥ बिना लिपी सब भूमि पवित्र है और जहाँ लीपि है वहाँ फिर लीपने से पवित्र होती है ॥ १८ ॥ राक्षस, पिशाच, भूत, प्रेत और यमदूत यह बिना लीपे हुए स्थान में खाट और आकाश में प्रवेश करते हैं । १९ ॥ इसलिये अग्निहोत्र, श्राद्ध, ब्राह्मण भोजन और देवताओं का पूजन ये सब बिना मण्डल के आतुर से न करावे ॥ २० ॥ इसके बाद उस मरते हुए प्राणी को पवित्र स्थान में सुलाकर सुवर्ण रत्न और विष्णु भगवान का चरणामृत उसके मुख में डाल देवे ॥ २१ ॥ शालिग्राम की शिला का जल बिन्दुमात्र भी भीतर जाने से वह मनुष्य सब पापों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ इसके उपरान्त

कृतस्नानदानपुण्यफलप्रदम् ॥ २३ ॥ चान्द्रायणं चरेद्यस्तु सहस्रं कायशोधनम् । पिबेद्यश्चैव गंगाम्भः समौ स्यातामुभावपि ॥ २४ ॥ अग्निं प्राप्य यथा तार्क्ष्य तूलराशिर्विनश्यति ॥ तथा गंगाम्बुपानेन पातकं भस्मसाद्भवेत् ॥ २५ ॥ यत्तु सूर्यांशुसन्तप्तं गंगायाः सलिलं पिबेत् ॥ स सर्वयोनिनिर्मुक्तः प्रयाति सदनं हरेः ॥२६॥ नद्यो जलावगाहेन पावयन्तीतराञ्जनान् ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्तथा गङ्गेति कीर्तनात् । पुनात्यपुण्यान्पुरुषाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ॥ गङ्गा तस्मात्पिबेत्तस्यां जलं संसारतारकम् ॥

महापातकों को भस्म करने वाले गङ्गाजल को उस आतुर को पिलावे गङ्गाजल तीर्थों में किये हुए स्नान दान आदि जो पुण्य हैं उनके फल को देने वाला है ॥ २३ ॥ शरीर शुद्धि के लिये जिस मनुष्य ने एक हजार चान्द्रायण व्रत किया है और जो सदा गङ्गाजल पीता है वह दोनों इस पृथ्वी पर बराबर है ॥ २४ ॥ हे तार्क्ष्य ! जैसे अग्नि के स्पर्श से रूई का ढेर भस्म हो जाता है वैसेही प्रति दिन गङ्गा जल पीने से संपूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं ॥ २५ ॥ जो सूर्य के किरणों से तपे हुए गङ्गाजल को पीते हैं वह आवागमन से रहित होकर वैकुण्ठ में निवास करते हैं ॥ २६ ॥ और नदियाँ इतर मनुष्य को जल में स्नान करने से पवित्र करती हैं और गंगा दर्शन, स्पर्श, पान, तथा नाम कहने से तार देती हैं ॥ २७ ॥ अनगिनत अपवित्र मनुष्यों को गंगा जी पवित्र करती हैं इसलिये संसार को तारने वाला

॥२८॥ गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥ मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥२९॥ उत्क्रामद्भिश्च यः प्राणैः पुरुषः श्रद्धयाऽन्वितः ॥ चिन्तयेन्मनसा गङ्गां सोऽपि याति परां गतिम् ॥३०॥ अतो ध्यायेन्नमेद्गंगां संस्मरेत्तज्जलं पिबेत् ॥ ततो भागवतं किंचिच्छृणुयान्मोक्षदायकम् ॥३१॥ श्लोकं श्लोकार्धपादं वा योऽन्ते भागवतं पठेत् ॥ न तस्य पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥३२॥ वेदोपनिषदां पाठाच्छिवविष्णुस्तवादपि ॥ ब्राह्मणक्षत्रियोविशां मरणं मुक्तिदायकम् ॥३३॥ प्राणप्रयाणसमये कुर्यादनशनं खग ॥ दद्यादातुरसंन्यासं विरक्ताय द्विजन्मनः ॥३४॥ संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतै-

गंगाजल आतुर के लिये अवश्य दे ॥ २८ ॥ जो मनुष्य मरते समय गंगा नाम का स्मरण करता है वह मरने के बाद विष्णुपुर को अवश्य जाता है ॥ २९ ॥ जो पुरुष आतुरकाल में गङ्गाजी का चिन्तन करता है वह आवागमन से छूटकर मुक्त हो जाता है ॥ ३० ॥ इसलिये गंगाजी का ध्यान करे, उनको नमस्कार करे, उनका स्मरण करे और मोक्ष देनेवाले भागवत के श्लोकों को सुने ॥३१॥ भागवत् के एक श्लोक अथवा उसका चौथाई भी जो आतुरकाल में सुनता है वह ब्रह्मलोक से कभी नहीं लौटता है ॥ ३२ ॥ वेद और उपनिषदों के पाठ तथा शिव या विष्णु के स्तोत्र ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के मरने पर मुक्ति देनेवाले होते हैं ॥ ३३ ॥ हे गरुड़ ! प्राणयात्रा के समय अनशन रहे अर्थात् कुछ न खावे यदि मन विरक्त हो तो आतुर संन्यास ग्रहण करे ॥ ३४ ॥ जो कंठगत प्राण

रपि ॥ मृतो विष्णुपुरं याति न पुनर्जायते भुवि ॥३५॥ एवं जातविधानस्य धार्मिकस्य तदा खग ॥ ऊर्ध्वच्छिद्रेण गच्छन्ति प्राणास्तस्य सुखेन हि ॥३६॥ मुखं च चक्षुषी नासे कर्णौ द्वाराणि सप्त च ॥ एभ्यः सुकृतिनो यान्ति योगिनस्तालुरन्ध्रतः ॥३७॥ अपानान्मिलितप्राणौ यदा हि भवतः पृथक् ॥ सूक्ष्मोभूत्वा तदा वायुर्विनिष्क्रामिति पुत्तलात् ॥३८॥ शरीरं पतते पश्चान्निर्गते मरुदीश्वरे ॥ कालाहतं पतत्येवं निराधारो यथा द्रुमः ॥३९॥ निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तं जुगुप्सितम् ॥ अस्पृश्यं जायते सद्यो दुर्गंधं सर्वनि-

होने पर मुख से कह देवे कि मैंने संन्यास लिया है तो भी जन्म मरण से मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥ जिस मनुष्य के आतुरकाल में ये सब कृत्य होते हैं उन धर्मात्मा पुरुषों के प्राण मुख के ऊपर के छिद्र से होकर निकलते हैं ॥ ३६ ॥ मुख, आँख, नाक और दोनों कान ये सात द्वार ऊपर के हैं पुण्यवानों के प्राण इन्हीं मार्गों से होकर निकलते हैं ॥ ३७ ॥ मिले हुए प्राण जब अपान से अलग होते हैं तब प्राणवायु अत्यन्त सूक्ष्म होकर देह से बाहर निकल जाते हैं ॥ ३८ ॥ इस प्रकार काल से आहत शरीर प्राणवायु के निकल जाने पर वह निराधार वृक्ष के समान पतित हो जाता है ॥ ३९ ॥ प्राण वायु के निकलने पर शरीर चेष्टा रहित अस्पृश्य अर्थात् न छूने योग्य और दुर्गन्धि युक्त हो जाता है ॥ ४० ॥ कृमि, (कीड़े) विड् (विष्ठा) अंगार (भस्म) यह तीन प्रकार की अवस्था देह की

न्दितम् ॥४०॥ त्रिधाऽवस्था शरीरस्य कृमिविड्भस्मरूपतः॥ किं गर्वः क्रियते देहे क्षणवि-
ध्वंसिभिर्नरैः ॥४१॥ पृथिव्यां लीयते पृथ्वीह्यापश्चैव तथाजले॥ तेजस्तेजसि लीयेत समीरस्तु
समीरणे ॥४२॥ आकाशश्चतथाऽऽकाशे सर्वव्यापि च शंकरः॥ नित्यमुक्तो जगत्साक्षी
आत्मा देहेष्वजोऽमरः ॥४३॥ सर्वेन्द्रिययुतो जीवः शब्दादिविषयैर्वृतः ॥ कामरागादि-
भिर्युक्तः कर्मकोशसमन्वितः ॥४४॥ पुण्यवासनया युक्तो निर्मिते स्वेन कर्मणा॥ प्रवि-
शेत्स नवे देहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥४५॥ तदा विमानमादाय किंकिणीजाल मालियत्॥

होती है क्षण में नाश होनेवाले शरीर पर क्यों गर्व होता है ॥ ४१ ॥ पृथ्वी में पृथ्वी जल में जल तेज में तेज और वायु में वायु ये पाँचो तत्त्व आपस में मिल जाते हैं ॥ ४२ ॥ वैसे ही आकाश में आकाश लीन हो जाता है आकाश सर्वव्यापी शिव स्वरूप है नित्य मुक्त जगत का साक्षी आत्मा देह में स्थित रहता है ॥ ४३ ॥ सब इन्द्रियों से युक्त जीव विषयों से वेष्टित काम राग आदि से तथा कर्म कोश से संयुक्त होकर ॥ ४४ ॥ पुण्य की वासना से युक्त अपने कर्म से प्राप्त नवीन देह में प्रवेश करता है जैसे एक घर के जल जाने पर मनुष्य दूसरे घर में प्रविष्ट होता है ॥ ४५ ॥ तब उस प्राणी के लिये किंकिणी जाल की माला से युक्त चमर से सुशोभित

आयान्ति देवदूताश्च लसच्चामरशोभिताः ॥४६॥ धर्मतत्त्वविदः प्राज्ञाःसदा धार्मिकवल्लभाः॥ तदैनं कृतकृत्यं स्वर्विमानेन नयन्ति ते ॥४७॥ सुदिव्यदेहो विरजाम्बरस्त्रक्सुवर्णरत्नाभरणैरुपेतः ॥ दानप्रभावात्स महानुभावः प्राप्नोति नाकं सुरपूज्यमानः ॥४८ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे म्रियमाणकृत्यनिरूपणो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

विमान को लेकर विष्णु के दूत आते हैं ॥४६॥ धर्म के तत्त्व को जानने वाले पंडित विष्णु के दूत अपने प्यारे धर्मात्मा पुरुष को विमान में बैठा कर स्वर्ग को ले जाते हैं ॥४७॥ वह मनुष्य दिव्य देह को पाकर सुन्दर वस्त्र आभूषण को धारण किये रत्नों की माला से अलंकृत होकर देवताओं से पूजित हो दान के प्रभाव से स्वर्ग को जाता है ॥ ४८ ॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

गरुड उवाच—देहदाहविधानं च विभो सुकृतिनां वद ॥ सती यदि भवेत्पत्नी तस्याश्च महिमां वद ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच-शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि सर्वमेवौर्ध्वदेहिकम् ॥ यत्कृत्वा पुत्रपौत्राश्च मुच्यन्ते पैतृकादृणात् ॥२॥ किं दत्तैर्बहुभिर्दानैः पित्रोरन्त्येष्टिमाचरेत् ॥ तेनाग्निष्टोमसदृशं पुत्रः फलमवाप्नुयात् ॥३॥ तदा शोकं परित्यज्य कारयेन्मुण्डनं सुतः ॥ समस्तबान्धवैर्युक्तः सर्वपापानिवृत्तये ॥४॥ मातापित्रोर्मृतौ येन कारितं मुण्डनं नहि ॥आत्मजः स कथं ज्ञेयः संसारार्णवतारकः ॥५॥ अतो मुण्डनमावश्यं नख-

गरुड़ जी बोले हे प्रभो ! पुण्यवान् पुरुषों के देह दाह की विधि को कहिये और जिसकी स्त्री सती होती हैं उनकी महिमा कहिये ॥१॥ विष्णु भगवान् ने कहा है हे गरुड़ ! मैं मनुष्य के और्ध्व देहिक क्रियाओं को कहता हूँ जिनको करने से पुत्र पौत्र पितृ ऋण से छूट जाते हैं ॥२॥ बहुत दानों के देने से क्या है माता पिता की अन्त्येष्टि क्रिया करने वाला पुत्र अग्निष्टोम यज्ञ के समान फल को प्राप्त होता है ॥३॥ अन्त्येष्टि कर्म के उपरान्त शोक से रहित होकर सब पापों से छूटने के लिये पुत्र मुण्डन करावे ॥४॥ माता पिता के मरने के उपरान्त जो बेटा बन्धु भाइयों के सहित मुण्डन नहीं कराता है वह संसार को तारने वाला बेटा अपनी आत्मा से उत्पन्न कैसे जाना जावे ॥५॥ इसलिये नख और कांख को छोड़ कर मुण्डन अवश्य कराना चाहिये फिर स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे

कच्छविवर्जितम् ॥ ततः सबान्धवः स्नात्वा धौतवस्त्राणि धारयेत् ॥६॥ सद्यो जलं समानीय ततस्तं स्नापयेच्छवम् ॥ मण्डयेच्चन्दनैः स्रग्भिर्गंगामृत्तिकयाऽथवा ॥७॥ नवीनवस्त्रैः संच्छाद्य तदा पिण्डं सदक्षिणम् ॥ नामगोत्रं समुच्चार्य संकल्पानपसव्यतः ॥८॥ मृत्युस्थाने शवो नाम तस्य नाम्ना प्रदापयेत् ॥ तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवताः ॥९॥ द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तस्य नाम्ना प्रदापयेत् ॥ तेन नैवोपघाताय भूतकोटिषु दुर्गताः ॥१०॥ ततः प्रदक्षिणां कृत्वा पूजनीयः स्नुषादिभिः ॥ स्कंधः पुत्रेण दातव्यस्तदाऽन्यैर्बान्धवैः सह ॥११॥ धृत्वा स्कन्धे स्वपितरं यः श्मशानाय गच्छति ॥ सोऽश्वमेधफलं पुत्रो लभते च

॥६॥ फिर शुद्ध जल मँगा कर मृत देह को स्नान करावे और चन्दन माला आदि से सुशोभित करे ॥७॥ नवीन वस्त्र से उस देह को ढाँप कर दक्षिणा सहित पिण्ड दान करे और नाम गोत्र का उच्चारण कर अपसव्य हो संकल्प करे ॥८॥ मृत्यु स्थान में शव के नाम से पिंड दान करे उस पिंड से पृथ्वी और उसके अधिष्ठातृ देवता प्रसन्न होते हैं ॥९॥ द्वार प्रदेश में पान्थ के नाम से पिंड देवे उस पिंड से भूतगण अशुद्ध अवस्था में प्राप्त मनुष्य को विघ्न नहीं करते हैं ॥१०॥ पिंड दान के उत्तर शव की प्रदक्षिणा करके बान्धवों सहित बेटा कन्धा लगावे ॥११॥ पिता को कन्धे पर लेकर जो बेटा श्मशान को ले जाता है वह पद-पद पर अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त

पदे पदे ॥१२॥ नीत्वा स्कन्धे स्वपृष्ठे वा सदा तातेन लालितः ॥ तदैव तदृणान्मुच्येन्मृतं स्वपितरं वहेत् ॥१३॥ ततोऽर्धमार्गे विश्रामं संमार्ज्याभ्युदय कारयेत् ॥ संस्नाप्य भूतसंज्ञाय तस्मै तेन प्रदापयेत् ॥१४॥ पिचाशा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिक्षु संस्थिताः ॥ तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥१५॥ ततो नीत्वा श्मशानेषु स्थापयेदुत्तरामुखम् ॥ तत्र देहस्य दाहार्थं स्थलं संशोधयेद्यथा ॥१६॥ संमार्ज्य भूमिं संलिप्योल्लिख्योद्धृत्य च वेदिकाम् ॥ अभ्युदयोपसमाधाय वह्नितत्र विधानतः ॥१७॥ पुष्पाक्ष-

होता है ॥१२॥ पिता से सदा प्यार किया गया बेटा अपने मरे हुए पिता को कन्धे पर ले जाता है वह तत्काल पितृ ऋण से छूट जाता है ॥१३॥ मार्ग में कुछ दूर तक ले जाकर शुद्ध स्थान पर विश्राम करावे और प्रेतगणों के लिये वहाँ पिंड दान करे ॥१४॥ पिशाच, राक्षस, यक्ष, जो और दिशाओं के रहने वाले हैं और उस मृत देह को शुद्ध करने वाले हैं वे उस पिंड से शान्त होते हैं ॥१५॥ इसके बाद श्मशान में ले जाकर उत्तर को मुख कर रख देवे और देह दाह के वास्ते भूमि का शोधन करे ॥१६॥ भूमि को झाड़कर गोबर से लीपे और कुशा से उस भूमि पर रेखा करे और अनामिका तथा अँगूठे से रेखांकित स्थान पर जल छिड़के और वहाँ अग्नि को स्थापित करे ॥१७। फिर पुष्प अक्षत आदि से विधि पूर्वक क्रव्याद गणों की पूजा करके लोमभ्यः स्वाहा, इन वेद

तैरथाभ्यर्च्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम् ॥ लोमभ्यस्त्वनुवाकेन होमं कुर्याद्यथाविधिः ॥१८॥ त्वं भूतभृज्जगद्योनिस्त्वं भूतपरिपालकः ॥ मृतः सांसारिकस्तस्मादेनं त्वं स्वर्गतिं नय ॥१९॥ इति संप्रार्थयित्वाऽग्निं चितां तत्रैव कारयेत् ॥ श्रीखण्डतुलसीकाष्ठैः पलाशाश्वत्थदारुभिः ॥२०॥ चितामारोप्य तं प्रेतं पिण्डौ द्वौ तत्र दापयेत् ॥ चितायां शवहस्ते च प्रेतनाम्ना खगेश्वर ॥ चितामोक्षप्रभृतिकं प्रेतत्वमुपजायते ॥२१॥ केऽपि तत्साधकं प्राहुः प्रेतकल्पविदो जनाः ॥ चितायां तेन नाम्ना वा प्रेतनाम्नाऽथवा करे ॥२२॥ इत्येवं

मन्त्रों से यथा विधि होम करे ॥१८॥ हे क्रव्यादगण ! तुम भूतों को धारण करने वाले और जगत् के उत्पत्ति स्थान हो इसलिये मरे हुए प्राणी को स्वर्ग को पहुँचाओ ॥१९॥ इस प्रकार अग्नि की प्रार्थना करके चन्दन, तुलसी, पीपल, पलाश, इनके काष्ठ की चिता बनावे ॥२०॥ फिर चिता में प्रेत को रखकर इस चिता में प्रेत नाम से शव के हाथ पर दो पिंड देवे चिता को छोड़ने से प्रेतत्व होता है ॥२१॥ प्रेत कल्प को जानने वाले कोई उसको साधक कहते हैं इसलिये चिता में अथवा प्रेत के नाम से पिंड को हाथ ही में दे ॥२२॥ इस प्रकार पाँच पिंडदान से शव आहुति के योग्य होता है नहीं तो बिना पिंडदान के भूत प्रेत आदि विघ्न के लिये उपस्थित होते हैं ॥२३॥ प्रेत को पाँच पिंड देकर उस होम की हुई अग्नि को तृण में रखकर वही अग्नि बेटा चिता में लगावे और जो अग्नि

पञ्चभिः पिण्डैः शवस्याहुतियोग्यता ॥ अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥२३॥ प्रेते दत्त्वा पञ्च पिंडान्हुतमादाय ते तृणैः । अग्निं पुत्रस्तदा दद्यान्न भवेत्पञ्चकं यदि ॥२४॥ पञ्चकेषु मृतो यस्तु न गतिं लभते नरः । दाहस्तत्र न कर्त्तव्यः कृतेऽन्यमरणं भवेत् ॥२५॥ आदौ कृत्वा धनिष्ठार्धमेतन्नक्षत्रपञ्चकम् ॥ रेवत्यन्ते न दाहोऽत्र दाहे च न शुभं भवेत् ॥२६॥ गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतोहि यः ॥ पुत्राणां गोत्रिणां चापि कश्चिद्विघ्नः प्रजायते ॥२७॥ अथवा ऋक्षमध्ये हि दाहः स्याद्विधिपूर्वकः ॥ तद्विधिं ते प्रवक्ष्यामि सर्वदोषप्रशान्तये ॥२८॥ शवस्य निकटे तार्क्ष्य निक्षिपेत्पुत्तलां-

होत्री हैं उनके लिये हवनकुण्ड से अग्नि लेकर चिता जलाना चाहिये ॥२४॥ और जो मनुष्य पंचक में मरते हैं उनका दाह संस्कार नहीं करना चाहिये दाह करने से घर में दूसरे मनुष्य का मरण अवश्य होता है ॥२५॥ दो चरण धनिष्ठा को लेकर रेवती पर्यन्त पाँच नक्षत्र पंचक कहाते हैं इनमें मरे हुए मनुष्य का दाह नहीं करना चाहिये दाह करने से शुभ नहीं होता है ॥२६॥ जो इन पाँच नक्षत्रों में मरता है उसके बेटा अथवा कुल में अवश्य हानि होती है ॥२७॥ इसलिये नक्षत्र के मध्य में विधिपूर्वक दाह करना चाहे तो सब दोषों की शान्ति के लिये पञ्चक शान्ति करे इसको विधि मैं तुमसे कहता हूँ ॥२८॥ हे गरुड़! शव के कुशा का चार पुतला बनावे और

स्तदा ॥ दर्भमयांश्च चतुरः ऋक्षमन्त्राभिमन्त्रितान् ॥२९॥ तप्तं हेम प्रकर्तव्यं वहन्ति ऋक्षनामभिः ॥ प्रेताजयत मन्त्रेण पुनर्होमस्तु संपुटैः ॥३०॥ ततो दाहः प्रकर्तव्यस्तैश्च पुत्तलकैः सह ॥ सपिण्डदिवसे कुर्यात्तस्य शान्तिविधिं सुतः ॥३१॥ तिलपात्रं हिरण्यं च रौप्यं रत्नं यथाक्रमम् ॥ घृतपूर्णं कांस्यपात्रं दद्याद्दोषप्रशान्तये ॥३२॥ एवं शान्तिविधानं तु कृत्वा दाहं करोति यः ॥ न तस्य विघ्नो जायेत प्रेता यान्ति परांगतिम् ॥३३॥ एवं पञ्चकदाहः स्यात्तद्विना केवलं दहेत् ॥ सती यदि भवेत्पत्नी तया सह विनिर्दहेत् ॥३४॥ पतिव्रता यदा नारी भर्तुः प्रियहिते रता ॥ इच्छेत्सहैव गमनं तदा

नक्षत्रों के मन्त्र से उन पुतलों को अभिमन्त्रित करे ॥२९॥ फिर 'प्रेतायजत' इस मन्त्र से प्रेत नाम को संपुटित करके हवन करे ॥३०॥ उसके उपरान्त उन पुतलों के साथ शव का दाह करे और सपिण्डी के दिन लड़का विधिवत् उसकी शान्ति करे ॥३१॥ तिल, बर्तन, सुवर्ण, रत्न, चाँदी, घृत इनको कांश्यपात्र में भरकर दोष शान्ति के दान करे ॥३२॥ इस विधि से शान्ति करके जो शव दाह करे तो कदापि विघ्न नहीं होता है और प्रेत परम गति को पहुँचता है ॥३३॥ पंचक में शव दाह होवे अथवा पंचक रहित होवे जिस पुरुष की स्त्री सती होना चाहे तो शव के साथ हो जावे ॥३४॥ जो स्त्री पतिव्रता होवे और पति-धर्म में तत्पर हो तथा शव के साथ ही जाना चाहे

स्नानं समाचरेत् ॥३५॥ कुंकुमाञ्जनसद्वस्त्रभूषणैर्भूषितां तनुम् ॥ दानं दद्याद्द्विजातिभ्यो बन्धुवर्गेभ्य एव च ॥३६॥ तदा गुरुं नमस्कृत्य निर्गच्छेन्मन्दिराद्बहिः ॥ ततो देवालयं गत्वा भक्त्या तं प्रणमेद्धरिम् ॥३७॥ समर्प्याभरणं तत्र श्रीफलं परिगृह्य च ॥ लज्जां मोहं परित्यज्य श्मशानभवनं व्रजेत् ॥३८॥ तत्र सूर्यं नमस्कृत्य परिक्रम्य चितां तदा पुष्पशय्यां तदारोहेन्निजांके स्थापयेत्पतिम् ॥३९॥ सखिभ्यः श्रीफलं दद्याद्दाहमाज्ञापयेत्ततः ॥ गङ्गास्नानसमं ज्ञात्वा शरीरं परिदाहयेत् ॥४०॥ न दहेद् गर्भिणी नारी शरीरं

तो स्नान करे ।३५॥ फिर सिन्दूर, अंजन, उत्तम वस्त्र और आभूषण से भूषित होकर विधिपूर्वक ब्राह्मणों को दान देवे और बन्धुओं को सत्कार करे ।३६॥ फिर गुरु को नमस्कार करके घर से बाहर निकले और देव मन्दिर में जाकर भक्ति से भगवान् को प्रणाम करे ॥३७॥ और भगवान को आभरण समर्पण कर के श्रीफल (विल्व) को लेवे और लज्जा तथा मोह को त्याग कर श्मशान को जावे ॥३८॥ सूर्य देव को विधिवत् नमस्कार करके फूल की शय्या पर चढ़े और अपने पति का गोद में रख लेवे ॥३९॥ फिर उस श्रीफल को सखियों को देकर चिता में अग्नि संस्कार की आज्ञा देवे गङ्गा स्नान के समान अग्नि को शीतल जानकर शरीर को जलावे ।४०॥ यदि स्त्री गर्भवती हो तो पति के साथ सती न होवे पहिले सन्तान उत्पन्न करके उसका पालन करके तब सती होवे ॥४१॥ जो स्त्री पति को हृदय

पतिना सह ॥ जनयित्वा प्रसूतिं च बालं पोष्य सती भवेत् ॥४१॥ नारी भर्तारमासाद्य शरीरं दहते यदि ॥ अग्निर्दहति गात्राणि न चात्मानं प्रपीडयेत् ॥४२॥ दह्यते ध्मायमानानां धातूनां च यथा मलः ॥ तथा नारी दहेत्पापं हुताग्नौ ह्यमृतोपमे ॥४३॥ दिव्यादौ सत्ययुक्तश्च शुद्धो धर्मसुतो नरः । यथा न दह्यते तप्तलोहपिण्डेन कर्हिचित् ॥४४॥ तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन ॥ अन्तरात्मात्मना भर्तुर्मृतस्यैकत्वमाप्नुयात् ॥४५॥ यावच्चाग्नौ मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं प्रदाहयेत् ॥ तावन्न मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात्कथंचन ॥४६॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा ॥ कर्मणा मनसा

में रखकर सती होती है अग्नि केवल उनके शरीर को ही जला देती है शरीर को पीड़ा नहीं होती ॥४२॥ जैसे धौंकी हुई अग्नि में धातुओं का मल जल जाता है वैसे ही स्त्री अमृत के समान अग्नि में अपने पापों को जला देती है ॥४३॥ शपथ आदि से सत्य युक्त धर्मात्मा मनुष्य शुद्ध होते हैं और तपाये हुए लोह पिण्ड के समान कभी नहीं जलते ॥४४॥ ऐसे ही वह नारी पति के साथ उसके सहित कभी नहीं जलती है और अन्तरात्मा मरे हुए पति की आत्मा के साथ एकता को प्राप्त होती है ॥४५॥ पति के मरने पर जब तक स्त्री अपने शरीर को नहीं जलाती है तब तक वह स्त्री के शरीर से कभी नहीं छूटता है ॥४६॥ इसलिये अनेक प्रयत्न से मन, वचन,

वाचा पत्यौ जीवति तद्गता ॥४७॥ मृते भर्त्तरि या नारी समारोहेद्धुताशनम् ॥
साऽरुधन्ती समा भूत्वा स्वर्गलोके महीयते ॥४८॥ तत्र सा भर्तृपरमास्तूयमानाऽप्सरो-
गणैः ॥ रमते पतिना सार्धं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४६॥ मातृकं पैतृकं चैव यत्र सा च
प्रदीयते ॥ कुलत्रयं पुनात्यत्र भर्तारं याऽनुगच्छति ॥५०॥ तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च
यानि रोमाणि मानुषे ॥ तावत्कालं वसेत्स्वर्गे पतिना सह मोदते ॥५१॥ विमाने सूर्य-
संकाशे क्रीडते रमणेन सा ॥ यावदादित्यचन्द्रौ च भर्तृलोके चिरं वसेत् ॥५२॥ पुन-

काय से सदा जीते हुए अपने पति की सेवा करे और मरने के उपरान्त उसके साथ सती हो जावे ॥४७॥ पति के मरने पर जो स्त्री आग में प्रवेश करती है वह अरुन्धती के समान लोक में पूजित होकर स्वर्ग में वास करती है ॥४८। पति के संग अधिक शोभित है रूप जिसका अप्सराओं से स्तुति की गई ऐसी वह नारी जबतक चौदह इन्द्र राज्य करते हैं तबतक पति के साथ विहार करती है ।४६॥ पति के साथ सती होनेवाली स्त्रियाँ अपने तीनों कुलों को तार देती हैं अर्थात् माता, पिता, श्वश्रु, श्वसुर आदि को पवित्र कर देती है ॥५०॥ मनुष्य के शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम हैं उतने कालतक वह स्त्री पति के साथ स्वर्ग लोक में निवास करती है ।५१॥ सूर्य के समान चमकने वाले विमान में बैठकर जबतक सूर्य चन्द्रमा संसार में प्रकाश करते हैं उतने समय तक, पतिलोक में पति के साथ विहार करती है ॥५२॥ फिर उत्तम कुल में जन्म लेकर वह पतिव्रता अपने पूर्व पति को प्राप्त करती है ॥५३॥ जो स्त्रियाँ सहगमन के

श्चिरायुः सा भूत्वा जायते विमले कुले ॥ पतिव्रता तु या नारी तमेव लभते पतिम्
॥५३॥ या क्षणं दाहदुःखेन सुखमेतादृशं त्यजेत् ॥ सा मूढा जन्मपर्यन्तं दह्यते विर-
हाग्निना ॥५४॥ तस्मात्पतिं शिवं ज्ञात्वा सह तेन दहेत्तनुम् ॥ यदि न स्यात्सती
तादृशं तमेवं प्रदहेत्तदा ॥५५॥ अर्धे दग्धेऽथवा पूर्णे स्फोटयेत्तस्य मस्तकम् ॥ गृह-
स्थानां तु काष्ठेन यतीनां श्रीफलेन च ॥५६॥ प्राप्तये पितृलोकानां भित्वा तद्ब्रह्म-
रन्ध्रकम् ॥ आज्याहुतिं ततो दद्यान्मंत्रेणानेन तत्सुतः ॥५७॥ अकारादभिजातोऽसि

दाह रूपी दुःख को न सहन कर ऐसे अपूर्व सुख को छोड़ देती हैं वह मूढ़ा जन्म पर्यन्त विरह की आग से तपाई जाती हैं ५४॥ इसलिये अपने पति को शिव जानकर उसके साथ शरीर को जलावे जो सती न होवे तो उसको इस प्रकार जलावे ॥५५॥ जब वह शव आधा जल जावे तब उसके मस्तक को फोड़े गृहस्थ के मस्तक को काष्ठ से और यती के मस्तक को श्रीफल से फोड़े ॥५६॥ ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिये शव के ब्रह्मरन्ध्र का भेदन करके वेद मन्त्रों से उस पर घृत की आहुति देवे ५७॥ और कहे हे अग्नि देवता ! तुम वासुदेव से उत्पन्न हो और तुमसे स्वर्ग में जाने को तेजोमय दिव्य शरीर से उत्पन्न होता है यह स्थूल शरीर तुम्हारे लिये हवि होवे और इस हवि से तुम प्रज्ज्वलित होओ ॥५८॥ इस प्रकार तिल और घी की आहुति मंत्रों को पढ़कर देवे, बाद खूब रोदन करे रोने से

त्वयि दिव्यातनुर्भवेत् ॥ वह्निः स्वर्गाय लोकाय ज्वलतु स्वाहया सह ॥५८॥ एवमा-
ज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम् ॥ रोदितव्यं ततो गाढं तेन तस्य सुखं भवेत्
॥५९॥ दाहादनन्तरं कार्यं स्त्रीभिः स्नानं ततः सुतैः ॥ तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रो-
पकल्पितम् ॥६०॥ प्राशयेन्निम्बपत्राणि मृतकस्य गुणान्वदेत् ॥ स्त्रीजनोऽग्रे गृहं गच्छे-
त्पृष्ठतो नरसञ्चयः ॥६१॥ कृत्वा गृहे स्नानं गोग्रासं च प्रदापयेत् ॥ पत्रावल्यां च
भुञ्जीयाद् गृहान्नं नैव भक्षयेत् ॥६२॥ मृतकस्थानमालिप्य दक्षिणाभिमुखं ततः ॥ दिनं
द्वादशपर्यन्तं दीपं कुर्यादहर्निशम् ॥६३॥ सूर्येऽस्तमागते तार्क्ष्य श्मशाने वा चतुष्पथे ॥

प्राणी को सुख होता है ॥५९॥ दाह के उपरान्त कुटुम्ब वाले स्नान करके प्रेत के नामगोत्र को उच्चारण करके तिलांजलि देवें ॥६०॥ फिर नीम की पत्ती को दाँत से दबाकर मृतक के गुणों को कहे इसके बाद सब घर को जावें ॥६१॥ फिर घर में स्नान करके गौ को ग्रास देवे और पत्रावली में भोजन करे घर का अन्न न खावे ॥६२॥ फिर दक्षिण मुख होकर मृतक के स्थान को लीपे और बारह दिन तक उस स्थान पर दीपक जलावे ॥६३॥ हे गरुड़ ! सूर्य के अस्त होने पर श्मशान में अथवा चौराहे पर किसी बर्तन में तीन दिन तक दूध और जल मिलाकर देवे ॥६४॥ दूध और जल से पूर्ण कच्चे मिट्टी के बर्तन में भरकर मृत्पात्र में तीन बार कच्चा सूत लपेट

दुग्धं च मृण्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम् ॥६४॥ अपक्वं मृण्मयं पात्रं क्षीरनीरप्रपूरितम् ॥ काष्ठत्रयं गुणैर्बद्धं धृत्वा मन्त्रं पठेदिमम् ॥६५॥ श्मशानानलदग्धोऽसि परित्यक्तोऽसि बान्धवैः ॥ इदं नीरमिदं क्षीरमत्र स्नाहि पयः पिब ॥६६॥ चतुर्थे सञ्चयः कार्यः साग्निकैश्च निरग्निकैः ॥ तृतीयेऽह्नि द्वितीये वा कर्त्तव्यश्चावरोधतः ॥६७॥ गत्वा श्मशानभूमिं च स्नानं कृत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ऊर्णासूत्रं वेष्टयित्वा पवित्रे परिधाय च ॥६८॥ दद्यात् श्मशानवासिभ्यस्ततो मांसबलिं सुतः ॥ यमायत्वेति मन्त्रेण तिस्रः कुर्यात्परिक्रमाः ॥६९॥ ततो दुग्धेन चाभ्युक्ष्य चितास्थानं खगेश्वर ॥ जलेन सेचयेत्प-

कर चौराहे में रख इस मंत्र को पढ़े ॥६५॥ कि, श्मशान की अग्नि से भस्म हुए और बन्धुओं ने तुम्हारा त्याग किया है तुम्हारे लिये यह जल और दूध है, जल से स्नान कर दूध को पीओ ॥६६॥ अग्निहोत्री का चौथे दिन अस्थिसंचयन करना चाहिये और जो अग्निहोत्री नहीं हैं उनका तीसरे अथवा दूसरे दिन अस्थि संचयन करें ॥६७॥ फिर श्मशान भूमि में जाकर स्नान करके शुद्ध होवें और ऊन का वस्त्र पहिन पवित्री को धारण करे ॥६८॥ फिर श्मशान वासियों के लिये 'यमायतु' इस मन्त्र से माष बलि देवे और उनकी तीन प्रदक्षिणा करे ॥६९॥ हे गरुड़ ! और चिता के स्थान पर दूध छिड़क कर अस्थि संचयन करे ॥७०॥ उन अस्थियों को ढाक के

श्चाद्धुद्धरेदस्थिवृन्दकम् ॥७०॥ कृत्वा पलाशपत्रेषु क्षालयेद्दुग्धवारिभिः ॥ संस्थाप्य मृण्मये पात्रे श्राद्धं कुर्याद्यथाविधि ॥७१॥ त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा गोमयेनोपलेपितम् ॥ दक्षिणाभिमुखो दिक्षु दद्यात्पिण्डत्रयं तथा ॥७२॥ पुञ्जीकृत्य चिताभस्म तत्र धृत्वा त्रिपादुकाम् ॥ स्थापयेत्तत्र सजलमनाच्छाद्य मुखं घटम् ॥७३॥ ततस्तण्डुलपाकेन दधिघृतसमन्वितम् ॥ बलिं प्रेताय सजलं दद्यान्मिष्टं यथाविधि ॥७४॥ पदानि दश पञ्चैव चोत्तरस्यां दिशि व्रजेत् ॥ गर्तं विधाय तत्रास्थिपात्रं संस्थापयेत्खग ॥७५॥ तस्योपरि ततो दद्यात्पिण्डं दाहार्तिनाशकम् ॥ गर्तादुद्धृत्य तत्पात्रं नीत्वा गच्छेज्जलाशयम्

पत्ते में रखकर दूध से धोवे फिर जल से धोकर मिट्टी के बर्तन में रखे और विधि पूर्वक श्राद्ध करे ॥७१॥ त्रिकोनी वेदी बनाकर उसे गोबर से लीपे और दक्षिण मुख होकर तीनों दिशाओं में तीन पिण्ड देवे ॥७२॥ फिर चिता के भस्म को इकट्ठा करके जल से पूर्ण घट को वहाँ स्थापित करे और त्रिपादुका बनावे ॥७३॥ चावल का पाक तैयार कर दधि और घृत से युक्त करे मधुर बलि श्मशान वासी प्रेतों के लिये देवे ॥७४॥ हे गरुड़ ! पन्द्रह पग उत्तर दिशा की ओर चले और वहीं पर गर्त खोदकर पात्र के सहित हड्डियों को गाड़ देवे ॥७५॥ उसके ऊपर पीड़ा को नाश करने वाले पिण्ड देवे और गर्त से हड्डियों को पात्र सहित निकाल कर नदी के तट पर

१३३

॥७६॥ तत्र प्रक्षालयेद्दुग्धजलादस्थि पुनः पुनः ॥ अर्चयेच्चन्दनेनाथ कुंकुमेन विशेषतः ॥७७॥ धृत्वा संपुटके तानि कृत्वा च हृदि मस्तके ॥ परिक्रम्य नमस्कृत्य गङ्गामध्ये विनिक्षिपेत् ॥७८॥ अन्तर्दशाहं यस्यास्थि गङ्गातोये निमज्जति ॥ न तस्य पुनरावृत्ति- र्ब्रह्मलोकात्कदाचन ॥७९॥ यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु तिष्ठति ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥८०॥ गङ्गाजलोर्मिं संस्पृश्य मृतकं पवनो यदा ॥ स्पृशते पातकं तस्य सद्य एव विनश्यति ॥८१॥ आराध्य तपसोग्रेण गङ्गादेवीं भगीरथः ॥ उद्धारार्थं

जावे ॥७६॥ वहाँ दूध और जल से बारम्बार हड्डियों को धोकर चन्दन कुंकुम आदि से लिप्त करे ॥७७॥ फिर संपुटित पात्र में रखकर हृदय और मस्तक में लगावे प्रदक्षिणा और नमस्कार करके उस संपुटित पात्र को गंगा जी के मध्य में डाल देवे ॥७८॥ दस दिन के भीतर जिसकी हड्डियाँ गंगाजल में पहुँच जाती हैं उसका लौटना ब्रह्मलोक से कभी नहीं होता है ॥७९॥ जितने वर्ष तक मनुष्य की हड्डियाँ गंगाजल में रहती हैं उतने दिन तक वह स्वर्ग में आनन्द करता है ॥८०॥ गंगाजल की लहरों को स्पर्श करके वायु चलता है और वह वायु जब मृतक के शरीर को स्पर्श करता है तब शीघ्र ही उसके पाप नाश हो जाते हैं ॥८१॥ राजा भगीरथ उग्र तपस्या करके अपने पूर्वजों के उद्धार के लिये गंगा देवी को ब्रह्मलोक से ले आये ॥८२॥ गंगाजी का शुद्ध यश तीनों लोक में विख्यात है भस्म

पूर्वजानामानयेद्ब्रह्मलोकतः ॥८२॥ त्रिषु लोकेषु विख्यातं गंयायाः पावनं यशः ॥ या
पुत्रान्सगरस्यैतान्भस्माख्याननयद्दिवम् ॥८३॥ पूर्वे वयसि पापानि ये कृत्वा मानवा
मृताः ॥ गंगायामस्थिपतनात्स्वर्ग लोकं प्रयान्ति ते ॥८४॥ कश्चिद्व्याधो महारण्ये सर्व-
प्राणिविहिंसकः ॥ सिंहेन निहतो यावत्प्रयाति नरकालयम् ॥८५॥ तावत्कालेन तस्यास्थि
गङ्गायां पतितं तदा ॥ दिव्यं विमानमारुह्य स गतो देवमन्दिरम् ॥८६॥ अतः स्वयं हि
सत्पुत्रो गङ्गायामस्थि पातयेत् ॥ अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दशगात्रं समाचरेत् ॥८७॥ अथ

हुए ६० हजार सगर के बेटों को अपने जल के स्पर्श से स्वर्ग में पहुँचा दिया ॥८३॥ जो मनुष्य पहिली अवस्था में पाप करके मर जाते हैं वे गंगा जी के स्पर्श से स्वर्ग लोक में निवास करते हैं ॥८४॥ जो मनुष्य वन के मध्य में सिंह व्याघ्र आदि जन्तुओं से नाश को प्राप्त हुए हैं व तभी तक नरक वास करते हैं ॥८५॥ जब तक उनकी हड्डी गङ्गाजल में नहीं पड़ती गङ्गा के स्पर्श से वह दिव्य विमान पर बैठकर स्वर्ग लोक में जाता है ॥८६॥ गङ्गा ही मुक्ति को देनेवाली है इसलिये सत्पुत्र को चाहिये कि अस्थि संचयन करके बाद में दशगात्र श्राद्ध करे ॥८७॥ जिसका मरण विदेश में होता है उसको देह नहीं मिलती तो परिवार वालों को चाहिये कि जिसदिन मरने का समाचार सुने उसी दिन ॥८८॥ कुशा का पुत्तला बनाकर पहिले के समान दाह करे और उसके भस्म को लेकर गंगा जी

कश्चिद्विदेशे वा वने चौरभये मृतः ॥ नलब्धस्तस्य देहश्चेच्छृणुयाद्यद्दिने तदा ॥८८॥ दर्भपुत्तलकं कृत्वा पूर्ववत्केवलं दहेत् ॥ तस्य भस्म समादाय गङ्गातोये विनिक्षिपेत् ॥८९॥ दशगात्रादिकं कर्म तद्दिनादेव कारयेत् ॥ स एव दिवसो ग्राह्यः श्राद्धे सांवत्सरादिके ॥९०॥ पूर्णे गर्भे मृता नारी विदार्य जठरं तदा ॥ बालं निष्कास्य निक्षिप्य भूमौ तामेव दाहयेत् ॥९१॥ गङ्गातीरे मृतं बालं गङ्गायामेव पातयेत् ॥ अन्यदेशे क्षिपेद्भूमौ सप्तविंशतिमासजम् ॥९२॥ अतः परं दहेत्तस्य गंगायामस्थि निक्षिपत् ॥ जलकुम्भश्च दातव्य बालानामेव भोजनम् ॥९३॥ गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं

में डाल देवे ॥८९॥ उसदिन से दशगात्र विधान को करे जिस दिन पुत्तला दाह करे उसी को मरण तिथि माने ॥९०॥ जो गर्भवती स्त्री पूर्ण गर्भ होने पर मर जावे तो उसके पेट को चीरकर बालक को निकाल कर भूमि में गाड़ देवे और उस स्त्री का दाह करे ॥९१॥ गंगा के तट पर जो बालक मरे उसे गंगा में डाल देवे अन्य देशों में सत्ताइस महीने तक के बालक को भूमि में गाड़ देवे ॥९२॥ सत्ताइस महीने से अधिक दिन के बालक का दाह करे और उसका अस्थि संचयन करे जल को घट और बालकों को भोजन देना चाहिये ॥९३॥ गर्भ नष्ट होने पर क्रिया नहीं है दूध वाले बालक के मरने पर दूध देना चाहिये जलको घट और बालकों के लिये

मृते शिशौ ॥ घटं च पायसं भोज्यं दद्याद्बालविपत्तिषु ॥९४॥ कुमारे च मृते बाला-
न्कुमारानेव भोजयेत् ॥ स बालान्भोजयेद्विप्रान्पौगण्डे सव्रते मृते ॥९५॥ मृतश्च पञ्च-
माद्रूर्ध्वमव्रतः सव्रतोऽपि वा ॥ पायसेन गुडेनापि पिंडान्दद्याद्दशक्रमात् ॥९६॥ एका-
दशं द्वादशं च वृषोत्सर्गविधिं विना ॥ महादानविहीनं च पौगण्डे कृत्यमाचरेत् ॥९७॥
जीवमाने च पितरि न पौगण्डे सपिण्डनम् ॥ अतस्तस्य द्वादशाहन्येकोद्दिष्टं समाचरेत्
॥९८॥ स्त्रीशूद्राणां विवाहस्तु व्रतस्थाने प्रकीर्तितः ॥ व्रतात्प्राक्सर्ववर्णानां वयस्तुल्या

खीर का भोजन देवे ॥९४॥ कुमार बालक के मरने पर कुमारों को भोजन देवे व्रत सहित पौगण्ड के मरने पर बालक सहित ब्राह्मणों को भोजन देवे ॥९५॥ पांच वर्ष के ऊपर का अथवा यज्ञोपवीत संस्कार युक्त बालक मरे तो खीर से या गुड़ से दशगात्र का पिण्ड देवे ॥९६॥ फिर क्रम से एकादशाह और द्वादशाह अर्थात् मासिक श्राद्ध करे सपिण्डन पर्यन्त श्राद्ध करना चाहिये वृषोत्सर्ग और महादान आदि को नहीं करना चाहिये ॥९७॥ पिता जीवित पौगण्ड अवस्था वाले बालक का सपिंडन नहीं होता है इससे उसका बारह दिन तक एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे ॥९८॥ स्त्री और शूद्र का विवाह ही एक संस्कार है इसलिए संस्कार के पहिले सब वर्णों की क्रिया एक ही समान होती है ॥९९॥ थोड़े कर्म के प्रसंग से थोड़े विषय के बन्धनों से थोड़ी अवस्था में देह के छोटी होने पर क्रिया भी छोटी होती है

क्रिया भवेत् ॥९९॥ स्वल्पात्कर्मप्रसंगाच्च स्वल्पाद्विषयबंधनात् ॥ स्वल्पे वयसि देहे च क्रियां स्वल्पामपीच्छति ॥१००॥ किशोरे तरुणे कुर्याच्छय्या वृषमखादिकम् ॥ पददानं महादानं गोदानमपि दापयेत् ॥१०१॥ यतीनां चैवसर्वेषां न दाहो नोदकक्रिया ॥ दशगात्रादिकं तेषां न कर्त्तव्यं सुतादिभिः ॥१०२॥ दण्डग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥ त्रिदण्डग्रहणात्तेषां प्रेतत्वं नैव जायते ॥१०३॥ ज्ञानिनस्तु सदा मुक्ताः स्वरूपानुभवेन हि ॥ अतस्ते पुत्र प्रदत्तानां पिंडानां नैव कांक्षिणः ॥१०४॥ तस्मात्पिंडादिकं

॥१००॥ किशोरावस्था में और तरुणावस्था में शय्यादान, पददान, महादान और गोदान तथा वृषोत्सर्ग आदि क्रियाओं को करना चाहिये ॥१०१॥ यतियों के लिये न दाह क्रिया न उदक क्रिया और दशगात्र विधि को भी न करना चाहिये ॥१०२॥ क्योंकि दंडके ग्रहण मात्रसे ही मनुष्य नारायणका स्वरूप हो जाता है और त्रिदंड के ग्रहण से मनुष्य का प्रेत पन नष्ट हो जाता है ॥१०३॥ ज्ञानी मनुष्य अपने स्वरूप के अनुभव से सदा मुक्त हो जाता है इस कारण बेटा आदि के दिये हुए पिण्ड और जल की इच्छा नहीं रखता है ॥१०४॥ इसलिये उनको पिंडदान और जलदान आदि की क्रिया नहीं करना चाहिये किन्तु पिता की भक्ति से तीर्थ श्राद्ध और

तेषां न तु नोदकमाचरेत् ॥ तीर्थश्राद्धं गया श्राद्धं पितृभक्त्या समाचरेत् ॥१०५॥ हंस-परमहंसं च कुटीचकबहूदकौ ॥ एतान्संन्यासिनस्तार्क्ष्य पृथिव्यां स्थापयेन्मृतान् ॥१०६॥ गंगादीनामभावे हि पृथिव्यां स्थापनं स्मृतम् ॥ यत्र सन्ति महानद्यस्तदा तास्वेव निक्षिपेत् ॥१०७॥

इति श्रीगरुडपुराणे दाहास्थिसञ्चयकर्मनिरूपणो नामकदशमोऽध्याय : ॥ १० ॥

गया श्राद्ध आदि को करे ॥१०५॥ हे गरुड़! हंस परमहंस कुटीचक और बहूदक, इन संन्यासियों को मरने पर भूमि में स्थापित करे ॥१०६॥ गंगा आदि महानदियों के अभाव में भूमि में स्थापन करने को कहा है इन महानदियों के वर्तमान रहते उन्हीं में प्रवाह कर देवे ॥१०७॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गरुड उवाच--दशगात्रविधिं ब्रूहि कृते किं सुकृतं भवेत् ॥ पुत्राभावे तु कः कुर्या-
त्तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥१॥ श्रीभगवानुवाच--शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दशगात्रविधिं तव ॥
यद्विधाय च सत्पुत्रो मुच्यते पैतृकादृणात् ॥२॥ पुत्रः शोकं परित्यज्य धृतिमास्थाय
सात्त्विकीम् ॥ पितुः पिण्डादिकं कुर्यादश्रुपातं न कारयेत् ॥३॥ श्लेष्माश्रुबान्धवैर्मुक्तं
प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ॥ अतो न रोदितव्यं हि तदा शोकान्निरर्थकात् ॥४॥ यदि वर्ष-
सहस्राणि शोचतेऽहर्निशं नरः । तथापि नैव निधनं गतो दृश्येत कर्हिचित् ॥५॥ जातस्य
हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ तस्मादपरिहार्येऽर्थे न शोकं कारयेद् बुधः ॥६॥

गरुड़ जी बोले, हे प्रभो ! अब दशगात्र की विधि कहिये इसके करने से क्या पुण्य होता है और बेटे के अभाव में कौन अधिकारी होता है यह मुझसे कहिये ॥१॥ विष्णु भगवान् बोले, हे गरुड़ ! दशगात्र की विधि को तुमसे कहता हूँ जिसके करने से लड़का पिता के ऋण से छूट जाता है ॥२॥ लड़का पिता के निमित्त शोक न करे और पिण्डदान के समय आँसू न गिरावे ॥३॥ जो बन्धु और लड़का श्राद्ध के समय आँसू गिराते हैं उस श्लेष्मायुक्त आँसू को अवश होकर वह जीव खाता है इससे निरर्थक शोक न करना चाहिये ॥४॥ जो मनुष्य हजारों वर्ष तक दिन रात शोच करता है वह मरने पर भी उसको नहीं देखता है ॥५॥ जो उत्पन्न है उसका मरण

नहि कश्चिदुपायोऽस्ति दैवो वा मानुषोऽपि वा ॥ यो हि मृत्युवशं प्राप्तो जन्तुः पुनरिहा-
व्रजेत् ॥७॥ अवश्यं भावि भावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥ तदा दुःखैर्नयुज्येरन्नलराम-
युधिष्ठिराः ॥८॥ नायमत्यन्तसंवासः कस्यचित्केनचित्सह ॥ अपि स्वेन शरीरेण किमुता-
न्यैर्पृथग्जनैः ॥९॥ यथाहि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य विश्रमेत् ॥ विश्रम्य च
पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः ॥१०॥ यत्प्रातः संस्कृत भोज्यं सायं तच्च विनश्यति ॥
तदन्नरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥११॥ भैषज्यमेतद् दुःखस्य विचारं परिचिन्त्य

निश्चय है और जो मरता है उसका जन्म अवश्य है इस अनिवार्य अर्थ में बुद्धिमान को शोक नहीं करना चाहिये ॥६॥ दैवी अथवा मानुषी ऐसा कोई उपाय नहीं है जिससे मरा हुआ जीव लौट कर फिर यहाँ आवे ॥७॥ अवश्य होने वाले होनहार का यदि कुछ उपाय होता तो नल, रामचन्द्र, युधिष्ठिर, दुःख से युक्त न होते ॥८॥ इस स्वप्न के शरीर से किसी का किसी के साथ अत्यन्त सहवास नहीं होता है और दूसरे का कहना ही क्या है ॥९॥ जैसे कोई राही वृक्ष की छाया में बैठकर कुछ देर विश्राम कर अपने नियत स्थान को चला जाता है ऐसे ही प्राणियों का समागम है ॥१०॥ जैसे प्रातःकाल में जो पदार्थ भोजन योग्य बनाया जाता है वह सायंकाल में नष्ट हो जाता है उस अन्न के रस से पुष्ट किये शरीर में कौनसी नित्यता है ॥११॥ दुःख की औषधि विचार कर चिन्तन करके अज्ञान

च ॥ अज्ञानप्रभवं शोकंत्यक्त्वा कुर्यात्क्रियां सुतः ॥१२॥ पुत्राभावे वधूः कुर्याद्भार्याभावे च सोदरः ॥ शिष्यो वा ब्राह्मणस्यैव सपिंडो वा समाचरेत् ॥१३॥ ज्येष्ठस्य वा कनिष्ठस्य भ्रातुः पुत्रश्च पौत्रकैः ॥ दशगात्रादिकं कार्यं पुत्रहीने नरे खग ॥१४॥ भ्रातृणामेकजातानामेकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् ॥ सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥१५॥ पत्न्यश्च वह्वश्चैकस्य चैका पुत्रवती भवेत् ॥ सर्वास्ताः पुत्रवत्यः स्यु स्तेनैकेन सुतेन हि ॥१६॥ सर्वेषां पुत्रहीनानां मित्रं पिण्डं प्रदापयेत् क्रियालोपो न कर्त्तव्यः सर्वाभावे पुरो-

से उत्पन्न शोक को त्याग कर बेटा पिता की क्रिया करे ॥१२॥ बेटा के अभाव में लड़का की स्त्री उसके न होनेपर सहोदर भाई करे और ब्राह्मण की क्रिया को उसका शिष्य करे अथवा उसका सपिंडन करे ॥१३॥ हे गरुड़ ! पुत्र हीन मनुष्य का उसके जेठा भाई का लड़का दशगात्र आदि क्रियाओं को करे ॥१४॥ एक पिता से उत्पन्न कई भाइयों के मध्य में जो एक को लड़का हो जावे तो उससे सब लड़कावाले हो जाते हैं ॥१५॥ जैसे एक को बहुतसी स्त्रियाँ हों उनमें यदि एक को भी लड़का हो जावे तो उस लड़के से सब लड़कावाली हो जाती हैं यह मनु ने कहा है ॥१६॥ सब पुत्र हीन होवे तो मित्र पिण्ड दान करे मित्र के अभाव में पुरोहित पिण्डदान करे क्रिया का लोप नहीं करना चाहिये ॥१७॥ कोई स्त्री अथवा पुरुष इष्ट की क्रिया करे तो वह अनाथ प्रेत के संस्कार से करोड़ों यज्ञ

हितः ॥१७॥ स्त्री वाऽथ पुरुषः कश्चिदिष्टस्य कुरुते क्रियाम् ॥ अनाथप्रेतसंस्कारात्कोटि-
यज्ञफलं लभेत् ॥१८॥ पितुः पुत्रेण कर्त्तव्यं दशगात्रादिकं खग ॥ मृते ज्येष्ठेऽप्यतिस्ने-
हान्नकुर्वीत पिता सुते ॥१९॥ बहवोऽपि यदा पुत्राः विधिमेकः समाचरेत् ॥ दशगात्रं
सपिंडत्वं श्राद्धान्यन्यानि षोडश ॥२०॥ एकेव तु कार्याणि चाविभक्तधनेष्वपि ॥ विभ-
क्तैस्तु पृथक्कार्यं श्राद्धं सांवत्सरादिकम् ॥२१॥ तस्माज्ज्येष्ठः सुतो भक्त्या दशगात्रं
समाचरेत ॥ एकभोजी भूमिशायी भूत्वा ब्रह्मपरः शुचिः ॥२२॥ सप्तवारं परिक्रम्य

के फल को प्राप्त होता है ॥१८॥ हे गरुड़ ! लड़का को पिता का दशगात्र आदि श्राद्ध करना चाहिये ज्येष्ठ बेटा के मरने पर लड़का की क्रिया को पिता स्नेह से न करे ॥१९॥ यदि किसी को बहुत से लड़के होवें तो एक ही लड़का दशगात्र सोलह श्राद्ध और सपिंडन आदि को विधिपूर्वक करे । २०॥ पिता के धन का विभाग हो जाने पर भी एक ही लड़का को करना उचित है जिनमें विभाग हो गया है उनको सांवत्सरिक श्राद्ध पृथक् करना चाहिये ॥२१॥ इसलिये ज्येष्ठ पुत्र भक्ति से पिता का दशगात्र करे इन श्राद्धों के काल में एक बार भोजन करे पृथ्वी पर सोवे सदा शुद्ध भाव से रहकर ईश्वर का चिन्तन करे ॥२२॥ सात बार पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने का जो फल होता है वह माता पिता की क्रिया करने से प्राप्त होता है ॥२३॥ दशगात्र से लेकर जबतक बरसी नहीं होती तब तक

धरणीं यत्फलं लभेत् ॥ क्रियां कृत्वा पितुर्मातुस्तत्फलं लभते सुतः ॥ २३ ॥ आरभ्य दशगात्रं च यावद्वै वार्षिकं भवेत् ॥ तावत्पुत्रः क्रियां कुर्वन् गयाश्राद्धफलं लभेत् ॥२४॥ कूपे तडागे वारामे तीर्थे देवालयेऽपि वा ॥ तत्र गत्वा तु मध्याह्ने स्नानं कुर्यादमन्त्रकम् ॥२५॥ शुचिर्भूत्वा वृक्षमूले दक्षिणाभिमुखः स्थितः ॥ कुर्याच्च वेदिकां तत्र गोमयेनोपलिप्यताम् ॥२६॥ तस्यां पर्णे दर्भमयं स्थापयेत्कौशिकं द्विजम् ॥ सुपाद्यादिभिरभ्यर्च्य प्रणमेदतसीति च ॥२७॥ तदग्रे च ततो दत्वा पिण्डार्थं कौशमासनम् ॥ तस्योपरि ततः पिण्डं नामगोत्रोपकल्पितम् ॥२८॥ दद्यात्तण्डुलपाकेन यवपिष्टेन वा

क्रिया करने वाला पुत्र गयाश्राद्ध के फल को प्राप्त होता है ॥२४॥ कुआँ, तालाव, बावली, बगीचा, तीर्थ और देवालय इनमें मध्याह्न स्नान बिना मन्त्र का करना चाहिये ॥२५॥ नित्य कर्मों को समाप्त कर शुद्ध हो वृक्ष की जड़ में दक्षिणाभिमुख वेदी बनावे और उसे गोबर से लीपे ॥२६॥ और उस वृक्ष के पत्ते पर विश्वामित्र को स्थापित करे और पाद्य आदि से वसुओं की पूजा करे फिर 'अतसीपुष्पसंकाशम्' इन मन्त्रों को पढ़कर प्रणाम करे ॥२७॥ इसके बाद उनके आगे पिंड रखने के लिये कुशासन रखे और नाम गोत्र का कहकर उसपर पिण्ड रखे ॥२८॥ वह पिण्ड चावल के पाक से अथवा जव के आँटे का बनावे चन्दन और भृङ्गराज का पुष्प उस पर

सुतः ॥ उशीरं चन्दनं भृंगराजपुष्पं निवेदयेत् ॥ धूपं दीपं च नैवेद्यं मुखवासं च दक्षिणाम् ॥२९॥ काकान्नपयसोः पात्रं वर्धमान जलाञ्जलीन् ॥ प्रेतायामुकनाम्ने च मद्दत्तमुपतिष्ठतु ॥३०॥ अन्नं वस्त्रं जलं द्रव्यमन्यद्वा दीयते च यत् ॥ प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्त्यदायकम् ॥३१॥ तस्मादादिदिनादूर्ध्वं प्राक्सपिण्डीविधानतः ॥ योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत् ॥३२॥ प्रथमेऽहनि यत्पिण्डो दीयते विधिपूर्वकम् ॥ तेनैव विधिनान्नेन नवपिण्डान् प्रदापयेत् ॥३३॥ नवमे दिवसे चैव सपिण्डैः सकलैर्जनैः ॥ तैलाभ्यंगः प्रकर्तव्यो मृतकस्वर्गकाम्यया ॥३४॥ बहिः स्नात्वा गृहीत्वा च दूर्वाला जस-

चढ़ावे और धूप दीप नैवेद्य तांबूल, दक्षिणा उसके आगे धरे ॥२९॥ दूध और जल को एकपात्र में काग के लिये अन्न धरे और वर्द्धमान जलकी अंजली देकर कहे कि "अमुकनाम्ने प्रेताय मद्दत्तम् उपतिष्ठतु" ॥३०॥ अन्न, वस्त्र, जल, अथवा अन्य वस्तु जो प्रेत शब्द से दिया जाता है वह मरे हुए प्राणी को आनन्द फल का देनेवाला होता है ॥३१॥ इसलिये प्रथम दिन से लेकर सपिण्डन पर्यन्त स्त्री अथवा पुरुष को प्रेत शब्द के नाम से उच्चारण करे ॥३२॥ पहिले दिन जिस विधि से प्रथम पिंड दिया जावे उसी विधान से नव दिन का नव पिण्ड देना चाहियें ॥३३॥ नवें दिन सब सपिंड मिलकर मृतक की स्वर्ग कामना के लिये तैल लेपन करें ॥३४॥

मन्विताः अग्रतः प्रमदां कृत्वा समागच्छेन्मृतालयम् ॥३५॥ दूर्वावत्कुलवृद्धिस्ते लाजा इव विकासता ॥ एवमुक्त्वा त्यजन्देहे लाजान्दूर्वान् समन्वितान् ॥३६॥ दशमेऽहनि मांसेन पिण्डं दद्यात्खगेश्वर ॥ माषेण तन्निषेधाद्धा कलौ न पलपैतृकम् ॥३७॥ दशमे दिवसे चौरं बांधवानां च मुण्डनम् ॥ क्रियाकर्तुः सुतस्यापि पुनर्मुण्डनमाचरेत् ॥३८॥ मिष्टान्नैर्भोजयेदेकं दिनेषु दशसु द्विजम् ॥ प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च हरिं ध्यात्वा कृताञ्जलिः ॥३९॥ अतीसीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ॥ ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते

फिर बाहर स्नान करके दूर्वा और लाजा को लेकर स्त्रियों को आगे करके मृतक के घरमें आवें ॥३५॥ दूब के समान तुम्हारे कुलकी वृद्धि होवे और इस लाजा के समान तेरा विकास होवे ऐसा कह उस दूर्व और लाजा को उसके घरमें छोड़ दें ॥३६॥ दसवें दिन मांस का पिंड देवें मांस का पिण्ड कलियुग में वर्जित है इसलिये उरद का पिंड दान करे ॥३७॥ और दसवें दिन परिवार वाले तथा इष्ट मित्र मिलकर सब मुण्डन करावें और क्रिया करनेवाला पुत्र भी फिर से मुण्डन करावे ॥३८॥ दसदिन पर्यन्त एक ब्राह्मण को मिष्ठान्न भोजन करावे और हाथ जोड़कर विष्णु से प्रेत की मुक्ति की प्रार्थना करे ॥३९॥ अतसी पुष्प के समान कान्ति वाले पीताम्बर

भयम् ॥४०॥ अनादिनिधनो देवः शंखचक्रगदाधरः ॥ अक्षय्यः पुंडरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत् ॥४१॥ इति संप्रार्थना मन्त्रं श्राद्धान्ते प्रत्यहं पठेत् ॥ स्नात्वा गत्वा गृहे दत्वा गोग्रासं भोजनं चरेत् ॥४२॥

को धारण करने वाले अविनाशी विष्णु भगवान् का जो स्मरण करता है उसको भय नहीं होता है ॥४०॥ आदि अन्त अर्थात् जन्म मरण से रहित शंख चक्र गदा पद्म को धारण करने वाले अक्षय्यपुण्डरीकाक्ष तुम प्रेत को मुक्ति देनेवाले होओ ॥४२॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे दशगात्रविधिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

गरुडउवाच-एकादशदिनस्यापि विधिं ब्रूहि सुरेश्वर॥ वृषोत्सर्गविधानं च वद मे जगदीश्वर ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच-एकादशेऽह्नि गन्तव्यं प्रातरेव जलाशये॥ और्ध्वं देहक्रिया सर्वा करणीया प्रयत्नतः ॥ २ ॥ निमन्त्रयेद्ब्राह्मणांश्च वेदशास्त्रपरायणान् ॥ प्रार्थयेत्प्रेतमुक्तिं च नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥३॥ स्नानसंध्यादिकं कृत्वा ह्याचार्योऽपि शुचिर्भवेत् ॥ विधानं विधिवत्कुर्यादेकादशदिनोचितम् ॥४॥ अमन्त्रं कारयेच्छ्राद्धं दशाहं नामगोत्रतः ॥ एकादशेऽह्नि प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् ॥५॥ सौवर्णं कारयेद्विष्णुं ब्राह्मणं रौप्यकं तथा ॥ रुद्रस्ताम्रमयः कार्यो यमो लोहमयः खग

गरुड़ जो बोले—हे सुरेश्वर! एकादशाह की विधि को तथा वृष के उत्सर्ग की विधि को मुझसे कहिये ॥१॥ भगवान् बोले—हे गरुड़! ग्यारहवें दिन प्रातःकाल नदी वा अन्य जलाशय पर जावे और सब और्ध्व देहिक क्रिया प्रयत्न से करे ॥२॥ वेद शास्त्र जाननेवाले ब्राह्मण को हाथ जोड़ नमस्कार करे और प्रेत की मुक्ति की चाहना से ब्राह्मण को निमन्त्रित करे ॥३॥ आचार्य अपने नित्य कर्मों को समाप्त करके शुद्धता पूर्वक एकादश दिन की क्रियाओं को विधिवत् करावे ॥४॥ मन्त्र रहित दस दिन पर्यन्त केवल नाम गोत्र को कहकर पिण्ड देवे एकादश दिन में मन्त्र युक्त प्रेत के लिये पिंडदान करे ॥५॥ और सोने की विष्णु की मूर्ति और चांदी की

॥६॥ पश्चिमे विष्णुकलशं गंगोदकसमन्वितम् ॥ तस्योपरि न्यसेद्विष्णुं पीतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥७॥ पूर्वे तु ब्रह्मकलशं क्षीरोदकसमन्वितम् ॥ ब्राह्मणं स्थापयेत्तत्र श्वेतवस्त्रेण वेष्टितम् ॥८॥ उत्तरस्यां रुद्रकुम्भं पूरितं मधुसर्पिषा ॥ श्रीरुद्रं स्थापयेत्तत्र रक्तवस्त्रेण वेष्टितम् ॥९॥ दक्षिणस्यां यमघटामन्द्रोदकसमन्वितम् ॥ कृष्णवस्त्रेण संवेष्ट्य तस्योपरि यमं न्यसेत् ॥१०॥ मध्ये तु मण्डलं कृत्वा स्थापयेत्कौशिकं सुतः ॥ दक्षिणाभिमुखो भूत्वाऽपसव्येन च तर्पयेत् ॥११॥ विष्णुं विधिं शिवं धर्मं वेदमन्त्रैश्च तर्पयेत् ॥ होमं

ब्रह्मा की मूर्ति और तांबे का रुद्र की मूर्ति लोहे का यम की मूर्ति बनावे ।६॥ पश्चिम दिशा में गंगाजल से विष्णु का कलश रखे कलश के ऊपर पीत वस्त्र में लपेटकर विष्णु मूर्ति को स्थापित करे ॥७॥ पूर्व दिशा में दूध और जल से पूर्ण ब्रह्मा के कलश का रखे और श्वेत वस्त्र में लपेट कर रूपे की ब्रह्मा की मूर्ति को स्थापित करे ।८। उत्तर दिशा में मधु और घी से पूर्ण रुद्र कलश रखे उसके ऊपर लाल वस्त्र में लपेट कर रुद्र की मूर्ति स्थापित करे ॥९॥ और दक्षिण दिशा में इन्द्र जल से पूर्ण यमकलश को रखे कलश के ऊपर काले वस्त्र में लपेट कर यम की मूर्ति को स्थापित करे ॥१०॥ मध्य में मंडल बनाकर बेटा कौशिकों को स्थापित करे और दक्षिणाभिमुख असव्य होकर तर्पण करे ॥११॥ विष्णु, ब्रह्मा, शिव और धर्म इनको वेद मन्त्र से तर्पण करे पश्चात् हवन करके दश-

कृत्वा चरेत्पश्चाच्छ्राद्धं दशघटादिकम् ॥१२॥ गोदानं च ततो दद्यात्पितॄणां तारणाय वै ॥ गोरेषा हि मया दत्ता प्रीयतें तेऽस्तु माधव ॥१३॥ उपभुक्तं तु तस्यासीद्वस्त्रभूषणवाहनम् ॥ घृतपूर्णं कांस्यपात्रं सप्तधान्यं तदीप्सितम् ॥१४॥ तिलाद्यष्टमहादानमन्तकाले च यत्कृतम् ॥ शय्यासमीपे धृत्वैतद्दानं तस्याः प्रदापयेत् ॥१५॥ प्रक्षाल्य विप्रचरणौ पूजयेदम्बरादिभिः ॥ सिद्धान्नं तस्य दातव्यं मोदकाऽपूपकाः पयः ॥१६॥ स्थापयेत्पुरुषं हैमं शय्योपरि तदा सुतः ॥ पूजयित्वा प्रदातव्या मृतशय्या यथोदिता ॥१७॥

घट आदि श्राद्ध करे ॥१२॥ फिर पितरों को तारने के लिये गोदान करके कहे कि हे माधव! मुझसे दी हुई गौ तुम्हारी प्रसन्नता के लिये होवे ॥१३॥ और उस मनुष्य के भोग किये हुए जो वस्त्र आभूषण तथा वाहन होवें उसको और घी से पूर्ण कांस्यपात्र को सप्तधान तथा प्रेत की प्रिय वस्तु को ॥१४॥ तिल, लोह आदि आठ महादान और जो अन्तकाल में न किया गया हो उसको शय्या के समीप रखकर ब्राह्मण को दान करे ॥१५॥ ब्राह्मण के चरण को धोकर वस्त्र चन्दन आदि से पूजा करके पक्वान्न और दूध भोजन के लिये देवे ॥१६॥ उस समय लड़का शय्या के ऊपर काञ्चन पुरुष को रखकर विधिवत् पूजन करे और शास्त्र की विधि से मृत शय्या देवे ॥१७॥ और कहे कि हे विप्र! प्रेत की प्रतिमा से युक्त संपूर्ण सामग्री सहित यह प्रेत शय्या मैंने तुमको समर्पित किया

प्रेतस्य प्रतिमा युक्ता सर्वोपकरणैर्वृता ॥ प्रेतशय्यामया ह्येषा तुभ्यं विप्र निवेदिता ॥१८॥ इत्याचार्याय दातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥१९॥ एवं शय्याप्रदानेन श्राद्धेन नवकादिना ॥ वृषोत्सर्गविधानेन प्रेतो याति परां गतिम् ॥२०॥ एकादशेऽन्हि विधिना वृषोत्सर्गं समाचरेत् ॥ हीनाङ्गं रोगिणं बालं त्यक्त्वा कुर्यात्सलक्षणम् ॥२१॥ रक्ताक्षः पिङ्गलो यस्तु रक्तः शृंगे गले खुरे ॥ श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठोब्राह्मणस्य विधीयते ॥२२॥ सुस्निग्धवर्णोयो रक्तः क्षत्रियस्य विधीयते ॥ पीतवर्णश्च वैश्यस्य कृष्णः शूद्रस्य शस्यते ॥२३॥ यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गः स्या-

॥१८॥कुटुम्बी आचार्य के लिये शय्या देकर प्रदक्षिणा कर फिर नमस्कार करके विसर्जन करे ॥१९॥ इस प्रकार शय्यादान करने से दशगात्र श्राद्ध और वृषोत्सर्ग विधि पूर्वक करने से वह प्रेत परमगति को प्राप्त होता है ॥२०॥ एकादशाह के दिन विधि पूर्वक वृषोत्सर्ग करे हीन अंगवाले रोगी और छोटे बच्चे इनका उत्सर्ग नहीं करना चाहिये ॥२१। लालनेत्र, पिंगलवर्ण सींग और लाल पेट का भाग शुक्ल पीठ का भाग काला इस प्रकार का साड़ ब्राह्मण के लिये होवे ॥२२॥ तीन वर्ष का पुष्ट चिकना और लाल वर्ण का साड़ क्षत्रिय के लिये होवे पीतवर्ण का वैश्य को और कृष्ण वर्ण का शूद्र को होना चाहिये ॥२३॥ जिसके अंग पिङ्गल वर्ण हो और पूछ

च्छ्वेतः पुच्छे पदेषु च ॥ स पिंगो वृष इत्याहुः पितॄणां प्रीतिवर्धनः ॥ २४ ॥ चरणास्तुमुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः ॥ लाक्षारससवर्णो यः स नील इति कीर्तितः ॥ २५ ॥ लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ पिंगः खुरविषाणाभ्यां रक्तनीलो निगद्यते ॥ २६ ॥ सर्वांगेष्वेकवर्णो यः पिंगः पुच्छे खुरेषु यः ॥ तं नीलपिंगमित्याहुः पूर्वजोद्धारकारकम् ॥ २७ ॥ पारावतसवर्णस्तु ललाटे तिलकान्वितः ॥ तं बभ्रुनीलमित्याहुः पूर्णंसर्वाङ्गशोभनम् ॥ २८ ॥ नीलः सर्व-शरीरेषु रक्तश्च नयनद्वये ॥ तमप्याहुर्महानीलं नीलः पञ्चविधःस्मृतः ॥ २९ ॥

तथा पैर सफेद होवे तो उसे पिंग वृष कहते हैं। वह पितरों की प्रीति को बढ़ाने वाला होता है ॥२४॥ चरण मुख और पुच्छ जिस बैल के सफेद हों और लाह के रंग उसका रंग हो उसे नीलवृष कहते हैं ॥२५॥ जिसका रंग लाल हो मुख पुच्छ पांडुर वर्ण हो और खुर पिंगलवर्ण हो उसे रक्तनील कहते हैं ॥२६॥ जिसका सब अंग एक रंग के हों और खुर तथा पूँछ पिंगल वर्ण हो उसे नीलपिंगल कहते हैं। वह पुरुषों का उद्धार करने वाला है ॥ २७ ॥ जिसका रंग कबूतर के सदृश हो और माथे में श्वेत तिलक हो उसको बभ्रुनील कहते हैं ॥२८॥ जिसका सब अंग नीला हो दोनों आँख लाल हों उसको महानील कहते हैं यह नील पाँच प्रकार का होता है ॥२९॥ अवश्य ही छोड़ने योग्य

अवश्यमेव मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत् ॥ तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी ॥ ३० ॥ एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ॥ गौरीं विवाहयेत्कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥ ३१ ॥ स एव पुत्रो मन्तव्यो वृषोत्सर्गं तु यश्चरेत् ॥ गयायां श्राद्धदाता च योऽन्यो विष्ठासमः किल ॥ ३२ ॥ रौरवादिषु ये केचित्पच्यन्ते यस्य पूर्वजाः ॥ वृषोत्सर्गेण तान्सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम् ॥ ३३ ॥ वृषोत्सर्गं किलेच्छन्ति पितरः स्वर्गता अपि ॥ अस्मद्वंशे सुतः कोऽपि वृषोत्सर्गं करिष्यति ॥ ३४ ॥ तदुत्सर्गाद्वयं सर्वे यास्यामः परमां गतिम् ॥ सर्वयज्ञेषु चास्माकं वृषयज्ञो हि मुक्तिदः

है वह घर में रखने योग्य नहीं है उसके लिये वह पुरानी गाथा लोक में प्रचलित है ॥३०॥ बहुत से लड़कों की इच्छा करनी चाहिये यदि उनमें एक भी गयाश्राद्ध करे और गौरी कन्या का दान देवे अथवा नील बैल का उत्सर्ग करे ॥३१॥ वृषोत्सर्ग और गयाश्राद्ध करने वाला लड़का मानने योग्य होता है इसके अतिरिक्त अन्य सब विष्ठा के समान हैं ॥३२॥ जिस मनुष्य के पुरुषा रौरव आदि नरकों में पड़े हैं वृषोत्सर्ग करने से उनको इकीस पीढ़ी तक का उद्धार होता है ॥ ३३ ॥ और जिसके पितर पुण्य बल से स्वर्ग में पहुँचे हैं वे भी वृषोत्सर्ग की इच्छा करते हैं कि हमारे वंश में कोई लड़का वृषोत्सर्ग करता तो ॥ ३४ ॥ उसके उत्स ॅ से हम सब परमगति को प्राप्त

॥ ३५ ॥ तस्मात्पितृविमुक्त्यर्थं वृषयज्ञं समाचरेत् ॥ यथोक्तेन विधानेन कुर्या-
त्सर्वं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥ ग्रहाणां स्थापनं कृत्वा तत्तन्मन्त्रैश्च पूजनम् ॥ होमं कुर्याद्य-
थाशास्त्रं पूजयेद्वृषमातुरः ॥ ३७ ॥ वत्सं वत्सीं समानीय बध्नीयात्कङ्कणं तयोः ।
वैवाह्येन विधानेन स्तम्भमारोपयेत्तदा ॥ ३८ ॥ स्नापयेच्च वृषं वत्सीं रुद्रकुम्भोदकेन
च ॥ गन्धमाल्यैश्च संपूज्य कारयेच्च प्रदक्षिणाम् ॥ ३९ ॥ त्रिशूलं दक्षिणे पार्श्वे
वामे चक्रं प्रदापयेत् ॥ तं विमुच्याञ्जलिं बद्ध्वा पठेन्मंत्रमिमं सुतः ॥ ४० ॥ धर्मस्त्वं
वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा ॥ तवोत्सर्गप्रदानेन तारयस्व भवार्णवात् ॥ ४१ ॥ इति

होते, वृषभयज्ञ निश्चय मुक्ति देनेवाला है ॥ ३५ ॥ इससे पितरों को मुक्ति के लिये विधिपूर्वक प्रयत्न से वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥३६॥ मन्त्र सहित ग्रहों का स्थापन और पूजन करे शास्त्र विधि से हवन करके आतुर वृष का विधिवत् पूजन करे ॥ ३७ ॥ बैल और बछिया को लाकर कंकण बाँधे और विवाह के विधान से मंडप स्थापन करे ॥ ३८ ॥ बैल और बछिया को रुद्रकलश के जल से स्नान करावे गन्ध पुष्प आदि से पूजन करके प्रदक्षिणा करावे ॥ ३९ ॥ दाहिनी ओर त्रिशूल और बाँई ओर चक्र का चिन्ह बनावे उसको छोड़कर विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर पुत्र इस मंत्र को पढ़े ॥४०॥ हे बैल ! तुम धर्म रूपी हो ब्रह्माजी ने पहिले तुम्हे बनाया है तुम्हारा उत्सर्ग किया है इसलिये संसार रूपी सागर से पार करो ॥ ४१ ॥ इस मंत्र से नमस्कार करके बैल और बछिया को छोड़ दे, मैं सदा उसको वरदान

मन्त्रान्नमस्कृत्य वत्सं वत्सीं समुत्सृजेत् ॥ वरदोऽहं सदा तस्य प्रेतमोक्षं ददामि च ॥४२॥ तस्मादेष प्रकर्त्तव्यस्तत्फलं जीवतो भवेत् ॥ अपुत्रस्तु स्वयं कृत्वा सुखं याति परां गतिम् ॥ ४३ ॥ कार्तिकादौ शुभे मासे चोत्तरायणगे रवौ ॥ शुक्लपक्षेऽथवा कृष्णे द्वादश्यादितिथौ तथा ॥ ४४ ॥ ग्रहणद्वितये चैव पुण्यतीर्थेऽयनद्वतये ॥ विषुवद्द्वितये चापि वृषोत्सर्गं समाचरेत ॥ ४५ ॥ शुभलग्ने मुहूर्ते च शुचौ देशे समाहितः ॥ ब्राह्मणं तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् ॥ ४६ ॥ जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्याद्देहशोधनम् ॥ पूर्ववत्सकलं कृत्यं कुर्याद्धोमादि लक्षणम् ॥ ४७ ॥ शालग्रामं च संस्थाप्य वैष्णवं

देने वाली और प्रेत को मोक्ष देने वाली हूँ ॥ ४२ ॥ इस वृषोत्सर्ग का फल जीवित को प्राप्त होता है पुत्र हीन पुरुष को आपही वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥ ४३ ॥ कार्तिक आदि शुभ महीनों में उत्तरायण सूर्य और शुक्ल पक्ष में अथवा कृष्ण पक्ष में तथा द्वादशी आदि तिथियों में ॥ ४४ ॥ सूर्य-चन्द्र ग्रहण के समय में पवित्र तीर्थों में दोनों अयनों में दोनों विषुवत में वृषोत्सर्ग करे ॥ ४५ ॥ शुभलग्न शुभ मुहूर्त में पवित्र देशकाल में सावधान होकर विधि को जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर ॥४६॥ जप, होम तथा दान से देह को शुद्ध कर और पहिले की तरह हवन करे ॥४७॥ शालिग्राम की मूर्ति रख कर वैष्णव श्राद्ध करे पश्चात् अपना श्राद्ध करे और ब्राह्मण के

श्राद्धमाचरेत् ॥ आत्मश्राद्धं ततः कुर्याद्दद्याद्दानं द्विजन्मने ॥ ४८ ॥ एवं यः कुरुते पत्तिन्नपुत्रश्चापि पुत्रवान् ॥ सर्वकामफलं तस्य वृषोत्सर्गात्प्रजापते ॥ ४९ ॥ अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि ॥ न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या लभेत् ॥५०॥ बाल्ये कौमारे पौगण्डे यौवने वार्धके कृतम् ॥ यत्पापं तद्विनश्येत वृषोत्सर्गान्न संशयः ॥५१॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् । वृषोत्सर्गसमं पुण्यंनास्ति तार्क्ष्य जगत्त्रये ॥५२॥ पतिपुत्रवती नारी द्वयोरग्रे मृता यदि ॥ वृषोत्सर्गं नैव कुर्याद् दद्यात् गां च पयस्विनीम् ॥ ५३ ॥ वृषभं वाहयेद्यस्तु स्कन्धे पृष्ठे च खेचर ॥ स पतेन्नरके घोरे यावदा-

लिये दान देवे ॥४८॥ हे गरुड़ ! पुत्रवान् तथा पुत्रहीन जो इस प्रकार वृषोत्सर्ग करते हैं उनके वृषोत्सर्ग से संपूर्ण काम का फल प्राप्त होता है ॥४९॥ अग्निहोत्र आदि अनेक प्रकार के यज्ञों से और अनेक तरह के दान देने से वह गति नहीं मिलती है जो वृषोत्सर्ग करने से होती है ॥ ५० ॥ जन्म से लेकर मरण पर्यन्त जितने प्रकार के पाप मनुष्य के देह से होवे हैं वे सब वृषोत्सर्ग से नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ ५१ ॥ मित्रों से द्रोह करने वाले, किये हुए उपकार को न मानने वाले, मदिरा पीने वाले, गुरु की स्त्री से गमन करने वाले, ब्राह्मण का घात करने वाले और सोना चुराने वाले सब वृषोत्सर्ग से मुक्त हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ इससे प्रयत्न पूर्वक वृषोत्सर्ग करना चाहिये वृषोत्सर्ग के समान तीनों लोक में पुण्य नहीं है ॥ ५२ ॥ सती और पुत्रवती स्त्री जो दोनों से पहिले मर जावे तो

भूतसंप्लवम् ॥ ५४ ॥ वृषभं ताडयेद्यस्तु निर्दयो मुष्टियष्टिभिः ॥ स नरः कल्पपर्यन्तं भुनक्ति यमयातनाम् ॥ ५५ ॥ एवं कृत्वा वृषोत्सर्गं कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश ॥ सपिण्डी-करणादर्वाक्तद्दहं कथयामि ते ॥ ५६ ॥ स्थाने द्वारेऽर्धमार्गे च चितायां शवहस्तके ॥ अस्थिसंचयने षष्ठो दशपिण्डा दशाह्निकाः ॥५७॥ मलिनं षोडशं चैतत्प्रथमं परि-कीर्तितम् ॥ अन्यच्च षोडशं मध्ये द्वितीयं कथयामि ते ॥५८॥ प्रथमं विष्णवे दद्यात् द्वितीयं श्रीशिवाय च ॥ याम्याय परिवाराय तृतीयं पिण्डमुत्सृजेत् ॥५९॥ चतुर्थं

उसके लिये वृषोत्सर्ग न करे किन्तु दूध देने वाली गौ को दान करे ॥ ५४ ॥ हे गरुड़ ! बैल को हल में जोतने वाले और पीठपर लादने वाले महा प्रलय पर्यन्त नरक में बास करते हैं ॥ ५५ ॥ जो मनुष्य दया को त्याग करके घूसा और लाठी से बैल को मारते हैं वह कल्प भर यमराज यातना को भोगते हैं ॥५६॥ इस प्रकार वृषोत्सर्ग करके सोलह श्राद्ध करे सपिंडन से पहिले जो क्रियायें होती हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥ ५७ ॥ मृतक के स्थान पर द्वार पर आधे मार्ग में चिता पर मृतक के हाथ पर अस्थि संचयन में छठें और दस दिन के दस पिंड को देवे ॥ ५८ ॥ यह प्रथम षोडश मैंने जो तुम से कहा है वह मलिन है दूसरा षोडश भी तुमसे कहता हूँ ॥ ५९ ॥ पहिला विष्णु के निमित्त दूसरा शिव के निमित्त तीसरा पिंड परिवार सहित यम के लिये देवे ॥ ६० ॥ चौथा

सोमराजाय हव्यवाहाय पञ्चमम् ॥ कव्यवाहाय षष्ठं च दद्यात्कालाय सप्तमम् ॥६०॥
रुद्राय चाष्टमं दद्यान्नवमं पुरुषाय च ॥ प्रेताय दशमं चैवैकादशं विष्णवे ततः ॥६१॥
द्वादशं ब्रह्मणे दद्याद्विष्णवे च त्रयोदशम् ॥ चतुर्दशं शिवायैव यमाय दशपञ्च-
कम् ॥६२॥ दद्यात्तत्पुरुषायैवं पिण्डं षोडशकं खग ॥ मध्यं षोडशकं प्राहुरेतत्तत्त्वविदो
जनाः ॥६३॥ द्वादशप्रतिमासेषु पाक्षिकं च त्रिपाक्षिकं च त्रिपाक्षिकम् ॥ न्यूनषा-
ण्मासिकं पिडं दद्यान्न्यूनाब्दिकं तथा ॥६४॥ उत्तमं षोडशं चैतन्मया ते परिकीर्ति-
तम् ॥ श्रपयित्वा चरुं तार्क्ष्य कुर्यादेकादशेऽहनि ॥६५॥ चत्वारिंशत्तथैवाष्टौ श्राद्धं

सोमराज के पाँचवाँ हव्यवाह के लिये, छठवाँ कव्यवाह के लिये, सातवाँ काल के निमित्त देवे ॥६०॥ आठवाँ रुद्र के लिये, नवाँ पुरुषों के लिये, दसवाँ प्रेत के लिये, ग्यारहवाँ विष्णु के लिये देवे ॥ ६१ ॥ बारहवाँ ब्रह्मा के निमित्त तेरहवाँ विष्णु के लिये, चौदहवाँ शिव के लिये पन्द्रहवाँ पिंड विष्णु के लिये देवे।।६२॥ हे गरुड़ ! सोलहवाँ पिंड पुरुष के लिये देवे तत्त्व को जानने वाले पुरुष इसको मध्य-षोडश करते हैं ॥ ६३ ॥ द्वादश १२ मासिक श्राद्ध पाक्षिक त्रिपाक्षिक श्राद्ध और न्यूनषाण्मासिक न्यूनाब्दिक पिण्ड को क्रम से देवे ॥६४॥ यह उत्तम षोडश मैंने तुमसे कहा है ! हे गरुड़ ग्यारहवें दिन खीर का श्राद्ध करे ।.६५॥ यह ४८ श्राद्ध प्राणी के प्रेतपना को

प्रेतत्वनाशनम् ॥ यस्य जातं विधानेन स भवेत्पितृपंक्तिभाक् ॥६६॥ पितृपंक्तिप्रवेशार्थं कारयेत्षोडशत्रयम् ॥ एतच्छ्राद्धविहीनश्चेत्प्रेतो भवति सुस्थिरम् ॥६७॥ यावन्न दीयते श्राद्धं षोडशत्रयसंज्ञकम् ॥ स्वदत्तं परदत्तं च तावन्नैवोपतिष्ठते ॥६८॥ तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं विधिना षोडशत्रयम् ॥ भर्तुर्वा कुरुते पत्नी तस्याः श्रेयो ह्यनन्तकम् ॥६९॥ संपरेतस्य या पत्युः कुरुते चौर्ध्वदेहिकम् ॥ तयाहं पात्निकश्राद्धं सा सतीत्युच्यते मया ॥७०॥ उपकाराय सा भर्तुर्जीवत्येषा पतिव्रता ॥ जीवितं सफलं तस्या या मृते स्वामिनं भजेत् ॥७१॥ अथ कश्चित्प्रमादेन म्रियते वन्हिवारिभिः ॥ संस्कारप्रमुखं कर्म

नाश करते हैं जिनके निमित्त ये तीनों षोडश होते हैं वह पितृ लोक में निवास करता है ॥ ६६ ॥ पितृ लोक में प्रवेश करने के लिये तीनों षोडश करना चाहिये जो इन तीनों षोडश को जीव के निमित्त नहीं करते हैं वह सुस्थिर प्रेत होता है ॥ ६७ ॥ जब तक ये तीनों षोडश श्राद्ध नहीं होते हैं तब तक मनुष्य अपना दिया अथवा दूसरे का दिया हुआ नहीं पाता है ॥ ६८ ॥ इस लिये पुत्र को चाहिये कि पिता के निमित्त तीनों षोडश अवश्य करे और जो स्त्री पति के लिये करती है उसका अनन्त कल्याण होता है ॥६९॥ जो स्त्री मरे हुए पति का और्ध्व देहिक कर्म करती है वह देवलोक में सती कही जाती है ॥७०॥ पति के उपकार के लिये जो स्त्री जीती है उसका

सर्वं कुर्याद्यथाविधिः ॥७२॥ प्रमादादिच्छया वापि नागाद्वा म्रियते यदि ॥ पक्षयोरु-
भयोर्नागं पञ्चमीषु प्रपूजयेत् ॥७३॥ कुर्यात्पिष्टमयीं लेख्यां नागभोगाकृति भुवि ॥
अर्चयेत्तां सितैः पुष्पैः सुगन्धैश्चन्दनेन क ॥७४॥ प्रदद्याद्धूपदीपौ च तण्डुलांश्च तिला-
न्क्षिपेत् ॥ आमपिष्टं च नैवद्यं क्षीरं च विनिवेदयेत् ॥७५॥ सौवर्णं शक्तितो नागं गां
च दद्याद् द्विजन्मने ॥ कृताञ्जलिस्ततो ब्रूयात्प्रीयतां नागराडिति ॥७६॥ पुनस्तेषां
प्रकुर्वीत नाराणबलिक्रियाम् ॥ तया लभन्ते स्वर्वासं मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥७७॥ एवं

जीना सफल है जो अपने मरे हुए पति को सदा भजती है। ॥७१॥ जो कोई मनुष्य प्रमाद से अथवा अग्नि या जल से जल कर मर जाते हैं उनका अग्नि संस्कार आदि सब कर्म विधि पूर्वक करे ॥७२॥ प्रमाद से इच्छा करके अथवा सर्प के काटने से जो मनुष्य मरते हैं उनके लिये दोनों पक्ष की पंचमी में नाग देव का पूजन करे ॥७३॥ सर्प के आकार का आटा से पृथ्वी में बनावे उसको सफेद पुष्प चन्दन और सुगन्ध से विधिवत् पूजन करे ॥७४। धूप दीप देकर चावल और कच्चा तिल इन दोनों को पीस कर इनके आटे का नैवेद्य और दूध से नहलावे ॥७५॥ शक्ति के अनुसार सोने का नाग और गौ ब्राह्मण को दान करे और हाथ जोड़ कर कहे हे नागराज प्रसन्न होओ ॥७६॥ फिर उस मनुष्य की नारायण वाली क्रिया करे इसको करने से मनुष्य सब पापों से छूट कर स्वर्ग में वास करता

सर्वक्रियां कृत्वा घटं सान्नं जलान्वितम् ॥ दद्यादाब्दं यथासंख्यान्पिण्डान्वासजलान् क्रमात् ॥७८॥ एवमेकादशे कृत्वा कुर्यात्सापिण्डनं ततः ॥ शय्यापदानां दानं च कारयेत्सूतके गते ॥७९॥

है ॥७७॥ इस प्रकार सब क्रिया करके अन्न जल घट सहित वर्ष भर दान करे और क्रम से पिण्ड दान करे ॥७८॥ सूतकान्त अर्थात् दशम दिन में शय्या दान एकादश सपिंडन और वेद दान आदि को करे ॥ ७९ ॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

गरुड उवाच ॥ सपिण्डनविधिं ब्रूहि सूतकस्य च निर्णयम् ॥ शय्यापदानां सामग्रीं तेषां च महिमां प्रभो ॥१॥ श्रीभगवानुवाच—शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि सापिण्ड्याद्याखिलां क्रियाम ॥ प्रेतनाम परित्यज्य यथापितृगणे विशेत् ॥२॥ न पिण्डो मिलितो येषां पितामहशिवादिषु ॥ नोपतिष्ठन्ति दानानि पुत्रैर्दत्तान्यनेकधा ॥३॥ अशुद्धो स्यात्सदा पुत्रो न शुध्यति कदाचन ॥ सूतकं न निवर्तेत सपिंडीकरणं विना ॥४॥ तस्मात्पुत्रेण कर्तव्यं सूतकान्ते सपिण्डनम् ॥ सूतकं ते प्रवक्ष्यामि सर्वेषां च यथोचिम् ॥५॥

गरुड़ जी बोले हे नाथ! सूतक का निर्णय सपिण्डन की विधि और शय्या तथा पद दान आदि सामग्री और उनका महिमा का वर्णन करो ॥१॥ विष्णु भगवान् बोले हे गरुड़! सपिंडन आदि की सम्पूर्ण क्रियाओं को मैं तुमसे कहता हूँ जिन क्रियाओं को करने से मनुष्य प्रेत भाव को छोड़ कर पितृलोक में प्रवेश करता है ।२॥ जिसका पिंड शिव आदि पितामह में नहीं मिलता है उसको पुत्र का दिया हुआ श्राद्ध और दान भी नहीं मिलता है ॥३॥ पुत्र सदा अशुद्ध रहता है कभी और किसी उपाय से शुद्ध नहीं होता है क्यों कि बिना सपिण्डी करण के सूतक नहीं जाता है ॥४॥ इसलिये पुत्र को सूतक के अन्त में सपिंडन करना चाहिये, सब वर्णों का यथार्थ

ब्राह्मणस्तु दशाहेन क्षत्रियो द्वादशेऽहनि ॥ वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥६॥ दशाहेन सपिंडास्तु शुध्यन्ति प्रेतसूतके ॥ त्रिरात्रेण सकुल्यास्तु स्नात्वा शुद्ध्यन्ति गोत्रजाः ॥७॥ चतुर्थे दशरात्रं स्यात्षण्निशाः पुंसि पञ्चमे ॥ षष्ठे चतुरहः प्रोक्तं सप्तमे च दिनत्रयम् ॥८॥ अष्टमे दिनमेकं तु नवमे प्रहरद्वयम् ॥ दशमे स्नानमात्रं हि मृतकं जन्मसूतकम् ॥९॥ देशान्तरगतः कश्चिच्छृणुयाद्यो ह्यनिर्दशम् ॥ यच्छेषं दशरात्रस्य तावदेवाशुचिर्भवेत् ॥१०॥ अतिक्रान्ते दशाहे तु त्रिरात्रमशुचिर्भ-

सूतक कहते हैं ॥५॥ ब्राह्मण दस दिन क्षत्रिय बारह दिन वैश्य पन्द्रह दिन में और शूद्र एक मास में शुद्ध होता है ॥६॥ सपिंड प्रेत के सूतक में दस दिन में शुद्धि होती है और कुल वाले तीन रात्रि में शुद्ध होते हैं और गोत्र वाले स्नान मात्र से शुद्ध होते हैं ॥७॥ चौथी पीढ़ी में दस रात्रि तक सूतक रहता है पाँचवीं पीढ़ी में छः रात्रि छठी पीढ़ी में चार दिन सातवीं से तीन दिन तक सूतक रहता है ॥८॥ आठवीं में एक दिन नवीं पीढ़ी में दोपहर दसवीं पीढ़ी में स्नान मात्र से जन्म सूतक और मरण सूतक निवृत्त होता है ॥९॥ कोई परदेश में गया हो दस दिन के भीतर उसका मरण सुनाई पड़े तो दस दिन में जितना दिन बाकी रहे उतना ही सूतक मनाना चाहिये ॥१०॥ दस दिन बीत जाने पर वर्ष से पहिले तीन रात्रि तक सूतक माने वर्ष बीत जाने पर स्नान मात्र से शुद्धि होती है

वेत् ॥ संवत्सरे व्यतीते तु स्नानमात्राद्विशुध्यति ॥११॥ अद्यभाग द्वयं यावन्मृतकस्य च सूतके। द्वितीये पतिते चाद्यात्सूतकाच्छुद्धिरिष्यते ॥१२॥ आदन्तजननात्सद्यः आचौलान्नैशिकी स्मृता ॥ त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥१३॥ आजन्मनस्तु चौलान्तं यत्र कन्या विपद्यते ॥ सद्यः शौचं भवेत्तत्र सर्ववर्णेषु नित्यशः ॥१४॥ ततो वाग्दानपर्यन्तं यावदेकाहमेव हि ॥ अतः परं प्रवृद्धानां त्रिरात्रमिति निश्चयः ॥१५॥ वाक्प्रदाने कृते त्वत्र ज्ञेयं चोभयतस्त्र्यहम् ॥ पितुर्वरस्य च ततो दत्तानां भर्तुरेव हि ॥१६॥ षण्मासाभ्यन्तरे यावद् गर्भस्रावो भवेद्यदि ॥ तदा माससमैस्तासां दिवसैः शुद्धि-

॥११॥ मुण्डन पर्यन्त एक रात्रि का यज्ञोपवीत पर्यन्त तीन रात्रि का इससे अधिक अवस्था वाले का दस दिन पर्यन्त सूतक रहता है ॥१२॥१३॥ जन्म से लेकर मुण्डन पर्यन्त कन्या के मरने में स्नान मात्र तक सूतक रहता है ॥१४॥ इसके उपरान्त वाग्दान पर्यन्त एक दिन का सूतक मानना चाहिये इससे अधिक अवस्था वाली कन्या का तीन रात्रि का सूतक होता है यह निश्चय है ।१५॥ वाग्दान हो जाने पर पिता के कुल में तीन दिन और वर के कुल में तीन दिन का सूतक होता है ब्याह हो जाने पर पति के कुल में दस रात्रि का सूतक होता है पिता के कुल में नहीं होता है ॥१६॥ छः मास के भीतर जो गर्भ गिर जावे तो छः महीने में सूतक निवृत्त

रिष्यते ॥१७॥ अतऊर्ध्वं स्वजात्ययुक्तमाशौचं तासु विद्यते ॥ सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्य पतने सति ॥१८॥ सर्वेषामेव वर्णानां सूतके मृतकेऽपि वा ॥ दशाहाच्छुद्धिरित्येष कलौ शास्त्रस्य निश्चयः ॥१९॥ आशीर्वादं देवपूजां प्रत्युत्थानाभिवन्दनम् ॥ पर्यङ्के शयनं स्पर्शं न कुर्यान्मृतसूतके ॥२०॥ संध्यां दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ ब्रह्मभोज्यं व्रतं नैव कर्त्तव्यं मृतसूतके ॥२१॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं सूतके यः समाचरेत् ॥ तस्य पूर्वकृतं नित्यादिकं कर्म विनश्यति ॥२२॥ व्रतिनो मन्त्रपूतस्य

होता है ॥१७॥ इसके उपरान्त अपने जाति के लिये कहा हुआ अशौच उन माताओं में उतने दिनों तक रहता है बाकी सपिंड को स्नान पर्यन्त सूतक रहता है ॥१८॥ कलियुग में सब वर्णों की दस रात्रि में शुद्धि लिखी है यह शास्त्र का सिद्धान्त है ॥१९॥ आशीर्वाद, देवताओं की पूजा, प्रत्युन, अभिवादन, शय्या का सोना और दूसरों से स्पर्श यह सब मृत सूतक में नहीं करना चाहिये ॥२०॥ सन्ध्या, दान, जप, होम, वेद पाठ, पितरों का तर्पण, ब्राह्मण भोजन और जन्माष्टमी आदि व्रत इन सब का मृतक सूतक में न करे ॥२१॥ जो मनुष्य सूतक में नित्य, नैमित्तिक, काम्य आदि कर्म जिस कामना से किया गया है उन सब को सूतक में करने से पूर्व का किया हुआ भी नष्ट हो जाता है ॥२२॥ व्रत, मन्त्रों का जापक अग्निहोत्री, ब्रह्मनिष्ट, गृहस्थ और यती राजा इनको सूतक

साग्निकस्य द्विजस्य च ॥ ब्रह्मनिष्ठस्य यतिनो न हि राज्ञां च सूतकम् ॥२३॥ विवाहो-
त्सवयज्ञेषु जाते च मृतसूतके ॥ तस्य पूर्वकृतं चान्नं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥२४॥
सूतके यस्तु गृह्णाति तदज्ञानान्न दोषभाक् ॥ दाता दोषमवाप्नोति याचकाय ददन्नपि
॥२५॥ प्रच्छाद्य सूतकं यस्तु ददात्यन्नं द्विजाय च ॥ ज्ञात्वा गृह्णन्ति ये विप्रा दोष-
भाजस्तु ते अपि ॥२६॥ तस्मात्सूतकशुद्ध्यर्थं पितुः कुर्यात्सपिण्डनम् ॥ ततः पितृगणैः
सार्धं पितृलोकं स गच्छति ॥२७॥ द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेपि वा ॥
सपिंडीकरणं प्रोक्तं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥२८॥ मया तु प्रोच्यते तार्क्ष्य शास्त्रधर्मा-

का दोष नहीं होता है ॥२३॥ विवाह आदि के उत्सव में मृत सूतक हो जाने पर पूर्व में तैयार अन्न को सूतक होने पर नहीं भोजन करना चाहिये ॥२४॥ सूतक का न जानने पर जो सूतक में ग्रहण करता है वह दोष भागी नहीं होता है परन्तु याचक को देने से देने वाला दोष भागी होता है ॥२५॥ जो मनुष्य सूतक को छिपा कर ब्राह्मण को अन्न देता है और जो ब्राह्मण सूतक जान कर उसे ग्रहण करता है वे दोनों दोष भागी होते हैं ॥२६॥ इसलिये सूत का शुद्धि के लिये पिता का सपिंडन करना चाहिये सपिंडन के उपरान्त वह जीव पितृ लोक में जाता है ॥२७॥ सपिंडन बारहवें दिन, तीन पक्ष में, छः मास में, अथवा वर्ष के अन्त में तत्त्व देखने वाले मुनियों ने सपिंडी करने को कहा है ॥२८॥ हे गरुड़ ! मैंने तो धर्मशास्त्र के अनुसार चारों वर्ण का सपिंडन बारहवें दिन में कहा

नुसारतः ॥ चतुर्णामेव वर्णानां द्वादशाहे सपिण्डनम् ॥२६॥ अनित्यात्कलिधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहे प्रशस्यते ॥३०॥ व्रतबन्धोत्सवादीनि व्रतस्योद्यापनानि च ॥ विवाहादिर्भवेन्नैव मृते च गृहमेधिनी ॥३१॥ भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति हन्तकारो न गृह्यते ॥ नित्यं नैमित्तिकं लुप्येद्यावत्पिंडो न मेलितः ॥३२॥ कर्मलोपात्प्रत्यवायी भवेत्तस्मात्सपिंडनम् ॥ निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे समाचरेत् ॥३३॥ यत्फलं सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति द्वादशाहे सपिण्डनात् ३४॥ अतः स्नात्वा मृतस्थाने गोमयेनोपलेपिते ॥ शास्त्रोक्तेन विधानेन

है ॥२६॥ कलियुग में धर्म की अनित्यता से पुरुषों की आयु कम होने से बारहवें दिन सपिंडन करना उचित है ॥३०॥ वृद्ध के मरने पर यज्ञोपवीत, विवाह, उत्सव, यज्ञ और होली आदि के उत्सव को न करना चाहिये ।.३१॥ जब तक सपिंडन न हो जावे तब-तक संन्यासी को भिक्षा, बलि, वैश्य देव और नित्य पंच यज्ञ को न करना चाहिये ।३२॥ करने से नित्य नैमित्ति सब कर्म लुप्त हो जाते हैं इसलिये निराग्निक हो चाहे साग्निक बारहवें दिन सपिडन करना चाहिये ।!३३॥ जो तीर्थों के स्नान दान से और यज्ञों के करने से फल प्राप्त होता है वही फल सपिंडन करने से मिलता है ।।३४। इसलिये स्नान करके मृतक के स्थान को गोबर से लीपे

सपिण्डीं कारयेत्सुतः ॥३५॥ पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैर्विश्वेवांश्च पूजयेत् ॥ कुपित्रे विकिरं दत्वा पुनश्चापि उपस्पृशेत् ॥३६॥ दद्यात्पितामहादीनां त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम् ॥ वसुरुद्रार्करूपाणां चतुर्थं मृतकस्य च ॥३७॥ चन्दनैस्तुलसीपत्रैर्धूपैर्दीपैः सुभोजनैः ॥ मुखवासैः सुवस्त्रैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥३८॥ प्रेतपिण्डं त्रिधा कृत्वा सुवर्णस्य शलाकया ॥ पितामहादिपिण्डेषु मेलयेत्तं पृथक्पृथक् ॥३९॥ पितामह्या समं मातुः पितामहसमं पितुः ॥ सपिण्डीकरणं कुर्यादिति तार्क्ष्य मतं मम ॥४०॥ मृते पितरि यस्याथ विद्यते च पितामहः ॥ तेन देयास्त्रयः पिण्डाः प्रपितामहपूर्वकाः ॥४१॥ तेभ्यश्च पैतृकं

और शास्त्र की विधि से ल[illegible] पिता का सपिंडन करके पितृगणों में मिलावे ॥३५। पाद्य अर्घ्य आदि से विश्वे देवों का पूजन करे और कुत्सित पितरों के लिये विकिर पिंडदान करके आचमन करे ॥३६॥ वसु रुद्र आदित्य, स्वरूपी पितरों को यथा क्रम से तीन पिंडा पितरों को देवे और चौथा पिण्ड मृतक के निमित्त दान करे ॥३७॥ चन्दन, तुलसीपत्र, धूप, दीप उत्तम भोजन पदार्थ तांबूल उत्तम वस्त्र और दक्षिणा आदि से पूजन करे ॥३८॥ सोने की सलाका से प्रेत पिंड का तीन भाग करके पितामह आदि के तीनों पिंड मिलावे ॥३९॥ पितामही समान माता का और पितामह के समान पिता का सपिंडन करे ॥४०॥ पिता के मरने पर पितामह जीवित हो तो प्रपितामह से लेकर आगे के पितरों में पिंड देना चाहिये ॥४१॥ पिता के पिंड का तीन भाग करके क्रम से उन पितरों के

पिण्डं, मेलयेत्तं त्रिधाकृतम् ॥ मातर्यग्रे प्रशान्तायां विद्यते च पितामही ॥४२॥ तदा मातृकश्राद्धेऽपि कुर्यात्पैतृकवद्विधिम् ॥ यद्वा मयि महालक्ष्म्यां तयोः पिण्डं च मेलयेत् ॥४३॥ अपुत्रायाः स्त्रियाः कुर्यात्पतिः सापिण्डनादिकम् ॥ श्वश्र्वादिभिः सहैवास्या सापिण्डीकरणं भवेत् ॥४४॥ भर्त्रादिभिस्त्रिभिः कार्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ॥ नैतन्मम मतं तार्क्ष्य पत्या सापिण्ड्यमर्हति ॥ ४५ ॥ एकां चितां समारूढौ दम्पती यदि काश्यप ॥ तृणमन्तरतः कृत्वा श्वशुरादेस्तदाचरेत् ॥४६॥ एक एव सुतः कुर्या-

पिण्ड में मिला देवे माता के पहिले मर जाने पर पितामही विद्यमान हो तो । ४२॥ मातृक श्राद्ध अर्थात् पिता के सपिंडन समान माता का सपिंडन करे पितामही आदि को तीन पिंडदान विधिवत करके माता के पिण्ड का तीन भाग क्रम से उनमें मिलावे ॥४३॥ अथवा माता पितारूपी जो मैं और लक्ष्मी जी हैं सो मेरे में माता-पिता के पिण्ड को मिलावे ॥४४॥ बेटा हीन स्त्री का सपिंडन उसका पति करे और पास आदि के साथ ही यह सपिंडन होता है ॥४५॥ स्त्री का सपिंडन पति आदि तीन के साथ नहीं करना चाहिये क्योंकि वह सपिंडन के योग्य नहीं है जो स्त्री पति के साथ सती होती है उसके लिये श्वसुर आदि को उचित है कि मध्य में तृण रखकर सती का सपिण्डन करें ॥४६॥ पहिले एक ही बेटा पिता को पिण्डदान करे इसके बाद सती का पिंडदान करके स्नान

दादौ पिण्डादिकं पितुः ॥ तदूर्ध्वं च प्रकुर्वीत सत्याः स्नानं पुनश्चरेत् ॥४७॥ हुताशं या समारूढा दशाहाभ्यन्तरे सती ॥ तस्या भर्तुर्दिने कार्यं शय्यादानं सपिण्ड-नम् ॥४८॥ कृत्वा सपिण्डनं ताच्र्य प्रकुर्यात्पितृतर्पणम् ॥ उदाहरेत्स्वधाकारं वेद-मन्त्रैः समन्वितम् ॥४९॥ अतिथिं भोजयेत्पश्चाद्धन्तकारं च सर्वदा ॥ तेन तृप्यन्ति पितरो मुनयो देवदानवाः ॥५०॥ ग्रासमात्रा भवेद्भिक्षा चतुर्ग्रासं तु पुष्कलम् ॥ पुष्कलानि च चत्वारि हन्तकारो विधीयते ॥५१॥ सपिड्यां विप्रचरणौ पूजयेच्चन्द-नाक्षतैः । दानं तस्मै प्रदातव्यमक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥५२॥ वर्षवृत्तिं घृतं चान्नं सुवर्णं रजतं

करे ॥४७॥ जो सती पति के मरने पर दस दिन के भीतर अग्नि प्रवेश करे तो पति के साथ ही शय्यादान और सपिंडन करना चाहिये ॥४८॥ हे गरुड़ ! सपिंडन और पितरों का तर्पण करके वेद मन्त्रों के साथ स्वधा का उच्चारण करे ॥४९॥ इसके बाद अतिथि को भोजन देवे और नित्य बलि वैश्य देव करे जिसके करने से देवता पितर ऋषि मुनि सभी प्रसन्न होते हैं ॥५०॥ एक ग्रास मात्र की भिक्षा और चार ग्रास का पुष्कल का एक हन्तकार होता है ॥५१॥ सपिंडन में चन्दन अक्षत आदि से ब्राह्मण के चरण की पूजा करे और पितरों के अक्षय प्राप्ति के लिये उसको दान देना चाहिये ॥५२॥ वर्ष की जीविका घी, अन्न, सुवर्ण चाँदी, घोड़ा, हाथी,

सुगाम् ॥ अश्वं गजं रथं भूमिमाचार्यायैतद्प्रदापयेत् ॥५३॥ ततश्च पूजयेन्मंत्रैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ कुंकुमाक्षतनैवेद्यैर्ग्रहान्देवीं विनायकम् ॥५४॥ आचार्यस्तु ततः कुर्यादभिषेकं समन्त्रकम् । बद्ध्वा सूत्रं करे दद्यान्मंत्रपूतांस्तथाक्षतान् ॥५५॥ ततश्च भोजयेद्विप्रान्मिष्टान्नैर्विविधैः शुभैः ॥ दद्यात्सदक्षिणं तेभ्यः सजलान्नांक्तषड्घटान् ॥५६॥ वार्यायुधप्रतोदास्तु दंडस्तु द्विजभोजनात् ॥ प्रष्टव्याश्च ततो वर्णाः शुद्ध्येरन् ते ततः क्रमात् ॥५७॥ एवं सपिण्डनं कृत्वा क्रियावस्त्राणि संत्यजेत् ॥ शुक्लाम्बरधरो भूत्वा

रथ और पृथ्वी यह सब यथा शक्ति आचार्य के लिये देवे ॥५३॥ इसके बाद ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन करावे और मन्त्रों से कुंकुम अक्षत और नैवेद्य आदि से नवग्रहों का पूजन करे ॥५४॥ इसके उपरान्त आचार्य मन्त्रों से पवित्र अक्षत देवे ॥५५। और अनेक प्रकार के सुन्दर मिष्ठान्न से ब्राह्मण का भोजन करावे और उनको दक्षिणा के साथ जल और अन्न समेत छः घटदान करे ॥५६॥ ब्राह्मण भोजन के बाद चारों वर्णों को क्रम से जल, आयुध, प्रतोद और दण्ड का स्पर्श करे । ब्राह्मण जल, क्षत्रिय आयुध, वैश्य प्रतोद और शूद्र दंड को छूने से शुद्ध होता है ॥५७॥ इस प्रकार सपिंडन करके क्रिया के वस्त्रों को त्याग करे और श्वेत वस्त्रों का त्याग

शय्यादानं प्रदापयेत् ॥५८॥ शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवाः सवासवाः ॥ तस्मा-
च्छय्या प्रदातव्या मरणे जीवितेऽपि वा ॥५९॥ सारदारुमयीं रम्यां सुचित्रैश्चित्रितां
दृढाम् ॥ पट्टसूत्रैर्वितनितां हेमपत्रैरलंकृताम् ॥६०॥ हंसतूलीप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षो-
पधानकाम् ॥ प्रच्छादनपटीयुक्तां पुष्पगन्धैः सुवासिताम् ॥६१॥ दिव्यबन्धैः सुबद्धां
च सुविशालां सुखप्रदाम् ॥ शय्यामेवंविधां कृत्वा ह्यास्तृतायां न्यसेद्भुवि ॥६२॥
छत्रं दीपालयं रौप्यं चामरासनभाजनम् ॥ भृङ्गारकरकादर्शं पञ्चवर्णवितानकम् ॥६३॥
शयनस्य भवेत्किञ्चिद्यच्चान्यदुपकारकम् ॥ तत्सर्वं परितस्तस्याः स्वे स्वे स्थाने नियो-

करे और श्वेत वस्त्र धारण कर शय्यादान करे ॥५८॥ इन्द्रादि संपूर्ण देवता शय्या दान की बड़ाई मुक्त कंठ से करते हैं इसलिये जीवित अथवा मरने पर शय्यादान अवश्य करना चाहिये ॥५९॥ पुष्ट काष्ठ की बनी हुई मनोहर चित्रों से चित्रित रेशमी सूत से बुनी और सोने के पात्रों से शोभित ॥६०॥ हंस के समान उज्ज्वल रुई से आच्छादित हो सिर के नीचे की तकिया ऊपर ओढ़ने को सुन्दर रेशमी वस्त्र गंध आदि से सुगन्धित ॥६१॥ दिव्य बंधन से बँधी हो खूब लंबी चौड़ी सुख को देने वाली शय्या का बना कर शुद्ध भूमि में स्थापित करे ॥६२॥ छाता, दीवट, चमर, पंखा, आसन, बर्तन, झारी, गड़ुआ, दर्पण और पाँच रंग का शामियाना ॥६३॥

जयेत् ॥६४॥ तस्यां संस्थापयेद्धैमं हरिं लक्ष्मीसमन्वितम् ॥ सर्वाभरणसंयुक्तमायुधाम्बरसंयुतम् ॥६५॥ स्त्रीणां च शयने धृत्वा कज्जलालक्तकुंकुमम् ॥ वस्त्रं भूषादिकं यच्चसर्वमेव प्रदापयेत् ॥६६॥ ततो विप्रं सपत्नीकं गन्धपुष्पैरलंकृतम् ॥ कर्णांगुलीयाभरणैः कण्ठसूत्रैश्च काञ्चनैः ॥६७॥ उष्णीषमुत्तरीयं च चोलकं परिधा च ॥ स्थापयेत्सुखशय्यायां लक्ष्मीनारायणाग्रतः ॥६८॥ कुकुंमैः पुष्पमालाभिर्हरिं लक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहान्देवीं विनायकम् ॥६९॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा गृहीत्वा

और शय्या के उपकारक जो वस्तु हों उसको चारों ओर अपने-अपने स्थान पर स्थापित करे ॥६४। उस शय्या पर सोने की बनी हुई लक्ष्मीनारायण की मूर्ति को स्थापित करे और उसको संपूर्ण आभूषण तथा चक्र आदि अस्त्रों एवं सुन्दर वस्त्रों से युक्त करे ।६५॥ स्त्रियों की शय्या पर काजल महावर, रोली, वस्त्र और आभूषण आदि हैं उनको स्थापित करे ॥६६॥ फिर गंध, पुष्प आदि से भूषित ब्राह्मण के लिये कर्णफूल अँगूठी और सिकरी आदि से शोभित करे ॥६७॥ पगड़ी, दुपट्टा, कुर्ता आदि को पहिरा कर सुख शय्या पर लक्ष्मीनारायण के आगे बैठावे ॥६८॥ चन्दन कुंकुम और माला आदि से लक्ष्मीनारायण, लोकपाल, ग्रहदेवी और विनायक की पूजा करे ॥६९॥ उत्तराभिमुख हो पुष्पाञ्जलि लेकर ब्राह्मण के आगे खड़ा होकर इस मन्त्र का उच्चारण करे ॥७०॥ हे कृष्ण ! जैसे

कुसुमाञ्जलिम् ॥ उच्चारयेदिमं मन्त्रं विप्रस्य पुरतः स्थितः ॥७०॥ यथा कृष्ण त्वदीयास्ति शय्या क्षीरोदसागरे ॥ तथा भूयादशून्येयं मम जन्मनि जन्मनि ॥७१॥ एवं पुष्पाञ्जलिं विप्रे प्रतिमायां हरेः क्षिपेत् ॥ ततः सोपस्करं शय्यादानं संकल्पपूर्वकम् ॥७२॥ दद्याद् व्रतोपदेष्ट्रे च गुरवे ब्रह्मवादिने ॥ गृहाण ब्राह्मणैनां त्वं को ददातीति कीर्तयन् ॥७३॥ आन्दोलयेत् द्विजं लक्ष्मीं हरिं च शयने स्थितम् ॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥७४॥ सर्वोपस्करणैर्युक्तं प्रदद्यादतिसुन्दरम् ॥ शय्यायां सुखसुप्त्यर्थं गृहं च विभवे तथा ॥७५॥ जीवमानः स्वहस्तेन यदि शय्यां ददाति

क्षीर सागर में तुम्हारी शय्या है वैसे ही जन्म-जन्म में-यह शय्या मुझको प्राप्त हो ॥७१॥ इस प्रकार पुष्पांजलि ब्राह्मण और विष्णु के लिये देवे पश्चात् सामग्री सहित शय्या पर सुख से शयन करने के लिये संकल्प पूर्वक अति सुन्दर दान करें ॥७२॥ व्रत के उपदेश करने वाले ब्रह्मवादी गुरु से ऐसा कहे--इसको ग्रहण करो-- किसने दिया है यह कह कर दान करे ॥७३॥ शय्या पर बैठे हुए ब्राह्मण और लक्ष्मीनारायण का पंखा करे प्रदक्षिणा और नमस्कार करके विसर्जन करे ॥७४॥ संपूर्ण सामग्री से युक्त अति सुन्दर शय्या में सुख से शयन करने के लिये यदि विभव पूर्ण हो तो नवीन घर बनाकर दान करे ॥७५॥ जीवित पुरुष अपने हाथ से जो शय्या दान करता

यः ॥ स जीवंश्च वृषोत्सर्गं कुर्यात् प्राप्तेऽपि पर्वणि ॥७६॥ इयमेकस्य दातव्या बहूनां न कदाचन ॥ सा विभक्ता च विक्रीता दातारं पातयत्यधः ॥७७॥ पात्रे प्रदाय शयनं वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥ पिता च दाता तनयः परत्रेह च मोदते ॥७८॥ पुरन्दरगृहे दिव्ये सूर्यपुत्रालयेऽपि च ॥ उपतिष्ठेन्न सन्देहः शय्यादानप्रभावतः ॥७९॥ विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ आभूतसम्प्लवं यावत्तिष्ठत्यातङ्कवर्जितः ॥८०॥ सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यंसर्वपर्वदिनेषु च । तेभ्यश्चाप्यधिकं पुण्यं शय्यादानोद्भवं भवेत् ॥८१॥ एवं दत्वा सुतः शय्यां पददानं प्रदापयेत् ॥ तच्छृणुष्व मया ख्यातं यथावत्कथयामि

है तो उसे पर्व में वृषोत्सर्ग करना चाहिये ॥७६॥ यह शय्या एक को देना चाहिये विभाग करके कभी न देवे जो विभाग करके देता है वह नरक में बास करता है ॥७७॥ पात्र में शय्या दान करने से वांछित फल पाता है पिता और दाता बेटा परलोक में और इस इस लोक में प्रसन्न होते हैं ॥७८॥ शय्या दान के प्रभाव से सुन्दर दिव्य इन्द्र के भवन में और धर्मराज के भवन में प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं है ॥७९॥ सुन्दर विमान में चढ़कर अप्सराओं से युक्त होकर महाप्रलय तक स्वर्ग में वास करता है ॥८०॥ तीर्थों के स्नान और पर्वकाल में दान करने का जो पुण्य होता है उससे अधिक पुण्य शय्या दान प्रभाव से होता ॥८१॥ लड़का पिता के

ते ॥८२॥ छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः ॥ आसनं पञ्चपात्राणि पदं पञ्च-
विधं स्मृतम् ॥८३॥ दण्डेन ताम्रपात्रेण ह्यामान्नैर्भोजनैरपि ॥ अथ यज्ञोपवीतैश्च पदं
सपूर्णतां व्रजेत् ॥८४॥ त्रयोदशपदानीत्थं यथा शक्त्या विधाय च ॥ त्रयोदशेभ्यो
विप्रेभ्यः प्रदद्याद् द्वादशेऽहनि ॥८५॥ अनेन पददानेन धार्मिकाः यान्ति सद्गतिम् ॥
यममार्गगतानां च पददानं सुखप्रदम् ॥८६॥ आतपस्तत्र वै रौद्रो दह्यते येन मानवः ।
छत्रदानेन सुच्छाया जायते तस्य मूर्द्धनि ॥८७॥ अतिसंकटसंकीर्णे यमलोकस्य

निमित्त इस प्रकार शय्या दान करके पद दान करे यह पद दान की विधि मैं तुमसे कहता हूँ ॥८२॥ छाता, जूता, वस्त्र, अँगूठी, कमंडलु, आसन, पंचपात्र, यह पाँच प्रकार का पद होता है ॥८३॥ दंड, ताम्रपात्र, आमान्न, ब्राह्मण भोजन और यज्ञोपवीत से पद पूर्ण होता है ॥८४॥ इस प्रकार सामर्थ्य युक्त बारहवें दिन ब्राह्मणों के निमित्त तेरह पद दान करे ॥८५॥ पद दान करने से सद्गति मिलती है और यममार्ग में चलने का दुःख नहीं होता है ॥८६॥ यम मार्ग में अति प्रकर्ष घाम होता है जो घाम लगने से जीव जलता है छाते के दान से वहाँ छाया मिलती है ।८७॥ अत्यन्त संकीर्ण यममार्ग में जूता दान करने वाले घोड़े पर चढ़ कर जाते हैं

वर्त्मनि ॥ अश्वारूढाश्च ते यान्ति यच्छन्ति यद्युपानहौ ॥८८॥ शीतोष्णवातदुःखानि तत्र घोराणि खेचर ॥ वस्त्रदानप्रभावेण सुखं निस्तरते पथि ॥८९॥ यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गला न पीडयन्ति तं मार्गे मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥९०॥ बहुधर्मसमाकीर्णे निर्वाते तोयवर्जिते ॥ कमंडलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् ॥९१॥ मृतोद्देशेन या दद्यादुदपात्रं च ताम्रजम् ॥ प्रपादानसहस्रस्य यत्फलं सोऽश्नुते ध्रुवम् ॥९२॥ आसनं भोजनं चैव दत्तं सम्यग्द्विजातये ॥ सुखेन भुंक्ते पाथेयं पथि गच्छञ्छनैः शनैः ॥९३॥ एवं सपिण्डनदिने दत्त्वा दानं विधानतः ॥ बहून्संभोजयेद्विप्रान्यः

॥८८॥ शीत से युक्त कहीं घाम से युक्त प्रचण्ड वायु चलता है परन्तु वस्त्र दान करने वाले को यह दुःख नहीं होता है ॥८९॥ अत्यन्त क्रोधी भयानक यम के दूत काले और पिङ्गल वर्ण के हैं अँगूठी दान करने से वे दूत प्राणी को पीड़ा नहीं देते हैं ॥९०॥ घाम से पीड़ित होकर निर्जन यम के मार्ग में पानी नहीं मिलता है कमण्डलु दान करने से मनुष्य को वहाँ जल का दुःख नहीं होता है ॥९१॥ मरे हुए प्राणी के लिये जो तांबे के जलपात्र को दान करता है वह हजारों पौसला लगाने के समान फल को प्राप्त होता है ॥९२॥ ब्राह्मण को आसन दान करने से मार्ग में धीरे-धीरे मनुष्य जाता है और दिया हुआ आमान्न राह खरच में सुख से खाता है ॥९३॥

श्वपाकादिकानपि ॥९४॥ ततः सपिंडनादूर्ध्वमर्वाक्संवत्सरादपि ॥ प्रतिमासं प्रदातव्यो जलकुम्भः सपिंडकः ॥९५॥ कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्यादृते खग ॥ प्रेतार्थं तु पुनः कुर्यादक्षय्यतृप्तिहेतवे ॥९६॥ अतो विशेषं वक्ष्यामि मासिकस्याब्दिकस्य च ॥ पाक्षिकस्य विशेषं च विशेषतिथिषु मृते ॥९७॥ पौर्णमास्यां मृतो यस्तु चतुर्थी तस्य ऊनिका ॥ चतुर्थ्यां तु मृतो यस्तु नवमी तस्य ऊनिका ॥९८॥ नवम्यां तु मृतो यस्तु रिक्ता तस्य चतुर्दशी ॥ इत्येवं पाक्षिकं श्राद्धं कुर्यात्त्रिंशत्तमे दिने ॥९९॥ एकएव यदा मासः

इस प्रकार सपिंडन के दिन विधि पूर्वक दान देकर ब्राह्मणों को भोजन करावे और नीच चांडाल आदि को भी अन्न देवे ॥९४॥ सपिंडन के उपरान्त वर्ष के भीतर पिंड सहित जल का कुंभदान प्रतिमास में करना चाहिये ॥९५॥ हे गरुड़! प्रेत कार्य को विना किये और कार्य नहीं करना चाहिये और प्रेत की अक्षय्य तृप्ति के लिये बार बार करे ॥९६॥ इसलिये मासिक और वार्षिक श्राद्ध को विशेष कहता हूँ और पाक्षिक को तथा मरण तिथियों के श्राद्ध को विशेष कहता हूँ ॥९७॥ जो मनुष्य पूर्णमासी को मरता है उसका पाक्षिक श्राद्धदिन चौथ को होता है उसी दिन पाक्षिक श्राद्ध करे ॥९८॥ और नवमी को जो मरता है उसके लिये चतुर्दशी पाक्षिक श्राद्ध तिथि है इस प्रकार तीसवें दिन पाक्षिक श्राद्ध करना चाहिये ॥९९॥ जब एक ही महीने में दो संक्रान्ति हो जावे तब दो

संक्रान्तिद्वयसंयुतः ॥ मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासे हि शस्यते ॥१००॥ एकस्मिन्मासि मासौ द्वौ यदि स्यातां तयोर्द्वयोः ॥ तावेव पक्षौ ता एव तिथयस्त्रिंशदेव हि ॥१०१॥ तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयाऽर्धे तदुत्तरः ॥ मासाविति बुधैश्चिन्त्यो मलमासस्य मध्यगौ ॥१०२॥ असंक्रान्ते च कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं खग ॥ तथैव मासिकं श्राद्धं वार्षिकं प्रथमं तथा ॥१०३॥ संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः ॥ तदा त्रयोदशे मासि क्रिया प्रेतस्य वार्षिकी ॥१०४॥ पिण्डवर्ज्यमसंक्रान्ते संक्रान्ते पिण्डसंयुतम् ॥ प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च ॥१०५॥ एवं संवत्सरे पूर्णे वार्षिकं श्राद्धमा-

मास का श्राद्ध मलमास में किया जाता है ॥१००॥ एक मास में जो दो मास हो जावे तो दोनों महीनों में वे ही तीस तिथि मानने योग्य हैं ॥१०१॥ जो प्रथम तिथ्यर्ध हो तो पूर्व मास जाने और दूसरा तिथ्यर्ध हो तो उसे आगे का महीना जानना चाहिये इस प्रकार मलमास के मध्य का मास पंडितों को विचारना चाहिये ॥१०२॥ हे गरुड़ ! संक्रान्ति रहित मास में सपिंडन करना चाहिये वैसे ही मासिक श्राद्ध और वार्षिक श्राद्ध प्रथम करना चाहिये ॥१०३॥ वर्ष के मध्य में जो अधिमास हो जावे तो प्रेत की वार्षिक क्रिया तेरहवें महीने में करना चाहिये ॥१०४॥ संक्रान्ति रहित महीने में पिंड नहीं करना चाहिये और संक्रान्ति युक्त मास में पिंडदान करे इस प्रकार दोनों महीनों में प्रति वर्ष श्राद्ध करना चाहिये ॥१०५॥ इस प्रकार वर्ष पूरा होने पर सांवत्सरिक श्राद्ध करे इसमें विशेष

चरेत् ॥ तस्मिन्नपि विशेषेण भोजनीया द्विजातयः ॥१०६॥ कुर्यात्संवत्सरादूर्ध्वं श्राद्धे पिण्डत्रयं सदा ॥ एकोद्दिष्टं न कर्त्तव्यं तेन स्यात्पितृघातकः ॥१०७॥ तीर्थ-श्राद्धं गयाश्राद्धं गजच्छायं च पैतृकम् ॥ अब्दमध्ये न कुर्वीत ग्रहणेन युगादिषु ॥१०८॥ यदा पुत्रेण वै कार्यं गयाश्राद्धं खगेश्वर ॥ तदा संवत्सरादूर्ध्वं कर्त्तव्यं पितृ-भक्तितः ॥१०९॥ गयाश्राद्धात्प्रमुच्यन्ते पितरो भवसागरात् ॥ गदाधरानुग्रहेण ते यान्ति परमां गतिम् ॥११०॥ तुलसीमञ्जरीभिश्च पूजयेद्विष्णुपादुकाम् ॥ तस्याल-वादितीर्थेषु पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥१११॥ उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥

कर ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये ॥१०६॥ वर्ष के उपरान्त श्राद्ध में तीन पिंड दान करे। एकोद्दिष्ट न करे एकोद्दिष्ट करने से पितृघातक होता है ॥१०७॥ तीर्थ श्राद्ध, गयाश्राद्ध, गजच्छाया और पितृ संबंधी कार्य वर्ष के मध्य में ग्रहण के समय में और युगादि तिथियों में नहीं करना चाहिये ॥१०८॥ हे गरुड़! जब पुत्र को गयाश्राद्ध करने की इच्छा हो तो पिता को भक्ति से संवत्सर के उपरान्त करे ॥१०९॥ गयाश्राद्ध करने से पितरों की मुक्ति होती है गदाधर भगवान की कृपा से मनुष्य सद्गति को पहुँचता है ॥११०॥ तुलसी की मंजरी से विष्णु की पादुका का पूजन करे और उसके लिये आलवादि तीर्थों में यथा क्रम से पिण्ड दान करे ॥१११॥ जो मनुष्य

शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥११२॥ गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति कुल-
नन्दनः । सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम् ॥११३॥ श्रूयते चापि पितृभिर्गी-
तागाथा खगेश्वर ॥ इक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने सुरैः ॥११४॥ अपि नस्ते भवि-
ष्यन्ति कुले सन्मार्गशीलिनः ॥ गयामुपेत्य ये पिण्डान्दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥११५॥
एवमामुष्मिकीं तार्क्ष्य यः करोति क्रियां सुतः ॥ स स्यात्सुखीभवेन्मुक्तः कौशिक-
स्यात्मजा यथा ॥११६॥ भरद्वाजात्मजाः सप्त भुक्त्वा जन्मपरंपराम् ॥ कृत्वापि गोवधं
तार्क्ष्य मुक्ताः पितृप्रसादतः ॥११७॥ सप्तव्याधा दशार्णेषु मृगाः कालिंजरे गिरौ ॥

गयातीर्थ में शमी के पत्ते पर पिंडदान करता है वह अपने सातगोत्र में एक सौ एक कुल को तार देता है ॥११२॥ कुल को आनन्द देनेवाले जो पुरुष गयातीर्थ में पहुँचते हैं और पितरों का सन्तोष देनेवाले पिंड का दान करते हैं उनका जन्म लेना सुफल है ॥११३॥ हिमालय के समीप कलाप नाम ग्राम वर्तमान है उसके उपवन में मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के पितरों की गाई गाथा सुनी जाती है ॥११४॥ हमारे कुल में सन्मार्ग में चलने वाले धर्मात्मा पुरुष उत्पन्न होंगे जो गयातीर्थ में जाकर हमको आदर सहित पिंडदान करेंगे ॥११५॥ हे गरुड़ । जो इस प्रकार अपने पिता के परलोक की क्रिया करता है वह विश्वामित्र के समान सुखी और मुक्त हो जाता है ॥११६॥ भारद्वाज के सात पुत्र परंपरा से अनेक भोग भोगकर हे गरुड़ ! गोवध करके भी पितरों के प्रताप से मुक्त हो गये ॥११७॥ सात

चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥११८॥ तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणाः वेद-
पारगाः ॥ पितृभक्त्या च ते सर्वे गता मुक्तिं द्विजात्मजाः ॥११९॥ तस्मात्सर्वप्रय-
त्नेन पितृभक्तो भवेन्नरः ॥ इह लोके परे वापि पितृभक्त्या सुखी भवेत् ॥१२०॥
एतत्तार्क्ष्य मयाऽऽख्यातं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥ पुत्रवाञ्छाप्रदं पुण्यं पिमुमुक्तिप्रदायकम्
॥ १२१ ॥ निर्धनोऽपि नरः कश्चिद्यः शृणोति कथामिमाम् ॥ सोऽपि पापवि-
निर्मुक्तो दानस्य फलमाप्नुयात् ॥१२२॥ विधिना कुरुते यस्तु श्राद्धं दानं मयोदि-

व्याधा दशार्ण देश में और मृग कालिजर पर्वत में चक्रावाक् शर द्वीप में और हंस मानसरोवर में ॥११८॥ ये ही कुरुक्षेत्र में ब्राह्मण के घर जन्म लेकर वेद को जानने वाले हुए और पिता की भक्ति से युक्त हो गये ॥११९॥ इसलिये अनेक प्रयत्न से पितृ भक्त होवे । पिता की भक्ति करने से परलोक में सुखी होता है ॥१२०॥ हे गरुड़ ! अब और्ध्व देह की क्रिया मैंने तुमसे कही यह पुत्र की इच्छा को देनेवाले पवित्र और मुक्ति को देनेवाला है ॥१२१॥ दरिद्र मनुष्य भी जो इस कथा को सुनता है वह सब पापों से छूट कर अनेकों दान के फल को प्राप्त होता है ॥१२२॥ जो कोई मेरा कहा हुआ दान श्राद्ध गरुड़ पुराण की विधि से करेगा उसके फल को सुनो

तम् ॥ शृणुयाद् गरुडं चापि शृणु तस्यापि यत्फलम् ॥१२३॥ पिता ददाति सत्पुत्रा-
न्गोधनानि पितामहः ॥ धनदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः ॥१२४॥ दद्या-
द्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तु प्रपितामहः ॥ तृप्ताः श्राद्धेन ते सर्वे दत्त्वा पुत्रस्य वाञ्छि-
तम् ॥१२५॥ गच्छन्ति धर्ममार्गैश्च धर्मराजस्य मन्दिरम् ॥ तत्र धर्मसभायां ते
तिष्ठन्ति परमादरात ॥१२६॥ सूत उवाच ॥ एवं श्रीविष्णुना प्रोक्तमौर्ध्वदानसमु-
द्भवम् ॥ श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुडो हर्षमागतः ॥१२७॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे सपिंडनादिसर्वकर्मनिरूपणं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

॥१२३॥ पिता गौं को और पितामह धन को देनेवाले और प्रपितामह भय से रक्षा करने वाले होते हैं ॥१२४॥ वृद्ध प्रपितामह बहुत से अन्न को देनेवाले होते हैं लड़के के श्राद्ध से तृप्त हो सब पितर शुभ फल को देते हैं ॥१२५॥ और धर्मराज के मार्ग से धर्मराज के स्थान को जाते हैं और धर्म सभा में आदर सहित वास करते हैं ॥१२६॥ सूतजी ऋषियों से बोले—इस प्रकार विष्णु भगवान से कहा हुआ और्ध्वदैहिक दान के माहात्म्य को सुनकर गरुड़जी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥१२७॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

गरुड उवाच—यमलोकः कियन्मात्रः कीदृशः केन निर्मितः सभा च कीदृशी तस्यां धर्म आस्ते च कैः सह ॥१॥ ये धर्ममार्गैर्गच्छन्ति धार्मिकाः धर्ममन्दिरम् ॥ तान्धर्मानपि मार्गांश्च ममाख्याहि दयानिधे ॥२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ शृणु तान्यं प्रवक्ष्यामि यद् गम्यं नारदादिभिः तद्धर्मनगरं दिव्यं महापुण्यैरवाप्यते ॥३॥ याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य यत् ॥ सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं तत्सुरासुरैः ॥४॥ चतुरस्रं चतुर्द्वारमुच्चप्राकारवेष्टितम् ॥ योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तदुच्यते ॥५॥

गरुड़ बोले—हे भगवान् ! यमलोक कितने विस्तार का है और उसको किसने बनाया है वहां धर्म सभा कैसी है और धर्म किसके साथ रहता है ॥१॥ जो पुण्यवान् धर्म मार्ग से धर्म के स्थान को जाता है उस धर्म को और उनके मार्ग को कहिये ॥२॥ श्री भगवान बोले—हे गरुड़ ! जो नारद आदि देवताओं से गम्य अर्थात् जानने योग्य है वह सुन्दर धर्मराज का नगर बड़े पुण्य से प्राप्त होता है ॥३॥ याम्य और नैर्ऋत्य के मध्य में यमराज का नगर है उनकी पुरी वज्रमयी (हीरे की) और अत्यन्त मनोहर तथा दिव्य है उसे देवता और दैत्य कोई न जीत सकता है न तोड़ सकता है ॥४॥ वह पुरी गोली है उसके चार दरवाजे हैं ऊँची चहारदीवारी से घिरा हुआ चार हजार कोस के विस्तार में है ॥५॥ उस नगर में सौ कोस का परम सुन्दर चित्रगुप्त का मन्दिर है ॥६॥ जो दस योजन ऊँचा

तस्मिन्पुरेऽस्ति सुभगं चित्रगुप्तस्य मन्दिरम् ॥ पञ्चविंशतिसंख्याकैर्योजनैर्विस्तृतायतम् ॥६॥ दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम् ॥ प्रतोलीशतसंचारं पताकाध्वजभूषितम् ॥७॥ विमानगणसंकीर्णं गीतवादित्रनादितम् ॥ चित्रितं चित्रकुशलैर्निर्मितं देवशिल्पिभिः ॥८॥ उद्यानोपवनैः रम्यं नानाविहगकूजितम् ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च समन्तात्परिवारितम् ॥९॥ तत्सभायां चित्रगुप्तः स्वासने परमाद्भुते ॥ संस्थितो गणयेदायुर्मानुषाणां यथातथम् ॥१०॥ न मुह्यति कथंचित्स सुकृते दुष्कृतेऽपि वा ॥ यद्येनोपार्जितं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥११॥ तत्सर्वं भुञ्जते तत्र चित्रगुप्तस्य शास-

और बड़ा दिव्य है सुन्दर लोहे की चहार दीवारी से घिरा है सैकड़ों गलियों से युक्त तथा ध्वजा पताकाओं से शोभित है ॥७॥ वह पुरी विमानों से परिपूर्ण गाने बजाने की ध्वनि से शब्दायमान और भाँति-भाँति के चित्रों से चित्रित है तथा देवताओं की मूर्तियाँ जिसमें विराजमान हैं ॥८॥ सुन्दर बाग फल पुष्प से शोभित हैं जिसमें अनेक रंग की पक्षियों का कलोल होता है गंधर्व और अप्सरायें विहार करती हैं ॥९॥ उस धर्म सभा में ऊँचे आसन पर बैठे चित्र गुप्त मनुष्यों के आयु का यथार्थ गणना करते हैं ॥१०॥ वह चित्रगुप्त पुण्य तथा पाप में कभी नहीं भूलते शुभ अथवा अशुभ कर्म को जिसने उपार्जन (इकट्ठा) किया है ॥११॥ वे चित्रगुप्त की आज्ञा से

नात् चित्रगुप्तालयात्प्राच्यं ज्वरस्यास्ति महागृहम् ॥१२॥ दक्षिणस्यां च शूलस्य लूताविस्फोटयोस्तथा ॥ पश्चिमे कालपाशस्य चाजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥१३॥ उदीच्यां राजरोगोऽस्ति पाण्डुरोगस्तथैव च ॥ ऐशान्यां तु शिरोर्तिः स्यादाग्नेय्यामस्ति मूर्च्छना ॥१४॥ अतिसारो नैर्ऋते तु वायव्यां शीतदाहकौ ॥ एवमादिभिरन्यैश्च व्याधिभिः परिवारितः ॥१५॥ लिखते चित्रगुप्तस्तु मानुषाणां शुभाशुभम् ॥ चित्रगुप्तालयादग्रे योजनानां च विंशतिः ॥१६॥ पुरमध्ये महादिव्यं धर्मराजस्य मन्दिरम् ॥ अस्ति

वहाँ सब भोगते हैं चित्रगुप्त की पुरी से पूर्व दिशा में बड़ा भारी ज्वर का गृह है ॥१२॥ दक्षिण दिशा में शूल लूता और विस्फोटक का गृह है पश्चिम में कालपाश के अजीर्ण तथा अरुचि का घर है ॥१३॥ उत्तर दिशा में राजरोग और पाण्डुरोग का स्थान है ईशान्य में शिर की पीड़ा और अग्निकोण में मूर्छा का घर है ॥१४॥ नैऋत्य कोण में अतिसार वायव्य में शीत और दाह का घर है इन रोग के स्थानों से चित्रगुप्त की पुरी वेष्टित है ॥१५॥ चित्रगुप्त मनुष्यों के किये शुभ-अशुभ कर्म को लिखते हैं चित्रगुप्त के भवन से आगे बीस योजन पर ॥१६॥ पुर के मध्य में रत्नों का बना हुआ धर्मराज का दिव्य मन्दिर है जिसका तेज बिजली और सूर्य के

रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥१७॥ द्विशतं योजनानां च विस्तारायामतः स्फुटम् ॥ पञ्चाशच्च प्रमाणेन योजनानां समुच्छ्रितम् ॥१८॥ धृतं स्तम्भसहस्रैश्च वैदूर्यमणिमंडितम् ॥ काञ्चनालंकृतं नाना हर्म्यप्रासादसंकुलम् ॥१९॥ शारदाभ्रनिभं रुक्मकलशैः सुमनोहरम् ॥ चित्रस्फटिकसोपानं वज्रकुट्टिमशोभितम् ॥२०॥ मुक्ताजालगवाक्षं च पताकाध्वजभूषितम् ॥ घंटानकनिनादाढ्यं हेमतोरणमण्डितम् ॥२१॥ नानाश्चर्यमयं स्वर्णकपाटशतसंकुलम् ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निष्कण्टैः सुविराजितम् ॥२२॥ एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा ॥ आत्मयोगप्रभावेश्च निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२३॥

समान चमकता है ॥१७॥ दो सौ योजन लंबा, चौड़ा और पचास योजन ऊँचा है ॥१८॥ वैदूर्य मणि के हजारों खंभे लगे हैं सुवर्ण से विभूषित और अनेक तरह की छत और महलों से विस्तीर्ण है शरद् काल के मेघ के समान उज्ज्वल और सोने की कलशियों से मनोहर स्फटिक मणियों की सीढ़ियाँ और हीरे की कुटियों से शोभायमान है ॥२०॥ मोतियों की झालर झरोखों में लटक रही हैं सोने का तोरण लगा हुआ है घंटा और नगारों के शब्द से तथा ध्वजा और पताका से सुशोभित ॥२१॥ आश्चर्य देनेवाले सैकड़ों किवाड़ों से अलंकृत और नाना प्रकार के वृक्ष गुल्म और लताओं से विराजमान है ॥२२॥ इस पुरी को भगवान विश्वकर्मा ने अपने योग बल से बनाया है ॥२३॥ इस पुरी में सौ योजन की चौड़ी दिव्य सभा है उसका तेज सूर्य के समान है और सब जगह प्रकाशमान है अर्थात्

तस्मिन्नस्ति सभा दिव्या शतयोजनमायता ॥ अर्कप्रकाशा भ्राजिष्णुः सर्वतः काम-
रूपिणी ॥२४॥ नाति शीता न चात्युष्णा मनसोऽत्यन्तहर्षिणी ॥ न शोको न जरा
तस्यां क्षुत्पिपासे न चाप्रियम् ॥२५॥ सर्वे कामाः स्थिता यस्यां ये दिव्या ये च
मानुषाः । रसवच्च प्रभूतं च भक्ष्यं भोज्यं च सर्वशः ॥२६॥ रसवन्ति च तोयानि शीता-
न्युष्णानि चैव हि ॥ पुण्याः शब्दादयस्तस्यां नित्यकामफलद्रुमाः ॥२७॥ असंबाधा
च सा तार्क्ष्य रम्या कामागमा सभा ॥ दीर्घकालं तपस्तप्त्वा निर्मिता विश्वकर्मणा
॥२८॥ तामुग्रतपसो यान्ति सुव्रताः सत्यवादिनः ॥ शान्ताः संन्यासिनः सिद्धाः पूताः

न्याय में स्वतन्त्र है ॥२४॥ जहाँ शीत गरम की समानता है मनको अत्यन्त आनन्द देनेवाली है उस सभा में शोक बुढ़ापा क्षुधा तृषा आदि की पीड़ा नहीं होती है ॥२५॥ उसमें दिव्य मनुष्य सब काम में स्थित रहते हैं और अनेक प्रकार का स्वादिष्ट भोजन सर्वत्र विद्यमान हैं ॥२६॥ बहुत मधुर स्वादिष्ट शीतल और उष्ण दोनों प्रकार का शुद्ध जल शब्द आदि विषय तथा संपूर्ण कामनाओं को देनेवाले वृक्ष उस सभा में वर्तमान हैं ॥२७॥ हे गरुड़! वह सभा संपूर्ण कामनाओं को देनेवाली अत्यन्त मनोहर जिसे विश्वकर्मा ने चिरकाल तक तपस्या करके बनाया है ॥२८॥ उग्र तपस्या करने वाले सुन्दर व्रत करने वाले सत्य बोलने वाले शान्त स्वभाव संन्यासी

पूतेन कर्मणा ॥२९॥ सर्वे भास्वरदेहास्तेऽलंकृता विरजोऽम्बराः ॥ स्वकृतैः कर्मभिः पुण्यैस्तत्र तिष्ठन्ति भूषिताः ॥३०॥ तस्यां स धर्मो भगवानासने ऽनुपमे शुभे ॥ दश-योजनविस्तीर्णे सर्वरत्नैः सुमण्डिते ॥३१॥ उपविष्टः सतां श्रेष्ठश्छत्रशोभितमस्तकः ॥ कुण्डलालंकृतः श्रीमान्महामुकुटमण्डितः ॥३२॥ सर्वालङ्कारसंयुक्तो नीलमेघसमप्रभः ॥ बालव्यजनहस्ताभिरप्सरोभिश्च वीजितः ॥३३॥ गन्धर्वाणां समूहाश्च संघशश्चाप्सरो-गणाः ॥ गीतवादित्रनृत्याद्यैः परितः सेवयन्ति तम् ॥३४॥ मृत्युना पाशहस्तेन कालेन

सिद्ध और शुद्ध कर्म करने वाले उस सभा में जाते हैं ॥२९॥ तेजोमय जिनका शरीर है जो अलंकारों से अलंकृत और निर्मल वस्त्र को धारण किये हैं ऐसे पुरुष अपने पुण्य कर्म से उस सभा में निवास करते हैं ॥३०॥ उस सभा में उपमा रहित भगवान धर्मराज दस योजन के विस्तार में रत्न जटित आसन पर ॥३१॥ बैठे हुए सज्जनों में श्रेष्ठ छत्र, चमर, कुण्डल और मुकुट से भूषित है अंग जिसका ॥३२॥ नील मेघ के समान कान्ति है संपूर्ण अलंकारों से युक्त हैं अप्सरायें हाथों में चमर लेकर डुला रही हैं ॥३३॥ गंधर्व अप्सरा जिसके गुणों का गान करके अनेक प्रकार से उनकी सेवा करती हैं ॥३४॥ हाथ में पाश लिये मृत्यु बलवान काल और चित्र स्वरूप

च बलीयसा ॥ चित्रगुप्तेन चित्रेण कृतान्तेन निषेवितः ॥३५॥ पाशदण्डधरैरुग्रैर्निदेश-वशवर्तिभिः ॥ आत्मतुल्यबलैर्नानासुभटैः परिवारितः ॥३६॥ अग्निष्वात्ताश्च पितरः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये ॥ स्वधावन्तो बर्हिषदो मूर्ताऽमूर्ताश्च ये खग ॥३७॥ अर्यमाद्याः पितृगणाः मूर्तिमन्तस्तथापरे ॥ सर्वे ते मुनिभिः सार्धं धर्मराजमुपासते ॥३८॥ अत्रि-र्वसिष्ठः पुलहो दक्षः क्रतुरथांगिराः ॥ जामदग्न्यो भृगुश्चैव पुलस्त्यागस्त्यनारदाः ॥३९॥ एते चान्ये च बहवः पितृ राजसभासदः ॥ न शक्याः परिसंख्यातुं नामभिः कर्मभि-स्तथा ॥४०॥ व्याख्यार्भिधर्मशास्त्राणां निर्णेतारो यथातथम् ॥ सेवन्ते धर्मराजं ते

वाले चित्रगुप्त तथा यमराज जिसकी आज्ञा का पालन करते हैं ॥३५॥ पाश, दण्ड को धारण करने वाले उग्र स्वरूप वाले और अपने समान बल वाले बलवानों से वेष्टित हैं अर्थात् वे ही उनके दूत हैं ॥३६॥ अग्निष्वाता, सोमपा, उष्मपा, स्वधावन्त, बर्हिषद् तथा मूर्तिमान और अर्यमा आदि जो पितर हैं वह सब धर्मराज की उपासना करते हैं ॥३७॥३८॥ अत्रि, वशिष्ठ, पुलह, दक्ष, क्रतु, अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, अगस्त्य और नारद ॥३९॥ ये सब पितृगणों के सभासद हैं उनके नाम और कर्म की संख्या नहीं हो सकती है ॥४०॥

शासनात्परमेष्ठिनः ॥४१॥ राजानः सूर्यवंशीयाः सोमवंश्यास्तथापरे ॥ सभायां धर्म-
राजं ते धर्मज्ञाः पर्युपासते ॥४२॥ मनुनर्दिलीपो मान्धाता सगरश्च भगीरथः ॥ अम्ब-
रीषोऽनरण्यश्च मुचकुन्दो निमिः पृथुः ॥४३॥ ययातिर्नहुषः पूरुर्दुष्यन्तश्च शिबि-
र्नलः ॥ भरतः शंतनुः पांडुः सहस्रार्जुन एव च ॥४४॥ एते राजर्षयः पुण्याः कीर्तिम-
न्तो बहुश्रुताः ॥ इष्ट्वाश्वमेधैर्बहुभिर्जातधर्मसभासदः ॥४५॥ सभायां धर्मराजस्य धर्म
एव प्रवर्तते ॥ न तत्र पक्षपातोऽस्ति नानृतं न च मत्सरः ॥४६॥ सभ्याः सर्वे शास्त्र-

धर्मशास्त्रों का व्याख्यान करने वाले अर्थात् व्याख्यान के द्वारा यथार्थ निर्णय करने वाले ये सब ब्रह्माजी की आज्ञा से धर्मराज की सेवा करते हैं ॥४१॥ इसके अतिरिक्त सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय राजागण धर्म को जानने वाले धर्मराज की उपासना करते हैं जिनके नाम ये हैं ॥४२॥ मनु, दिलीप, मान्धाता, सगर, भगीरथ, अंबरीष, अनरण्य, मुचुकुन्द, निमि और पृथु ॥४३॥ ययाति, नहुष, पुरु, दुष्यन्त, शिबि, नल, भरत, शंतनु, पांडु और सहस्रार्जुन ॥४४॥ शुद्ध कीर्ति करने वाले और बहुश्रुत ये राजर्षि अनेकों अश्वमेध से पृथ्वी को तृप्त करके धर्मराज के सभासद हुए हैं ॥४५॥ धर्मराज की सभा में धर्म ही का विचार होता है वहाँ पक्षपात असत्य और मत्सर तीन नहीं हैं ॥४६॥ सब सभासद शास्त्र को जानने वाले धर्मपरायण और धर्मराज की उपासना करने वाले हैं ॥४७॥ ऐसी सभा

विदः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ तस्यां सभायां सततं वैवस्वतमुपासते ॥४७॥ ईदृशीं सा सभा ताद्र्यं धर्मराजमहात्मनः ॥ न तां पश्यन्ति ये पापा दक्षिणेन पथागताः ॥४८॥ धर्मराजपुरे गन्तुं चतुर्मार्गा भवन्ति च ॥ पापिनां गमने पूर्वं स तु ते परिकीर्तितः ॥४९॥ पूर्वादिभिस्त्रिभिर्मार्गैर्ये गता धर्ममन्दिरे ॥ ते हि सुकृतिनः पुण्यैस्तस्यां गच्छन्ति ताच्छृणु ॥५०॥ पूर्वमार्गस्तु तत्रैकः सर्वभोगसमन्वितः ॥ पारिजाततरुच्छायाच्छादितोरत्नमण्डिताः ॥५१॥ विमानगणसङ्कीर्णो हंसावलिविराजितः ॥ विद्रुमारामसंकीर्णः पीयूष द्रवसंयुतः ॥५२॥ तेन ब्रह्मर्षयो यान्ति पुण्या राजर्षयोमलाः ॥ अप्सरोगणगन्धर्वविद्याधरमहोरगाः

धर्मराज की है उस सभा को दक्षिण द्वार से जाने वाले पापी मनुष्य नहीं देखते हैं ॥४८॥ धर्मराज के नगर में चार मार्ग हैं पहिले पापियों को जाने का दक्षिण मार्ग था तुमसे कह चुका ॥४९॥ अब पूर्व के जो तीन मार्ग हैं उस मार्ग से पुण्यवान ही जाते हैं उसको सुनो ॥५०॥ पूर्व का जो मार्ग है वह सब भोगों से युक्त है वह देवताओं का वृक्ष जो पारिजात है उसकी छाया से आच्छादित और रत्नों से शोभायमान है ॥५१॥ अनेक प्रकार के विमान उस मार्ग में भरे हैं जगह-जगह हंसगण कलोल करते हैं बगीचों में आनन्द पूर्वक विहार करते हैं और कहीं-कहीं अमृतरूपी जल भरा है ॥५२॥ उस द्वार से देवर्षि और शुद्ध राजर्षि गन्धर्व तथा अप्सरा और विद्याधरों के साथ

॥५३॥ देवताराधकाश्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ॥ ग्रीष्मे प्रपादानरता माघे काष्ठ-
प्रदायिनः ॥५४॥ विश्रामयन्ति वर्षासु विरक्तान्दानमानतः ॥ दुःखितस्यामृतं ब्रूते ददते
ह्याश्रयं तु ये ॥५५॥ सत्यधर्मरता ये च क्रोधलोभविवर्जिताः ॥ पितृमातृषु ये भक्ता
गुरुशुश्रूषणे रताः ॥५६॥ भूमिदा गृहदा गोदा विद्यादानप्रदायकाः ॥ पुराणवक्तृश्रोतारः
पारायणपरायणाः ॥५७॥ एते सुकृतिनश्चान्ये पूर्वद्वारे विशन्ति च ॥ यान्ति धर्मसभायां
ते सुशीलाः शुद्धबुद्धयः ॥५८॥ द्वितीयस्तूत्तरो मार्गो महारथशतैर्वृतः ॥ नरयानसमा-
युक्तो हरिचन्दनमण्डितः ॥५९॥ हंससारससंकीर्णश्चक्रवाकोपशोभितः ॥ अमृतद्रव-

वहाँ जाते हैं ॥५३॥ और जो देवताओं की आराधना करने वाले तथा शिव की भक्ति करने वाले ग्रीष्म काल में जलदान और शीतकाल में लकड़ी का दान करते हैं ॥५४॥ और जो वर्षाकाल में विरक्त को दान और धर्मशाला आदि से विश्राम देते हैं और दुःखी से जो प्रिय वचन बोलते हैं, जो दूसरे को आश्रय देते हैं ॥५५॥ जो सदा सत्य बोलते हैं क्रोध लोभ का त्याग कर पिता, माता और गुरु की सेवा करने वाले हैं ॥५६॥ भूमिका दान गौ का दान, विद्या दान करने वाले पुराण बाँचने वाले और सुनने वाले ॥५७॥ इस प्रकार के पुण्य करने वाले पूर्व द्वार से होकर धर्मराज के नगर में प्रवेश करते हैं और शीलवान तथा शुद्ध बुद्धिवाले धर्म सभा में जाते हैं ॥५८॥ दूसरा उत्तर के मार्ग, हजारों रथ, पालकी आदि उत्तम सवारियों से भरा है और हरि चन्दन वृक्ष की छाया से वह मार्ग आच्छादित है ॥५९॥

संपूर्णरतत्र भाति सरोवरः ॥६०॥ अनेन वैदिका यान्ति तथाऽभ्यागतपूजकाः ॥ दुर्गाभान्वोश्च ये भक्तास्तीर्थस्नाताश्च पर्वसु ॥६१॥ ये मृता धर्मसंग्रामे ऽनशनेन मृताश्च ये ॥ वाराणस्यां गो गृहे च तीर्थतोये मृताविधेः ॥६२॥ ब्राह्मणार्थे स्वामिकार्ये तीर्थक्षेत्रेषु ये मृताः ॥ ये मृता देवविध्वंसे योगाभ्यासेन ये मृताः ॥६३॥ सत्पात्रपूजका नित्यं महादानरताश्च ये ॥ प्रविशन्त्युत्तरे द्वारे यान्ति धर्मसभां च ते ॥६४॥ तृतीयः पश्चिमो मार्गो रत्नमन्दिरमंडितः ॥ सुधारससदापूर्णदीर्घिकाभिर्विराजितः ॥६५॥ ऐरावतकुलो-

अमृतरूपी जल से पूर्ण सरोवर है उसके तटपर हंस सारस और चकई, चकवा आदि कलोल करते हैं ॥६०॥ इस मार्ग में वेद को पढ़ने वाले, अतिथियों की सेवा करने वाले दुर्गा और सूर्य की भक्ति करने वाले तीर्थों में स्नान करने वाले जाते हैं ॥६१॥ जो धर्म युद्ध में मरते हैं और अनशन व्रत करने वाले, काशी में वास करने वाले गोशाला और तीर्थों के जल में डूब कर जो मरते हैं ॥६२॥ ब्राह्मण के लिए स्वामी के कार्य में तथा चत्र में और देवताओं के कार्य में और योगाभ्यास से जो मरते हैं ॥ ६३ ॥ जो सत्पात्र की पूजा करते हैं जो नित्य दान करते हैं ये सब उत्तर के द्वार से होकर धर्म सभा में जाते हैं ॥६४॥ पश्चिम के द्वार में रत्नों के बने स्थान हैं और वह मार्ग जल से भरी बावली से युक्त है ॥६५॥ सुन्दर और मतवाले हाथी और उच्चैःश्रवा नाम के घोड़ों से भरा

द्भूतमत्तमातंगसंकुलः ॥ उच्चैःश्रवः समुत्पन्नहयरत्नसमन्वितः ॥६६॥ एतेनात्मपरा यान्ति सच्छास्त्रपरिचिन्तकाः । अनन्यविष्णुभक्ताश्च गायत्रीमन्त्र जापकाः ॥६७॥ परहिंसा-परद्रव्यपरवादपराङ्मुखाः ॥ स्वदारानिरताः सन्तसाग्निकाः वेदपाठकाः ॥६८॥ ब्रह्मचर्य-व्रतधरा वानप्रस्थास्तपस्विनः ॥ श्रीपादसंन्यासपराः समलोष्ठाश्मकाञ्चनाः ॥६९॥ ज्ञान-वैराग्यसंपन्नाः सर्वभूतहिते रताः ॥ शिवविष्णुव्रतकराः ब्रह्मकर्मसमर्पकाः ॥७०॥ ऋणै-स्त्रिभिर्विनिर्मुक्ताः पञ्चयज्ञरताः सदा ॥ पितृणां श्राद्धदातारः काले संध्यामुपासकाः ॥७१॥

है ॥६६॥ इस आत्मस्वरूप को जानने वाले उत्तम शास्त्र का विचार करने वाले और गायत्री मंत्र का जप करने वाले तथा विष्णु के अनन्य भक्त उस मार्ग से जाते हैं ॥६७॥ दूसरे की हिंसा दूसरे के द्रव्य का त्याग करने वाले विवाद न करने वाले अपनी स्त्री में रति चाहने वाले अग्निहोत्री वेद पढ़ने वाले ॥६८॥ ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, संन्यास धारण करने वाले तपस्या करने वाले सोना और मिट्टी को एक समान देखने वाले ॥६९॥ ज्ञान-वैराग्य से संपन्न संपूर्ण प्राणियों का हित चाहने वाले शिव विष्णु के व्रत को करने वाले अपने किये कर्म को ब्रह्ममें समर्पण करने वाले ॥७०॥ जो तीनों ऋण से मुक्त हैं सदा पंचयज्ञ करते हैं नित्य पितरों का श्राद्ध करते हैं और तीनोंकाल में सन्ध्या करने वाले ॥७१॥ नीच की संगति का त्याग करने वाले सत्संगति का पालन करने वाले अप्सराओं से

नीचसङ्गविनिर्मुक्ताः सत्संगतिपरायणाः ॥ एतैऽप्सरोगणैर्युक्ता विमानवरसंस्थिता ॥७२॥
सुधापानं प्रकुर्वन्तो यान्ति ते धर्ममंदिरम् ॥ विशन्ति पश्चिमद्वारे यान्ति धर्मसभा-
न्तरे ॥७३॥ यमस्तानागतान्दृष्ट्वा स्वागतं वदते मुहुः ॥ समुत्थानं च कुरुते तेषां
गच्छति संमुखम् ॥७४॥ तदा चतुर्भुजो भूत्वा शंखचक्रगदासिभृत् ॥ पुण्यकर्मरतानां
च स्नेहान्मित्रवदाचरेत् ॥७५॥ सिंहासनं च ददते नमस्कारं करोति च ॥ पादार्घ्यं
कुरुते पश्चात्पूजते चन्दनादिभिः ॥७६॥ नमस्कुर्वन्तु भो सभ्याः ज्ञानिनं परमादरात् ॥
एप मे मण्डलं भित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ॥७७॥ भो भो बुद्धिमतां श्रेष्ठा नरक-

युक्त होकर सुन्दर विमान में बैठकर ।७२॥ अमृत को पान करते हैं पश्चिम के द्वार से होकर धर्म मन्दिर में प्रवेश करके धर्म सभा में जाते हैं ॥७३॥ ऐसे प्राणी को आते हुए देखकर यमराज बारम्बार स्वागत करते हैं और सन्मुख आने पर यमराज अभ्युत्थान करते हैं ॥ ७४ ॥ जो पुण्यवान पुरुष हैं वे चतुर्भुजी रूप को धारण कर शंख चक्र गदा और खड्ग को धारण किये वहाँ जाते हैं और धर्मराज उनके साथ मित्र के समान व्यवहार करते हैं ॥७५॥ और बैठने को सिंहासन देते हैं बारम्बार नमस्कार करके पादार्घ्य देते हैं फिर चन्दन आदि से उस प्राणी की पूजा करते हैं ॥७६॥ हे सभा के लोग ! इस ज्ञानी को बड़े आदर से नमस्कार करो यह मेरे मंडल को तोड़कर ब्रह्मलोक को जाने वाला है ॥७७॥ हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ ! तुमने नरक के क्लेश से भयभीत होकर अपने किये

क्लेशभीरवः ॥ भवद्भिः साधितं पुण्यैर्देवत्वं सुखदायकम् ॥७८॥ मानुषं दुर्लभं प्राप्य नित्यं यस्तु न साधयेत् ॥ स याति नरकं घोरं कोऽन्यस्तस्मादचेतनः ॥७९॥ अस्थिरेण शरीरेण योऽस्थिरैश्च धनादिभिः ॥ संचिनोति स्थिरं धर्मं स एको बुद्धिमान्नरः ॥८०॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो धर्मसंचयः ॥ गच्छध्वं पुण्यकृत्स्थानं सर्वभोगसमन्वितम् ॥८१॥ इति धर्मवचः श्रुत्वा तं प्रणम्य सभां च ताम् ॥ अमरैः पूज्यमानास्ते स्तूयमाना मुनीश्वरैः ॥८२॥ विमानगणसंकीर्णाः प्रयान्ति परमं पदम् ॥ केचिद्धर्मसभायां हि तिष्ठन्ति परमादरात् ॥८३॥ उषित्वा तत्र कल्पांतं भुक्त्वा भोगानमानुषान् ॥ प्राप्नोति

पुण्य से सुख को देने वाला, देवत्व को सिद्ध किया है ।७८। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर जो पुण्य का साधन नहीं करते है वह घोर नरक में जाते हैं । उनके समान दूसरा मूर्ख कौन है ॥७९॥ अस्थिर शरीर और धन से जो स्थिर धर्म का संचय करता है वही एक बुद्धिमान है ।८०। इसलिए सब प्रकार से धर्म का संचय करना चाहिये और सब भोगों को भोग कर पुण्य स्थान को जाते हैं ॥८१॥ इस प्रकार धर्मराज के वचन को सुनकर धर्मराज को और उनकी सभा को विधिवत् प्रणाम करके देवता और मुनियों से स्तुति किया गया प्राणी विमान पर बैठकर परम पद को जाते हैं कोई बड़े आदर से धर्म सभा में निवास करते हैं ॥८२।८३॥ वहाँ कल्प भर

पुण्यशेषेण मानुष्यं पुण्यदर्शनम् ॥८४॥ महाधनी च सर्वज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ पुनः स्वात्मविचारेण ततो याति परां गतिम् ॥८५॥ एतत्ते कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यमालयम् ॥ इदं शृण्वन्नरो भक्त्या धर्मराजसभां व्रजेत ॥८६॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे धर्मराजनगरनिरूपणं नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

वास करके दिव्य भोगों को भोगकर शेष पुण्य से फिर मनुष्य लोक में आते हैं ॥८४॥ महाधनी और सर्वज्ञ और शास्त्रों का जानने वाला होकर वह जीव आत्म चिन्तन करके मुक्त हो जाता है ॥८५॥ हे गरुड़! तुम्हारे प्रश्न के योग्य धर्मलोक और धर्म सभा के माहात्म्य को मैंने तुमसे कहा ऐसे पुण्य करने वाले धर्मलोक में जाते हैं ॥८६॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

गरुड उवाच–धर्मात्मा स्वर्गतिं भुक्त्वा जायते विमले कुले ॥ अतस्तस्य समुत्पत्ति जननी जठरे वद ॥१॥ यथा विचारं कुरुते देहेऽस्मिन्सुकृती जनः ॥ तथाऽहं श्रोतुमिच्छामि वद मे करुणानिधे ॥२॥ श्रीभगवानुवाच–साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य परं गोप्यं वदामि ते ॥ यस्य विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥३॥ वक्ष्यामि च शरीरस्य स्वरूपं पारमार्थिकम् ॥ ब्रह्मांडगुणसंपन्नं योगिनां धारणास्पदम् ॥४॥ षट्चक्रचिन्तनं यस्मिन्यथा कुर्वन्ति योगिनः ॥ ब्रह्मरंध्रे चिदानंदरूपध्यानं तथा शृणु ॥५॥ शुचीनां श्रीमतां

गरुड़ जी बाले भगवान् ! धर्मात्मा पुरुष स्वर्ग की गति को छोड़कर निर्मल कुल में उत्पन्न हाते हैं। इसलिये माता के पेट में उनकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है वह मुझसे कहो ॥१॥ हे करुणानिधि ! धर्मात्मा मनुष्य जिस देह में जैसा विचार करते हैं वह मुझसे कहो ॥२॥ विष्णु भगवान् बांले हे गरुड़ ! मैं तुमसे परम गुप्त विषय का कहता हूँ जिसको सुनने से मनुष्य परम ज्ञानी हो जाता है ॥३॥ अब शरीर के परमार्थिक स्वरूप को कहता हूँ ब्रह्माण्ड के गुणों से सम्पन्न और योगियों के धारण का आस्पद है ॥४॥ योगी जिस देह में षट् चक्र का चिन्तन करते हैं और ब्रह्म रन्ध्र में चिदानन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान करते हैं उस विधि को तुमसे कहता हूँ ॥ ५ ॥ जैसे धर्मात्मा पुरुष शुद्ध और श्रीमान के घर में जन्म लेते हैं उनका विधान और उनके माता-पिता के नियम को

गहे जायते सुकृती यथा ॥ तथा विधानं नियमं तत्पित्रोः कथयामि ते ॥६॥ ऋतु-
काले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् ॥ तावन्नालोकयेद्वक्त्रं पापं वपुषि संभवेत् ॥७॥
स्नात्वा सचैलं सा नारी चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥ सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रता-
र्चने ॥८॥ सप्ताहमध्ये यो गर्भः स भवेन्मलिनाशयः ॥ प्रायशः सम्भवन्त्यत्र पुत्रास्त्व-
ष्टाहमध्यतः ॥९॥ युग्मासु पुत्रा जायंते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ॥ पूर्वसप्तकमुत्सृज्य
तस्माद्युग्मासु संविशेत् ॥१०॥ षोडशर्तु निशाः स्त्रीणां सामान्याः समुदाहृताः ॥ या
वै चतुर्दशी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र वै ॥११॥ गुणभाग्यनिधिः पुत्रस्तदाजायेत धार्मिकः ॥

कःउता हूं ॥६॥ ऋतुकाल में स्त्रियों को चार दिन तक त्याग करना चाहिये, जब तक शरीर में पाप अर्थात इन्द्र की ब्रह्महत्या से उत्पन्न
रहे तब तक स्त्री का मुख न देखे ॥७॥ वह रजस्वला वस्त्र सहित स्नान करके चौथे दिन शुद्ध होती है और सात दिन में देवताओं के
व्रत और पूजा के योग्य होती है ॥८॥ सात दिन के भीतर जो गर्भ होता है वह मलीन है आठ दिन के मध्य में अल्पायु वाले बहुत
लड़के होते हैं ॥९॥ युग्म रात्रि में प्रसंग करने से पुत्र और अयुग्म रात्रि में प्रसंग करने से कन्या होती है इसलिये सात दिन छोड़ कर
स्त्री प्रसंग करना चाहिये ॥१०॥ ऋतुकाल की सोलह रात्रि स्त्रियों को सामान्य रूप से कही गई है जिसके गर्भ की स्थिति चौदहवीं
रात्रि में होती है ॥११॥ उसमें सब गुण निधान धर्मात्मा बेटा उत्पन्न होता है। यह रात्रि प्राकृतिक जीवों को दुर्लभ है ॥१२॥ स्त्री

सा निशा प्राकृतैर्जीवैर्न लभ्येत कदाचन ॥१२॥ पञ्चमेऽहनिनारीणां कार्यं मधुरभोजनम् ॥ कटु क्षारं च तीक्ष्णं च त्याज्यमुष्णं च भोजनम् ॥१३॥ तत्क्षेत्रमोषधीपात्रं बीजं चाप्यमृतायनम् ॥ तस्मिन्नुप्त्वा नरः स्वामी सम्यक्फलमवाप्नुयात् ॥१४॥ ताम्बूलपुष्पश्रीखंडैः संयुक्तः शुचिवस्त्रभृत् ॥ धर्ममादाय मनसि सुतल्पं संविशेत्पुमान् ॥१५॥ निषेकसमये यादृङ्नरचित्तविकल्पना ॥ तादृक्स्वभावसंभूतिर्जन्तुर्विशति कुक्षिगः ॥१६॥ चैतन्यं बीजभूतं हि नित्यं शुक्रेऽप्यवस्थितम् ॥ कामश्चित्तं च शुक्रं च यदा ह्येकत्वमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ तदा द्रावमवाप्नोति योषिद्गर्भाशये नरः ॥ शुक्रशोणित-

को चाहिये कि कड़ुवा, खारा, तीक्ष्ण और गरम पदार्थों का त्याग कर पाँचवें दिन में मधुर भोजन करे ॥१३॥ वह क्षेत्र ओषधियों का पात्र है और बीज स्वयं अमृत है पुरुष उस क्षेत्र में बीज को बोकर अच्छे फल को लाभ करता है ॥१४॥ उत्तम भोजन के ऊपर पान इलायची खावे चन्दन का लेप कर पुष्प माला को धारण कर शुद्ध वस्त्र पहिन कर धर्म का चिन्तन करके उत्तम शय्या पर सोवे ॥१५॥ वीर्य त्याग के समय में जैसी चित्त की कल्पना होती है उसी स्वभाव का जीव उदर में प्रवेश करता है ॥१६॥ चैतन्य जीव सदा वीर्य में स्थित रहता है काम चित्त और शुक्र जब एकता को प्राप्त होता है ॥१७॥ तब मनुष्य स्त्री के गर्भाशय में द्राव को प्राप्त

संयोगात्पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥१८॥ परमानन्ददः पुत्रो भवेद्गर्भगतः कृती ॥ भवन्ति तस्य निखिलाः क्रियाः पुंसवनादिकाः ॥१९॥ जन्म प्राप्नोति पुण्यात्मा ग्रहेषूच्चगतेषु च ॥ तज्जन्मसमये विप्राः प्राप्नुवन्ति धनं बहु ॥२०॥ विद्याविनयसंपन्नो वर्धते पितृवेश्मनि ॥ सतां संगेन स भवेत्सर्वागमविशारदः ॥२१॥ दिव्यांगनादिभोक्तास्यात्तारुण्ये दानवान्धनी ॥ पूर्वं कृततपस्तीर्थमहापुण्यफलोदयात् ॥२२॥ ततश्च यतते नित्यमात्मानात्मविचारेण ॥ अध्यारोपापवादाभ्यां कुरुते ब्रह्मचिन्तनम् ॥२३॥ अस्यासङ्गावबोधाय

होता है और शुक्र शोणित के संयोग से पिंड की उत्पत्ति होती है ॥१८॥ गर्भ में आया हुआ धर्मात्मा लड़का परम आनन्द का देने वाला होता है उसको पुंसवन आदि संपूर्ण क्रियायें होती हैं ॥१९॥ पुण्यात्मा जीव अच्छे घर में जन्म लेता है उसको सभी ग्रह उत्तम फल देनेवाले पड़ते हैं और उसके जन्मोत्सव में ब्राह्मणों को अधिक धन मिलता है ॥२०॥ विद्या और विनय से युक्त होकर वह पिता के घर में वृद्धि को प्राप्त होता है सज्जनों की संगति से वेद-शास्त्र में प्रवीण हो जाता है ।२१। पूर्व जन्म में किये पुण्य के फल से युवावस्था में सुशीला और सुन्दरी स्त्री को प्राप्त करता है ॥२२॥ और आत्मा-अनात्मा के विचार में सदा प्रयत्न करता है और अध्यारोप तथा अपवाद से ब्रह्म का चिन्तन करता है ॥२३॥ अन्वय करने वाले इस ब्रह्म के असंग से अर्थात् यह पुरुष संग रहित है

ब्रह्मणोन्वयकारिणः ॥ क्षित्याद्यनात्मवर्गस्य गुणांस्ते कथयाम्यहम् ॥२४॥ क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता वायुराकाश एव च ॥ स्थूलभूता इमे प्रोक्ताः पिडोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥२५॥ त्वगस्थिनाड्यो रोमाणि मांस चैव खगेश्वर ॥ एते पञ्चगुणा भूमेर्मया ते परि-कीर्तिता ॥२६॥ लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तं च पंचमम् ॥ अपां पंचगुणाः प्रोक्ता-स्तेजसो विनिशामय ॥२७॥ क्षुधा तृषा तथाऽऽलस्यं निद्रा कान्तिस्तथैव च ॥ तेजः पंचगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ॥२८॥ आकुंचनं धावनं च लंघनं च प्रसा-रणम् ॥ चेष्टितं चेति पंचैव गुणाः वायोः प्रकीर्तिताः ॥२९॥ घोषश्चिन्ता च शून्यत्वं

इस बात को जानने के लिये क्षिति आदि जो पंचभूत अनात्मवर्ग हैं उसके गुणों को तुमसे कहता हूँ ॥२४॥ पृथ्वी, जल अग्नि वायु और आकाश ये पाँचों स्थूल भूत हैं अर्थात् पंचभूतों से यह पिंड बनता है ॥२५॥ हे गरुड़ ! चमड़ा, हड्डी, नाड़ी, रोम और माँस ये पाँच गुण पृथ्वी का जानो ॥२६॥ लार, मूत्र, मज्जा और वीर्य तथा रक्त यह पाँच गुण जल के कहे जाते हैं इन्हीं स्थूलभूतों के ये गुण पिंड में आते हैं ॥२७॥ क्षुधा, आलस्य, तृषा, निद्रा और कान्ति ये पाँच गुण योग्नि तेज (अग्नि) का कहते हैं ॥२८॥ समेटना, दौड़ना और फैलाना तथा चेष्टा करना ये पाँच गुण वायु के हैं ॥२९॥ शब्द, चिन्ता, शून्यता, मोह और सन्देह ये पाँच गुण आकाश

मोहश्चिन्ता च संशयः ॥ आकाशस्य गुणाः पंच ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ॥३०॥ मनो-
बुद्धिरहङ्कारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ॥ अन्तःकरणमुद्दिष्टं पूर्वकर्माधिवासितम् ॥३१॥ श्रोत्रं
त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं ज्ञानेन्द्रियाणि च ॥ वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि
च ॥३२॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च देवताः परि-
कीर्तिताः ॥३३॥ इडा च पिंगला चैव सुषुम्नाख्या तृतीयका ॥ गान्धारी गजजिह्वा च
पूषा चैव यशस्विनी ॥३४॥ अलम्बुषा कुहूश्चापि शंखिनी दशमी तथा ॥ पिण्डमध्ये
स्थिता ह्येताः प्रधाना दशनाडिकाः ॥३५॥ प्राणो पानः समानाख्य उदानो व्यान एव

के हैं जो प्रयत्न से जाने जाते हैं ॥३०॥ मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त ये चार अन्तःकरण के गुण हैं यह पूर्व जन्म के कर्मों से वासना युक्त होते हैं ॥३१॥ कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाक ये ज्ञानेन्द्रिय हैं, वाक्, पाणि, (हाथ) पाद, (चरण) गुदा और लिंग, ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं ॥३२॥ दिशा, वात, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार; अग्नि, इन्द्र और उपेन्द्र तथा मित्र ये दसों इन्द्रियों के दस देवता हैं ॥३३॥ इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं इनके अधीन होकर गान्धारी, गजजिह्वा, पूषा, यशस्विनी ॥३४॥ अलंबुषा, कुहू तथा शंखिनी, ये दस नाड़ी उस पिंड के मध्य में रहती हैं ॥३५॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग,

च ॥ नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥३६॥ हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ॥ उदानः कंठदेशे स्याद्व्यानः सर्वशरीरगः ॥३७॥ उद्गारे नागआख्यातः कूर्म उन्मीलने स्मृतः ॥ कृकलः क्षुत्करो ज्ञेयो देवदत्तो विजृम्भणे ॥३८॥ न जहाति मृतं वापि सर्वव्यापी धनञ्जय ॥ कवलैर्भुक्तमन्नं हि पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ॥३९॥ नयते व्यानको वायुः सारांशं सर्वनाडिषु ॥ आहारो भुक्तमात्रो हि वायुना क्रियते द्विधा ॥४०॥ संप्रविश्य गुदे सम्यक्पृथगन्नं पृथग्जलम् ॥ ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा कृत्वान्नं च जलोपरि ॥४१॥ अग्नेश्चाधः स्वयं प्राणः स्थित्वाग्निं धमते शनैः ॥ वायुना ध्माय-

कूर्म, कृकलः देवदत्त और धनञ्जय ये दस वायु पिण्ड के मध्य प्रदेश में चलते हैं ।३६।। हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि मंडल में उदान कंठ देश में व्यान, सब शरीर में व्याप्त रहता है ।।३७।। उद्गार जो डकार है और उनमीलन में कूर्म क्षुधा में कृकल, जृंभा इत्यादि में देवदत्त का वास जानना चाहिये ।।३८।। सर्वव्यापी धनञ्जय मनुष्य के मरने पर भी साथ नहीं छोड़ता है वह भोजन किये हुए अन्न से देह को पुष्ट करता है ।।३९।। व्यान वायु भोजन किये हुए अन्न का दो भाग करके उसके सारांश को सब नाड़ियों में पहुँचाता है ।।४०।। गुदा मार्ग में प्रवेश कर अन्न जल को अलग कर देता है अग्नि के ऊपर जल को और जल के ऊपर अन्न को करके ।।४१।। आप अग्नि के नीचे स्थान में स्थित होकर उस अग्नि को धीरे-धीरे धौंकता है तब वायु से प्रज्ज्वलित अग्नि रस और

मानोऽग्निः पृथक्किट्ठं पृथग्रसम् ॥४२॥ कुरुते व्यानको वायुर्विष्वक्संप्रापयेद्रसम् ॥
द्वारैर्द्वादशभिर्भिन्नं किट्टं देहाद्बहिः स्रवेत् ॥४३॥ कर्णाक्षिनासिका जिह्वा दन्ता
नाभिर्नखा गुदम् ॥ गुह्यं शिरा वपुर्लोममलस्थानानि चक्षते ॥४४॥ एवं सर्वे प्रवर्तन्ते
स्वे स्वे कर्माणि वायवः । उपलभ्यात्मनः सत्तां सूर्यालोकं यथा जनः ॥४५॥ इदानीं
नरदेहस्य शृणु रूपद्वयं खग ॥ व्यावहारिकमेकं च द्वितीयं परमार्थिकम् ॥४६॥ तिस्रः
कोट्योऽर्धकोटी च रोमाणि व्यावहारिके ॥ सप्तलक्षाणि केशाः स्युर्नखाः प्रोक्तास्तु
विंशतिः ॥४७॥ द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः सामान्याद्विनतासुत ॥ मांसं पलसहस्रं तु रक्तं

मल को अलग करता है ॥४२॥ व्यान शरीर में सब ओर रस को पहुँचाता है और बारह दरवाजे से मल को बाहर निकालता है ।४३॥ कान, आँख, नाक, जीभ, दाँत, नाभि, नख, गुदा, लिंग, शिरा, वायु और लोम ये बारह स्थान मल के कहे गये हैं ॥४४॥ इस प्रकार सब वायु अपने-अपने कर्मों में प्रवृत्त होती हैं जैसे सूर्य के प्रकाश को पाकर मनुष्य अपने कर्मों में प्रवृत्त होता है ॥४५॥ हे गरुड़ ! अब मनुष्य के दो स्वरूपों को सुनो-एक व्यावहारिक है और दूसरा परमार्थिक होता है ॥४६॥ इस व्यावहारिक शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम हैं और सात लाख सिरके बाल हैं तथा हाथ-पाँव में बीस नख हैं ॥४७॥ हे गरुड़ सामान्य रूप से बत्तीस दाँत

पलशतं स्मृतम् ॥४८॥ पलानि दश मेदस्तु त्वक्पलानि च सप्ततिः ॥ पलद्वादशक मज्जा महारक्तं पलत्रयम् ॥४९॥ शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं कुडवं शोणितं स्मृतम् ॥ षष्ट्युत्तरं च त्रिशतमस्थां देहे प्रकीर्तितम् ॥५०॥ नाड्यः स्थूलाश्च सूक्ष्माश्च कोटिशः परिकीर्तिताः । पित्तं पलानि पञ्चाशत्तदर्धं श्लेष्मणस्तथा ॥५१॥ सततं जायमानं तु विण्मूत्रं चाप्रमाणतः ॥ एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं व्यावहारिकम् ॥५२॥ भुवनानि च सर्वाणि पर्वतद्वीपसागराः ॥ आदित्याद्या ग्रहाः सन्ति शरीरे पारमार्थिके ॥५३॥ पारमार्थिक-देहे हि षट्चक्राणि भवन्ति च ॥ ब्रह्माण्डे ये गुणाः प्रोक्तास्तेऽप्यस्मिन्नेव संस्थिताः

हैं देह में हजार पल माँस और सौ पल रक्त होता है ।।४८।। दशपल मेदा के हैं और सत्तर पल चमड़ा है, बारह पल मज्जा और तीस पल महारक्त होता है ॥४९॥ शरीर भर में दो कुड़व शुक्र और एक कुड़व शोणित होता है तीन सौ साठ हड्डियाँ हैं ॥५०। स्थूल, सूक्ष्म अर्थात् मोटी और पतली करोड़ों नाड़ियाँ हैं इसमें पित्त, पचास पल और कफ पचीस पल होता है ॥ ५१ ॥ सदा उत्पन्न होने वाले विष्ठा मूत्र का प्रमाण नहीं है इतने गुणों से युक्त मनुष्यों का व्यावहारिक शरीर होता है ॥५२॥ चौदहों भुवन और पर्वत सातों द्वीप, समुद्र और बारहों सूर्य और नवों ग्रह यह परमार्थिक शरीर में वर्तमान रहते हैं ॥५३।। परमार्थिक शरीर में निश्चय छः चक्र होते

॥५४॥ तानहं ते प्रवक्ष्यामि योगिनां धारणास्पदम् ॥ येषां भावनया जन्तुर्भवद्वै राजरूपभाक् ॥५५॥ पादाधस्तात्तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा ॥ जानुनोः सुतलं विद्धि सक्थिदेशे महातलम् ॥५६॥ तलातलं सक्थिमूले गुह्यदेशे रसातलम् ॥ पातालं कटिसंस्थं च सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः ॥५७॥ भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्ध्वके ॥ स्वर्लोकं हृदये विद्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ॥५८॥ जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके ॥ सत्यलोकं ब्रह्मरन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥५९॥ त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधः कोणे च मन्दरः ॥ दक्षकोणे च कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥६०॥ निषधश्चोर्ध्वरेखायां

हैं जो गुण ब्रह्मांड के कहे जाते हैं वह सब इस देह में वर्तमान हैं। ५४॥ योगियों को धारण करने योग्य जो गुण हैं उनको मैं तुमसे कहता हूँ जिस भावना से जीव विराट् रूप को जानने योग्य होता है ॥५५॥ विराट् के पैर के नीचे तल लोक और पैर के ऊपर वितल, घुटना में सुतल और सकथि प्रदेश में महातल को जानना चाहिये ॥५६॥ सकथि के मूल में तलातल और गुह्य प्रदेश में रसातल कटि भाग में पाताल है ॥५७॥ नाभि के मध्य में भूर्लोक, उसके ऊपर भुवर्लोक, हृदय में स्वर्ग लोक और कंठ देश में महर्लोक को जानना चाहिये ॥५८॥ मुख में जन लोक ललाट में तपलोक ब्रह्मरन्ध्र में सत्यलोक को जानो ये चौदहों लोक विराट के शरीर में हैं ॥५९॥ त्रिकोण में मेरु और नीचे के भाग में मन्दराचल दक्षिण कोण में कैलाश और वायव्य कोण में हिमालय है ॥६०॥ ऊर्ध्व रेखा में निषधपर्वत,

दक्षायां गन्धमादनः ॥ रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वता ॥६१॥ अस्थिस्थाने भवे-
ज्जम्बूः शाको मज्जासु संस्थितः ॥ कुशद्वीपस्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरासु च ॥६२॥
त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चयः ॥ नखस्थं पुष्करं विद्यात्सागरास्तदनंत-
रम् ॥६३॥ क्षीरोदो हि भवेन्मूत्रे क्षीरं क्षीरोदसागरः ॥ सुरादधिः श्लेष्मसंस्थो मज्जायां
घृतसागरः ॥६४॥ रसोदधि रसे विद्याच्छोणिते दधिसागरः ॥ स्वादूदो लम्बिकास्थाने
जानीयात् विनतासुत ॥६५॥ नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे च चन्द्रमाः ॥ लोच-
नस्थः कुजो ज्ञेयो हृदये ज्ञः प्रकीर्तितः ॥६६॥ विष्णुस्थाने गुरुं विद्याच्छुक्रे शुक्रो

दक्षिण में गन्धमादन और वामरेखा में रमणाचल पर्वत है ॥६१॥ हड्डियों के स्थान में जंबुद्वीप और मज्जा में शाक द्वीप, माँस में कुश-
द्वीप और शिराओं में क्रौंचद्वीप है ॥६२॥ त्वचा में शाल्मली द्वीप, रोम समूह में गोमेद द्वीप नख में पुष्कर द्वीप है ॥६३। उनके मूत्र
में क्षार समुद्र, दूध में क्षीर समुद्र, श्लेष्मा में सुरा समुद्र, मज्जा में घृत सागर है। ६४। रस में ऊँच के रस का समुद्र जानो है
गरुड़! कंठ के भीतर स्वादिष्ट जल लंबिका है उसका स्थान जानना चाहिये ॥६५॥ नादचक्र में सूर्य बिन्दुचक्र में चन्द्रमा, नेत्र में
मंगल और हृदय में बुध का स्थान है ॥६६॥ विष्णु स्थान अर्थात् नाभि में बृहस्पति शुक्र में शुक्र नाभि के स्थान पर शनैश्चर और मुख

र्यवायुस्थितः ॥ नाभिस्थाने स्थितो मन्दो मुखे राहुः प्रकीर्तितः ॥६७॥ वायुस्थाने स्थितः केतुः शरीरे ग्रहमंडलम् ॥ एवं सर्वस्वरूपेण चिन्तयेदात्मनस्तनुम् ॥६८॥ सदा प्रभातसमये बद्धपद्मासनस्थितः ॥ षट्चक्रचिन्तनं कुर्याद्यथोक्तमजपाक्रमम् ॥६९॥ अजपा नाम गायत्री मुनीनां मोक्षदायिनी ॥ अस्याः संकल्पमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥७०॥ शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्येऽहमजपाक्रममुत्तमम् ॥ यं कृत्वा सर्वदा जीवो जीवभावं विमुञ्चति ॥७१॥ मूलाधारः स्वाधिष्ठानं मणिपूरकमेव च ॥ अनाहतं विशुद्धाख्यमाज्ञाषट्चक्रमुच्यते ॥७२॥ मूलाधारे लिंगदेशे नाभ्यां हृदि च कण्ठगे ॥ भ्रुवोर्मध्ये ब्रह्मरन्ध्रे क्रमाच्चक्राणि चिन्त-

में राहु को जानना चाहिये ।६७॥ वायु के स्थान में केतु रहता है इस प्रकार से सब ग्रह मण्डल का स्थान हैं योगी जन सब रूप को अपनी देह में देखते हैं ।६८॥ प्रातःकाल के समय पद्मासन लगा कर षट्चक्र का विचार करे और कहे हुए अजपा के क्रम को विचारे ॥६९॥ मुनियों को मोक्ष देने वाली अजपा नाम गायत्री है जिसके संकल्प मात्र से मनुष्य सब पापों से छूट जाता है ॥७०॥ हे गरुड़! मैं अजपा के क्रम तुम से कहता हूँ जिसको करके जीव जीवभाव को छोड़कर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ।७१॥ मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा ये छः चक्र देह के भीतर विद्यमान हैं ॥७२॥ मूलाधार में, लिंग देश में, नाभि

येत् ॥७३॥ आधारं तु चतुर्दलानलसमं वासान्तवर्णाश्रयं स्वाधिष्ठानमपि प्रभाकरसमं बालान्तषट्पत्रकम् ॥ रक्ताभं मणिपूरकं दशदलं डयाद्यं फकारान्तकम् पत्रैर्द्वादशभीरनाहतपुरं हैमं गलान्तवृतम् ॥७४॥ पत्रैः सस्वरषोडशैः शशधरज्योतिर्विशुद्धांबुजं हंसेत्यक्षरयुग्मकं द्वयदलं रक्ताभमात्रांबुजम् । तस्मादूर्ध्वगतं प्रभासितमिदं पद्मं सहस्रच्छदं सत्यानन्दमयं सदाशिवमयं ज्योतिर्मयं शाश्वतम् ॥७५॥ गणेशं च विधि विष्णुं शिवं जीवं गुरुं ततः ॥ व्यापकं च परं ब्रह्म क्रमाच्चक्रेषु चिन्तयेत् ॥७६॥ एकविंशत्सहस्राणि षट्शतान्यधिकानि च ॥ अहोरात्रेण श्वासस्य गतिः सूक्ष्मा स्मृता

में, हृदय में कंठ में भौंहों के मध्य में और ब्रह्मरन्ध्र में क्रम से पूर्वोक्त चक्रों का चिन्तन करें ।।७३।। अधार चार दल कमल अग्नि के समान है स्वाधिष्ठान षड्दल कमल सूर्य के समान है मणिपूर दश दल कमल रक्त वर्ण का है बारह दल कमल स्वर्ण के समान कंठ देश में रहने वाला है ।।७४।। षोडश दल कमल पर बैठ कर जप करता है उसके ऊपर सहस्र दल कमल पर ज्योतिर्मय परब्रह्म परमेश्वर का निवास रहता है ।।७५।। गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, जीव, गुरु और सर्वव्यापी परमात्मा का क्रम से इन चक्रों में विचार करे ।।७६।। दिन-रात में श्वांस की गति को इक्कीस हजार छः सौ बार की गणना पूर्व पण्डितों ने किया है ।।७७।। हकार से वह श्वांस

बुधैः ॥७७॥ हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥ हंसो हंसेति मन्त्रेण जीवो जपति तत्वतः ॥७८॥ षट्शतं गणनाथाय षट्सहस्रं तु वेधसे ॥ षट्सहस्रं च हरये षट्सहस्रं हराय च ॥७९॥ जीवात्मने सहस्रं च सहस्रं गुरवे तथा ॥ चिदात्मने सहस्रं च जपसंख्यां निवेदयेत् ॥८०॥ एतांश्चक्रगतान्ब्रह्ममयूखान्मुनयोऽमरान् ॥ सत्संप्रदायवेत्तारश्चिन्तयन्त्यजणादयः ॥८१॥ शुकादयोऽपि मुनयः शिष्यानुपदिशति च ॥ अतः प्रवृत्तिं महतां ध्यात्वा ध्यायेत्सदा बुधः ॥८२॥ कृत्वा च मानसीं पूजां सर्वचक्रेष्वनन्यधीः ॥ ततो गुरूपदेशेन गायत्रीमजपां जपेत् ॥८३॥ अधोमुखे ततो रन्ध्रे सहस्रदलपंकजे ॥ हंसगं श्रीगुरुं ध्याये-

बाहर को आते हैं और सकार से फिर भीतर को प्रवेश करते हैं और 'हंसोहंस'' इस मंत्र से जीवतत्त्व का जप करते हैं ॥७८॥ छः सौ गणेश के लिये छः हजार ब्रह्मा के लिये और छः हजार विष्णु के लिये और छः हजार शिव के लिये ॥७९॥ एक हजार जीवात्मा के लिये वैसे ही एक हजार गुरु के लिये और एक हजार चैतन्य रूपी परमात्मा के लिये इस प्रकार जप संख्या को निवेदन करता है ॥८०॥ सत् सम्प्रदाय को जानने वाले मुनीश्वर चक्र में स्थित ब्रह्मा जी अमर किरणों का ध्यान करते हैं इनसे ज्ञानियों को जो प्रवृत्ति है उसका ध्यान करके फिर ध्यान करते हैं ॥८१॥ और शुक आदि मुनीश्वर शिष्यों को इस बात का उपदेश करते हैं इनसे ज्ञानियों की जो प्रवृत्ति है उसका ध्यान करके फिर ध्यान करते हैं ॥८२॥ और एकाग्र चित्त होकर सब चक्रों में मानसी पूजा करने के उपरान्त गुरु के उपदेश से अजपा नाम गायत्री का जप करे ॥८३॥ नीचे है मुख जिसका और हजार दल का छिद्रयुक्त कमल में हंस पर बैठे

द्वराभयकराम्बुजम् ॥८४॥ क्षालितं चिन्तयेद्देहं तत्पादामृतधारया ॥ पंचोपचारैः संपूज्य प्रणमेत्तत्स्तवेन च ॥८५॥ ततः कुण्डलिनीं ध्यायेदारोहादवरोहतः ॥ षट्चक्रकृतसंचारां सार्धत्रिवलयां स्थिताम् ॥८६॥ ततो ध्यायेत्सुषुम्नाख्यं धामरन्ध्राद्बहिर्गतम् ॥ यथा तेन गता यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८७॥ ततो मच्चिन्तितं रूपं स्वयं ज्योतिः सनातनम् ॥ सदानन्दं सदा ध्यायेन्मुहूर्ते ब्रह्मसंज्ञके ॥८८॥ एवं गुरूपदेशेन मनो निश्चलतां नयेत ॥ न तु स्वेन प्रत्यनेन तद्विना पतनं भवेत ॥८९॥ अन्तर्यागं विधायैवं बहिर्यागं समाचरेत् ॥ स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा कुर्याद्धरिहरार्चनम् ॥९०॥ देहाभि-

हुए भय से रक्षा करने वाले गुरु का ध्यान करे ॥८४॥ उन गुरु के चरण के जल से अपने शरीर को धोवे और पंचोपचार से पूजन करके उनके स्तोत्र का पाठ कर उनको प्रणाम करे ॥८५॥ छओं चक्र में संसार करने वाली साढ़े तीन वलय से युक्त अवरोह के क्रम से कुण्डलिनी का ध्यान करे ॥८६॥ ब्रह्मरन्ध्र से बाहर गये हुए सुषुम्ना का ध्यान करे और उस मार्ग से गया हुआ जीव विष्णु के धाम को जाते हैं ॥८७॥ इसके बाद मुझको चिन्तन करके स्वयं ज्योति सनातन रूप जो सदा आनन्दमय है उसका चिन्तन ब्रह्म मुहूर्त में सदा ध्यान करे ॥८८॥ इस प्रकार गुरु के उपदेश से मन को निश्चल करे अपने प्रयत्न से न करे क्योंकि गुरु के उपदेश के बिना पतन होता है ॥८९॥ इस प्रकार अन्तर्याग करके बहिर्याग का आरम्भ करे और स्नान सन्ध्या आदि कर्मों को समाप्त कर विष्णु की पूजा करे ॥९०॥ देह के अभिमानी पुरुषों की अन्तर्मुखी वृत्ति नहीं होती है इसीसे उनको हमारी भक्ति सहज और मोक्ष को देने वाली

मानिनामन्तर्मुखीवृत्तिर्नजायते ॥ अतस्तेषां तु मद्भक्तिः सुकरा मोक्षदायिनी ॥९१॥
तपोयोगादयो मोक्षमार्गाः सन्ति तथापि च समीचीनस्तु मद्भक्तिमार्गः संसरतामिह
॥९२॥ ब्रह्मादिभिश्च सर्वज्ञैरयमेव विनिश्चितः ॥ त्रिवारं वेदशास्त्राणि विचार्य च पुनः
पुनः ॥९३॥ यज्ञादयोऽपि सद्धर्माश्चित्तशोधनकारकाः ॥ फलरूपा च मद्भक्तिस्तां
लब्ध्वा नावसीदति ॥९४॥ एवमाचरणं तार्क्ष्य करोति सुकृती नरः संयोगेन च मद्भ-
क्त्या मोक्षं याति सनातनम् ॥९५॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे सुकृतिजनजन्माचरणनिरूपणंनाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

है ॥९१॥ यद्यपि तप, योग आदि ये सब मोक्ष के मार्ग हैं तो भी संसार में आने जाने वाले पुरुषों को मेरी भक्ति का रास्ता समीचीन ॥९२॥ ब्रह्मा आदि सर्वज्ञ सब देवताओं ने यही निश्चय किया है कि तीन बार वेदशास्त्रों का बारम्बार विचार करके ॥९३॥ यज्ञ आदि श्रेष्ठ कर्म चित्त को शुद्ध करने वाले हैं और मेरी भक्ति फलरूप है उसको पा कर जीव कभी दुःखी नहीं होता है। ९४॥ हे गरुड़! जो पुण्यवान मनुष्य इस प्रकार का आचरण करते हैं वह मेरी भक्ति के संयोग से मोक्ष को प्राप्त होते हैं। ९५॥

इति श्री गरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

गरुड उवाच–श्रुत्वा मया दयासिन्धो ह्यज्ञानाज्जीवसंसृतिः ॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि मोक्षोपायं सनातनम् ॥१॥ भगवन्देवदेवेश शरणागतवत्सल ॥ असारे घोरसंसारे सर्वदुःखमलीमसे ॥२॥ नानाविधशरीरस्था ह्यनन्ता जीवराशयः ॥ जायन्ते च म्रियन्ते च तेषामन्तो न विद्यते ॥३॥ सदा दुःखातुरा एव न सुखी विद्यते क्वचित् । केनोपायेन मोक्षेश मुच्यन्ते वद मे प्रभो ॥४॥ श्रीभगवानुवाच–शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ यस्य श्रवणमात्रेण संसारान्मुच्यते नरः ॥५॥ अस्ति देवः परब्रह्मस्वरूपी निष्कलः शिवः ॥ सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वेशो निर्मलोऽद्वयः ॥६॥ स्वयं

गरुड़ जी बोले हे कृपानिधान! अज्ञान से जीव की संसृति को सुन चुके अब मैं सनातन मोक्ष के उपाय को सुनना चाहता हूँ ॥१॥ हे देव! हे ईश! हे भक्तवत्सल! सब दुःखों से भरे हुए इस असार घोर संसार में ॥२॥ नाना प्रकार के शरीर में स्थित और अनन्त जीव के समुदाय उत्पन्न होते हैं और मरते हैं उनका अन्त नहीं है ॥३॥ कभी सुख को न पाकर सदा दुःख में ही व्याकुल रहते हैं वे प्राणी किन उपायों से इस संसार से छूटते हैं वह मुझ से कहो ॥४॥ भगवान बोले हे गरुड़! जो तुम पूछते हो उसको मैं तुमसे कहता हूँ जिसको सुनने मात्र से मनुष्य संसार से छूट जाता है ॥५॥ परब्रह्म स्वरूप कला से हीन सब कुछ जानने वाले सब कुछ करने वाले सबके स्वामी निर्मल अद्वय और शिव हैं ॥६॥ स्वयं ज्योति आदि अन्त से रहित विकार रहित परे से परे

ज्योतिरनाद्यन्तो निर्विकारः परात्परः ॥ निर्गुणः सच्चिदानन्दस्तदंशाज्जीवसंज्ञकः ॥७॥
अनाद्यविद्योपहता यथाग्नौ विस्फुलिंगकाः ॥ देहाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः
॥८॥ सुखदुःखप्रदैः पुण्यपापरूपैर्नियन्त्रिताः ॥ तत्तज्जातियुतं देहमायुर्भोगं च कर्मजम्
॥९॥ प्रतिजन्म प्रपद्यन्ते तेषामपि परं पुनः ॥ ससूक्ष्मलिंगशरीरमामोक्षादक्षरं खग
॥१०॥ स्थावराः कृमयश्चाब्जाः पक्षिणः पशवो नराः ॥ धार्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मो-
क्षिणश्च यथाक्रमम् ॥११॥ चतुर्विधशरीराणि धृत्वा मुक्त्वा सहस्रशः सुकृतान्मानवो
भूत्वा ज्ञानी चेन्मोक्षमाप्नुयात् ॥१२॥ चतुरशीतिलक्षेषु शरीरेषु शरीरिणाम् ॥ न

निर्गुण सत् चित् आनन्द रूप परमेश्वर के अंश का नाम जीव है ॥७॥ अविद्या से उपहित (टकरा कर) होकर जैसे आग में चिनगारी उठती है वैसे ही जीव अनादि कर्म से देह आदि उपाधियों से भिन्न होता है ॥८॥ सुख दुःख को देनेवाले पुण्य और पाप रूप कर्मों में बँधे हुए जिस जाति से युक्त देह और वायु को कर्म से प्राप्त भोग को भोगते हैं ॥९॥ हे गरुड़! फिर उनसे परे मोक्ष पर्यन्त अनेकों जन्म में अविनाशी सूक्ष्म लिंग शरीर को धारण करते हैं ॥१०॥ वृक्ष आदि की योनियों में कीड़ा पक्षी पशु मनुष्य धर्म करने वाले देवता क्रम से मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥११॥ हजारों बार चार प्रकार के शरीर को धारण करके तथा छोड़ गये पुण्य से मनुष्य देह पाकर जो ज्ञानी होता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१२॥ चौरासी लाख योनि में देह धारण करने वाले को मनुष्य जन्म के

मानुष विनान्यत्र तत्वज्ञानं तु लभ्यते ॥१३॥ अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि कोटिभिः ॥ कदाचिल्लभते जन्तुर्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥१४॥ सोपानभूतं मोक्षस्य मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥ यस्तारयति नात्मानं तस्मात्पापतरोऽत्र कः ॥१५॥ नरः प्राप्योत्तरं जन्म लब्ध्वा चेन्द्रियसौष्ठवम् ॥ नवेत्यात्महितं यस्तु स भवेद् ब्रह्मघातकः ॥१६॥ विना देहेन कस्यापि पुरुषार्थो न विद्यते ॥ तस्माद्देहं धनं रक्षेत्पुण्यकर्माणि साधयेत् ॥१७॥ रक्षयेत्सर्वदात्मानमात्मा सर्वस्य भाजनम् ॥ रक्षणे यत्नमातिष्ठेज्जीवन्भद्राणि पश्यति ॥१८॥ पुनर्ग्रामः पुनः क्षेत्रं पुनर्वित्तं पुनर्गृहम् ॥ पुनः शुभाशुभं

बिना तत्त्व ज्ञान नहीं होता है और तत्त्व ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती है ॥१३॥ यहाँ हजार जन्म के हजार करोड़न में कभी जीव मनुष्य देह के कर्म से संचय को प्राप्त होता है ॥१४॥ मोक्ष का सोपान इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जो अपना कल्याण नहीं चाहता है उनसे अधिक पापी दूसरा कौन है ॥१५॥ सबसे अधिक मनुष्य जन्म को तथा इन्द्रियों की सुन्दरता पाकर जो अपना हित ही करता है वह ब्राह्मण को मारने वाला होता है ॥१६॥ देह के बिना किसी का कोई पुरुषार्थ नहीं चलता है इससे देह और धन की रक्षा कर पुण्य कर्म का उपार्जन करे ॥१७॥ आत्मा सबका पात्र है इससे सदा अपनी रक्षा करे क्योंकि जीवित रहता हुआ मनुष्य अनेक प्रकार के कल्याण को देखता है ॥१८॥ ग्राम, क्षेत्र, धन, गृह और शुभ अशुभ कर्म बार-बार होते हैं परन्तु सबका दुर्लभ शरीर

कर्म न शरीरं पुनः पुनः ॥१९॥ शरीररक्षणोपायाः क्रियन्ते सर्वदा बुधैः ॥ नेच्छन्ति च पुनस्त्यागमपि कुष्ठादिरोगिणः ॥२०॥ तद्गोपितं स्याद्धर्मार्थं धर्मो ज्ञानार्थमेव च ॥ ज्ञानं तु ध्यानयोगार्थमचिरात्प्रविमुच्यते ॥२१॥ आत्मैव यदि नात्मानमहितेभ्यो निवारयेत् ॥ कोऽन्यो हितकरस्तस्मादात्मानं कारयिष्यति ॥२२॥ इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः ॥ गत्वा निरौषधं देशं व्याधिस्थः किं करिष्यति ॥२३॥ व्याघ्रीवास्ते जरा चायुर्यातिभिन्नघटाम्बुवत् ॥ निघ्नन्ति रिपुवद्रोगास्तस्माच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥२४॥

बार-बार नहीं मिलता है ॥१९॥ पंडित पुरुष सदा शरीर की रक्षा का उपाय करते हैं क्योंकि कोढ़ी आदि भी शरीर का त्याग करने की इच्छा नहीं करते हैं ॥२०॥ इस कारण से रक्षा किये गये शरीर धर्म के लिये और संचित क्रिया धर्म ज्ञान के लिये होता है। ज्ञान ध्यान और योग के लिये होता है। इसीसे शीघ्र ही मुक्त होता है ॥२१॥ आत्मा ही यदि आत्मा को कुमार्ग से न बचावे तो इससे और दूसरा आत्मा का हित कराने वाला कौन होगा ॥२२। जो यहाँ ही नरकरूपी रोग की औषधि नहीं करता है फिर बिना औषधि के स्थान में पहुँचे क्या कर सकता है ॥२३॥ व्याघ्री के समान बुढ़ौती है वह फूटे हुए घड़े के पानी के समान आयु को धीरे-धीरे घटाती है रोग शत्रु के समान प्रहार करता है इसलिये अपने कल्याण का मार्ग विचारे ॥२४॥ जब तक दुःख ने अपना स्थान

यावन्नाश्रयते दुःखं यावन्नायान्ति चापदः ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावच्छ्रेयः समभ्यसेत् ॥२५॥ यावत्तिष्ठति देहोऽयं तावत्तत्वं समभ्यसेत् ॥ सन्दीप्तकोणभवने कूपं खनति दुर्मतिः ॥२६॥ कालो न ज्ञायते नानाकार्यैः संसारसम्भवैः ॥ सुखं दुःखं जनो हंत न वेत्ति हितमात्मनः ॥२७॥ जातानार्तान्मृतानापद्ग्रस्तान्दृष्ट्वा च दुःखितान् ॥ लोको मोहसुरां पीत्वा न बिभेति कदाचन ॥२८॥ सम्पदः स्वप्नसंकाशा यौवनं कुसुमोपमम् ॥ तडिच्चपलमायुष्यं कस्य स्याज्जानतो धृतिः ॥२९॥ शतं जीवितमत्यल्पं निद्रा-

नहीं बनाया विपत्तियाँ सिर पर न पड़ी इन्द्रियाँ कर्म करने में समर्थ हैं तब तक मनुष्य अपने हित के लिये ईश्वर का चिन्तन करे ॥२५॥ जब तक देह है तब तक शुभ कर्म करना चाहिये घरमें आग लगने पर कुआँ खोदने का विचार मूर्खों का काम है ॥२६॥ संसारी कामों में लगे हुए प्राणियों को काल का ज्ञान नहीं होता है इससे बड़ा आश्चर्य है कि मनुष्य दुःख सुख और अपने हित को जाने ॥२७॥ जन्म लेना, वृद्ध होना, विपत्ति तथा मरण आदि को देखकर भी जगत मोहरूपी मदिरा से मतवाला होकर भय नहीं मानता है ॥२८॥ स्वप्न के समान सम्पत्तियाँ हैं फूल के समान युवावस्था है और बिजली के समान चंचल आयुष्य है इस बात को जानते हुए कौन पुरुष धीरज रख सकता है ॥२९॥ पहिले तो सौ वर्ष का जीना ही थोड़ा है उसमें निद्रा और आलस्य से आधा व्यतीत होता

ल्पस्यस्तदर्धकम् ॥ बाल्यरोगजरादुःखैरल्पं तदपि निष्फलम् ॥३०॥ प्रारब्धव्ये निरु-
द्योगो जागर्तव्ये प्रसुप्तकः ॥ विश्वस्तव्यो भयस्थाने हा नरः को न हन्यते ॥३१॥
तोयफेनसमं देहे जीवेनाक्रम्य संस्थिते ॥ अनित्यप्रियसंवासे कथं तिष्ठति निर्भयः ॥३२॥
अहिते हितसंज्ञः स्यादध्रुवे ध्रुवसंज्ञकः ॥ अनर्थे चार्थविज्ञानः स्वमर्थं यो न वेत्ति
सः ॥३३॥ पश्यन्नपि प्रस्खलति शृण्वन्नपि न बुध्यति ॥ पठन्नपि न जानाति देवमाया-
विमोहितः ॥३४॥ तन्निमज्जज्जगदिदं गंभीरे कालसागरे ॥ मृत्युरोगजराग्राहैर्न कश्चि-

है उसका आधा बाल्य बुढ़ापा और रोग से घटता है शेष आयु भी निरर्थक बीत जाती है ॥३०॥ भाग्य पर निर्भर रह कर उपाय उद्योग न करना ब्रह्म का चिन्तन दिन-रात करने के समय सोना जिससे भय होना चाहिये उसका विश्वास मानना ऐसे प्राणी को यमराज क्यों न मारे अर्थात् यमराज से सभी मारे जाते हैं ॥३१॥ जल के फेन के समान देह में जब-जब आक्रमण करके स्थित होता है ऐसे प्रिय अनित्य देह के संवास में निर्भय कैसे रह सकता है ॥३२॥ परिणाम में विष के समान जो विषय हैं उनको लाभ जानते हैं अनित्य देह को नित्य मानते हैं दंभ असत्य आदि अनर्थों को सिद्ध मानते हैं। ऐसे मूढ़ मनुष्य मुक्ति को देनेवाले आत्मज्ञान रूप अपने प्रयोजन को नहीं मानते हैं ॥३३॥ आत्मज्ञान से मोक्ष होता है इस बात को जान कर भी मोक्ष का उपाय नहीं करता है और दैव की माया से मोहित वह प्राणी सुनकर जागृत नहीं होता है ॥३४॥ यह संसार मृत्यु, रोग, बुढ़ापा आदि ग्राह से पकड़ा हुआ गंभीर

दपि बुध्यते ॥ ३५ ॥ प्रतिक्षणमयं कालः क्षीयमाणो न लक्ष्यते ॥ आमकुम्भ इवाम्भःस्थो विशीर्णो न विभाव्यते ॥३६॥ युज्यते वेष्टनं वायोराकाशस्य च खण्डनम् ॥ ग्रंथनं च तरंगाणामास्था नायुषि युज्यते ॥३७॥ पृथिवी दह्यते येन मेरुश्चापि विशीर्यते ॥ शुष्यते सागरजलं शरीरस्य च का कथा ॥३८॥ अपत्यं मे कलत्रं मे धनं मे बान्धवाश्च मे ॥ जल्पन्तमिति मर्त्याजं हन्ति कालवृको बलात् ॥३९॥ इदं कृतमिदं कार्यमिदमन्यत्कृताकृतम् ॥ एवमीहासमायुक्तं कृतान्तः कुरुते वशम् ॥४०॥

काल सागर में डूबता हुआ मनुष्य इस बात को नहीं जानता है ॥३५॥ जल में स्थित मिट्टी के कच्चे घड़े के समान बिखरता हुआ नहीं जाना जाता है इससे प्रतिक्षण में क्षीण होने पर भी यह काल अलक्षित रहता है ॥३६॥ वायु को बाँधलेना, आकाश को टुकड़ा करना, जल के तरंग का गूँथ लेना, यह सब मनुष्य कर सकता है परन्तु अपनी आयु में आस्था करना उचित नहीं है ॥३७ जो काल चक्र पृथ्वी को जला देता है सुमेरु पर्वत को चूर कर डालता है समुद्र को सुखा देता है तो इस देह का कहना ही क्या है ॥३८॥ मेरी सन्तान, मेरी स्त्री, मेरे भाई बन्धु ऐसे कहते हुए मनुष्यरूपी बकरा को कालरूपी व्याघ्र जबरदस्ती खा जाता है ॥३९॥ यह मेरा किया है यह मुझे करना है इस प्रकार की चेष्टा युक्त पुरुष को कृतान्त अपने वश में कर लेता है ॥४०॥ कल करने वाले काम को आज ही

श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् ॥ नहि मृत्युः प्रतीक्षेत कृतं वाप्यथवा कृतम् ॥४१॥ जरादर्शितपन्थानं प्रचण्डव्याधिसैनिकम् ॥ मृत्युशत्रुमधिष्ठोऽसि त्रातारं किं न पश्यसि ॥४२॥ तृष्णासूचीविनिर्भिन्नं सक्तं विषयसर्पिषा ॥ रागद्वेषानले पक्वं मृत्युरश्नाति मानवम् ॥४३॥ बालांश्च यौवनस्थांश्च वृद्धान्गर्भगतानपि ॥ सर्वानाविशते मृत्युरेवं भूतमिदं जगत् ॥४४॥ स्वदेहमपि जीवोऽयं मुक्त्वा याति यमालयम् ॥ स्त्री मातृपितृपुत्रादिसम्बन्धः केन हेतुना ॥४५॥ दुःखमूलं हि संसारः स यस्यास्ति स दुःखितः ॥ तस्य त्यागः कृतो येन स सुखी नापरः क्वचित् ॥४६॥ प्रभवं सर्वदुःखा-

करे और सायंकाल में करने योग्य काम को प्रातःकाल में कर डाले काल कभी मनुष्य की प्रतीक्षा नहीं करता है ॥४१॥ बुढ़ापा ने जिसका मार्ग दिखाया है और प्रचण्ड रोग ही जिसकी सेना हैं ऐसे काल से दबाया गया तू अपनी रक्षा करने वाले परमेश्वर को क्यों नहीं देखता है ॥४२॥ तृष्णा रूपी सूई से छिदा हुआ, विषय रूपी जल से सींचा हुआ और रागद्वेष रूपी अग्नि में पकाए हुए मनुष्य को काल खाता है ॥४३॥ बालक, युवा, वृद्धा और गर्भ में रहने वाले को काल अवश्य खाता है इस प्रकार संसार की गति है ।४४॥ यह जीव अपने शरीर को छोड़कर यमलोक में जाता है स्त्री, माता, पिता, पुत्र आदि के सम्बन्ध को तो कहना ही क्या है ॥४५॥ इस दुःख रूप जगत की जिसको इच्छा है वही दुःखी है उस संसार को जिसने त्यागा वही सुखी है ॥४६॥ सब दुःखों को उत्पन्न

नामालयं सकलापदाम् ॥ आश्रयं सर्वपापानां संसारं वर्जयेत्क्षणात् ॥४७॥ लोह-
दारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते ।। पुत्रदारमयैः पाशैर्मुच्यते न कदाचन ॥४८॥
यावन्तः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान् । तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोक-
शंकवः ॥४९॥ वंचिताशेषवित्तैस्तैर्नित्यं लोको विनाशितः ॥ हा हन्त विषयाहारैर्दे-
हस्थेन्द्रियतस्करैः ॥५०॥ मांसलुब्धो यथा मत्स्यो लोहशंकुं न पश्यति । सुखलुब्ध-
स्तथा देही यमबाधां न पश्यति ॥५१॥ हिताहिते न जानन्तो नित्यमुन्मार्गगामिनः ॥

करने वाली सम्पूर्ण आपत्तियों का स्थान और सब पापों का स्थान इस संसार को क्षणभर में छोड़ देवे ॥४७॥ लोह और काष्ठ के बन्धन से बँधा हुआ मनुष्य छूट सकता है परन्तु पुत्र स्त्री धन आदि के सूत्र से नहीं छूटता है ॥४८॥ जीव अपने सुख के लिये मन की रुचि के अनुसार जितना ही सम्बन्धों को करता है उतना ही शोकरूपी कीलें उसके हृदय में धंसकर पीड़ा देती हैं ॥४९॥ संपूर्ण धन से जो ठगा गया है वह हाय-हाय करता है परन्तु विषयरूपी आहार करने वाले देह के मध्य में रहने वाले इन्द्रियरूपी चोरों से यह लोक नष्ट किया गया है ॥५०॥ जैसे माँस के लोभ में मछली अज्ञानता से लोहे की कंटिया को निगल जाती है देखती नहीं वैसे ही सुख का लोभी प्राणी यमकी बाधा को नहीं देखता है ॥५१॥ हे गरुड़! अपना हित और अनहित जो नहीं जानते हैं पेट पालन के

कुक्षिपूरणनिष्ठा ये ते नराः नारकाः खग ॥५२॥ निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः ॥ ज्ञानवान्मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः ॥५३॥ प्रभाते मलमूत्राभ्यां क्षुत्तृड्भ्यां मध्यगे रवौ ॥ रात्रौ मदननिद्राभ्यां बाध्यंते मूढमानवाः ॥५४॥ स्वदेह धनदारादिनिरताः सर्वजन्तवः ॥ जायन्ते च म्रियन्ते च हा हन्ताज्ञानमोहिताः ॥५५॥ तस्मात्संगः सदा त्याज्यः सर्वस्त्यक्तुं न शक्यते ॥ महद्भिः सह कर्त्तव्यं सन्तःसंगस्य भेषजम् ॥५६॥ सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम् ॥ यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्यादमार्गगः ॥५७॥ स्वस्ववर्णाश्रमाचारनिरताः सर्वमानवाः ॥ जानन्ति न परं

लिये अनेक कुकर्म करते और कुमार्ग चलते हैं व अवश्य नरकों में पड़ते हैं ॥५२॥ निन्द्रा, भय, मैथुन, आहार यह चार बात सब प्राणियों में एक समान हैं इनमें जिनको ज्ञान है वे मनुष्य हैं जो ज्ञानहीन हैं वे पशु हैं ।।५३।। प्रातःकाल मलमूत्र में मध्यान्ह, में क्षुधा और तृषा से रात्रि में मैथुन तथा निद्रा से मूढ़ मनुष्य प्रतिदिन सताया जाता है ।।५४।। देह, धन, स्त्री आदि के प्रेम में लगा हुआ मनुष्य दिन रात हाय-हाय कर अज्ञानता से मोहित होकर जन्मता और मरता है । ५५।। इसलिये संग का सदा त्याग करना चाहिये जो संग करना चाहे तो सत्संग करे सज्जनों की संगति औषधि के समान है।।५६।। सतसंग और विवेक यही निर्मल दो नेत्र मनुष्य को होते हैं जिसको ये नहीं हैं वही कुमार्ग में जाने वाला अन्धा है ।।५७।। संपूर्ण मनुष्य अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल आचार

धर्म वृथा नश्यन्ति दाम्भिकाः ॥५८॥ क्रियायासपराः केचिद् व्रतचर्यादिसंयुताः ॥
अज्ञानसंवृतात्मानः संचरन्ति प्रतारकाः ॥५६॥ नाममात्रेण सन्तुष्टाः कर्मकाण्डरता
नराः ॥ मन्त्रोच्चारणहोमाद्यैर्भ्रामिताः क्रतुविस्तरैः ॥६०॥ एकभुक्तोपवासाद्यैर्नियमैः
कायशोषणैः ॥ मूढाः परोक्षमिच्छन्ति मम मायाविमोहिताः ॥६१॥ देहदण्डनमात्रेण
का मुक्तिरविवेकिनाम् ॥ वल्मीकताडनादेव मृतः कुत्र महोरगः ॥६२॥ जटाभारा-
जिनैर्युक्ता दाम्भिका वेषधारिणः भ्रमन्ति ज्ञानिवल्लोके भ्रामयन्ति जनानपि ॥६३॥

करने में तत्पर हैं कोई धर्म को न जानकर उससे विमुख हैं परन्तु दाम्भिक मनुष्य पाखण्ड के द्वारा वृथा नाश को प्राप्त होते हैं ॥५८॥ कोई कर्म में परिश्रम करने वाले कोई व्रत आदि करने क्षुधा तृषा के क्लेश को सहने वाले अज्ञानता मूढ़ ऐसे वंचक जगत में विचरते हैं ॥५६॥ नाम मात्र से सन्तुष्ट कर्म काण्ड में श्रद्धा करने वाले मन्त्रों के द्वारा हवन आदि यज्ञों के विस्तार से भ्रम में पड़े हुए। ६०॥ एक बार भोजन तथा उपवास अथवा फलाहार आदि नियमों से शरीर को सुखाने वाले मेरी माया से मोहित मूढ़ मनुष्य मोक्ष की इच्छा करते हैं ॥६१॥ देह के दण्ड देने से विवेकहीन पुरुषों की मुक्ति कहाँ होती है जैसे बाल्मीक (बांबी) के ऊपर दंड मारने से बड़ा सर्प नहीं मरता है ॥६२॥ जटाओं के भार सिर पर और मृग चर्म से युक्त वेष को धारण करने वाले पाखण्डी ज्ञानी के समान संसार में घूमते हैं और दूसरे को भी दंभी बनाते हैं ॥६३॥ संसारी सुख की इच्छा करने वाले और अपने को ब्रह्मज्ञ समझने वाले

संसारजसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् ॥ कर्मब्रह्मोभयं भ्रष्टं तं त्यजेदन्त्यजं यथा ॥६४॥ गृहारण्यसमा लोके त्यक्तव्रीडा दिगम्बराः ॥ चरन्ति गर्दभाद्याश्च विरक्तास्ते भवन्ति किम् ॥६५॥ मृद्भस्मोद्धूलनादेव मुक्ताःस्युर्यदि मानवाः ॥ मृद्भस्मवासी नित्यं श्वा स किं मुक्तो भविष्यति ॥६६॥ तृणपर्णोदकाहाराः सततं वनवासिनः ॥ जम्बूकाखुमृगाद्याश्च तापसास्ते भवन्ति किम् ॥६७॥ आजन्ममरणान्तं च गंगादितटनीस्थिताः ॥ मण्डूकमत्स्यप्रमुखा योगिनस्ते भवंति किम् ॥६८॥ पारावताः शिलाहाराः कदाचिदपि चातकाः ॥ न पिबन्ति महीतोयं व्रतिनस्ते भवंति किम् ॥६९॥

कर्म तथा ज्ञान से भ्रष्ट पुरुष को अन्त्यज के समान त्याग करे ॥६४॥ घर और वन जिसको एक समान है और लोक में लज्जा को छोड़कर दिगम्बर होकर गदहा के समान जो विचरते हैं वे विरक्त भक्त कहीं होते हैं ॥६५॥ मिट्टी और भस्म आदि को देह में लगाने से यदि मनुष्य की मुक्ति हो जावे तो धूल में नित्य लोटने वाला कुत्ता क्यों नहीं मुक्त हो सकता है ॥६६॥ घास पत्र और जल को आहार करने वाले सियार मूसा मृग आदि जीव कहाँ तपस्वी होते हैं ॥६७॥ जन्म से मरण पर्यन्त मेंढक, मछली आदि जलचर जीव गंगा आदि नदियों में रहते हैं तो क्या योगी हो जाते हैं ॥६८॥ कबूतर कंकर खाते हैं पपीहा पृथ्वी में गिरे हुए जल को नहीं पीता है इससे क्या वह व्रती हो जाता है ॥६९॥ इसलिये ये सब कर्मलोक को प्रसन्न करने के लिये हैं । हे गरुड़ ! मोक्ष का उपाय तो

तस्मादित्यादिकं कर्म लोकरंजनकारकम् ॥ मोक्षस्य कारणं साक्षात्तत्त्वज्ञानं खगेश्वर ॥७०॥ षड्दर्शनमहाकूपे पतिताः पशवः खग ॥ परमार्थं न जानन्ति पशुपाशनियन्त्रिताः ॥७१॥ वेदशास्त्रार्णवे घोरे प्रोह्यमाना इतस्ततः ॥ षडूर्मिनिगृहीतास्तास्तिष्ठन्ति हि कुतार्किकाः ॥७२॥ वेदागमपुराणज्ञः परमार्थं न वेत्ति यः ॥ विडम्बकस्य तस्यैव तत्सर्वं काकभाषितम् ॥७३॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति चिन्तासमाकुलाः ॥ पठन्त्यहर्निशं शास्त्रं परतत्त्वपराङ्मुखाः ॥७४॥ वाक्यच्छन्दो निबन्धेन काव्यालंकार-

तत्त्व लाभ है ॥७०॥ षड् दर्शनरूपी अन्ध कूप में गिरे हुए अर्थात् शास्त्रों के पढ़ने में आकुल ज्ञानहीन पशु परमार्थ को नहीं जानते हैं क्योंकि पशुओं की रस्सी में बँधे हुए हैं ॥७१॥ वेद शास्त्र रूपी घोर समुद्र में पड़े छतरंग को रोकने में व्याकुल ऐसे कुतर्क से द्वैत ज्ञान में रहने वाले अकेले पुरुष को नहीं जानते हैं ॥७२॥ उस विडम्बक का बोलना कौआ के बोलने के समान वृथा है ॥७३॥ यह ज्ञान है और यह जानने योग्य है इस चिन्ता से व्याकुल और तत्त्व के विषय से पराङ्मुख मनुष्य दिन-रात शास्त्र को पढ़ते हैं ॥७४॥ अलंकारों से युक्त सुन्दर वचन छन्द भेद से युक्त काव्य चिन्ता से मूढ़ और व्याकुल हैं इन्द्रियाँ जिनकी ऐसे रहते हैं ॥७५॥ परम तत्त्व तो और ही है जो गुरु के उपदेश से जानने योग्य है और मनुष्य और ही और क्लेश उठाता है अर्थात् कुतर्क के बल से

शोभिताः ॥ चिन्तया दुःखिता मूढा स्तिष्ठन्ति व्याकुलेन्द्रियाः ॥७५॥ अन्यथा परमं तत्त्वं जनाः क्लिश्यन्ति चान्यथा ॥ अन्यथा शास्त्रसद्भावो व्याख्यां कुर्वन्ति चान्यथा ॥७६॥ कथयन्त्युन्मनीभावं स्वयं नानुभवन्ति च ॥ अहंकाररताः केचिदुपदेशादिवर्जिताः ॥७७॥ पठंति वेद शास्त्राणि बोधयन्ति परस्परम् ॥ न जानन्ति परं तत्त्वं दर्वी पाकरसं यथा ॥७८॥ शिरो वहति पुष्पाणि गंधं जानाति नासिका ॥ पठंति वेदशास्त्राणि दुर्लभो भावबोधकः ॥७९॥ तत्त्वमात्मस्थमज्ञात्वा मूढः शास्त्रेषु मुह्यति ॥ गोपः कुक्षिगते छागे कूपे पश्यति दुर्मतिः ॥८०॥ संसारमोहनाशाय शब्दबोधो न हि

उसके जानने का क्लेश उठाते हैं शास्त्रों का भाव और है व्याख्या और ही करते हैं ।७६ अपने अभिमान में प्रमत्त हो गुरु से भी कभी नहीं पूछते कि हम पंडित होकर क्या पूछें ऐसे अहंकार युक्त उन्मनी भाव को ब्रह्म परत्व करते हैं ।७७॥ जो वेद शास्त्र को पढ़ते और दूसरों का बोध कराते हैं परन्तु परमतत्त्व को इस प्रकार नहीं जानते जैसे पाक के रस को कलछी नहीं जानती है ॥७८॥ शिर फूलों को धारण करता है गंध नासिका ग्रहण करती है परन्तु वेद शास्त्र को पढ़कर भी भाव का बोध कराने वाला दुर्लभ है ॥७९॥ अपने शरीर के भीतर वास करने वाले ईश्वर तत्त्व को जो नहीं जानता है वह मूर्ख शास्त्रों में मोहित होने वाला है । जैसे दुष्ट गोप बकरे को अपनी कांख में रखकर कूएं में खोजता है ।८०॥ संसार के मोह को नाश करने का शब्द बोध नहीं है इसमें दृष्टान्त है कि दीप

तमः न निवर्तेत तिमिरं कदाचिद्दीपवार्तया ॥८१॥ प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च दर्पणम् ॥ अतः प्रज्ञावतां शास्त्रं तत्वज्ञानस्य लक्षणम् ॥८२॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं सर्वं तु श्रोतुमिच्छति ॥ दिव्यवर्षसहस्रायुः शास्त्रान्तं नैव गच्छति ॥८३॥ अनेकानि च शास्त्राणि स्वल्पायुर्विघ्नकोटयः ॥ तस्मात्सारं विजानीयात्क्षीरं हंस इवाम्भसि ॥८४॥ अभ्यस्य वेदशास्त्राणि तत्त्वं ज्ञात्वाथ बुद्धिमान् ॥ पलालमेव धान्यार्थी सर्वशास्त्राणि संत्यजेत् ॥८५॥ यथामृते न तृप्तस्य नाहारेण प्रयोजनम् ॥ तत्त्वज्ञस्य तथा तार्क्ष्य न शास्त्रेण प्रयोजनम् ॥८६॥ न वेदाध्ययनान्मुक्तिर्न शास्त्रपठनादपि ॥ ज्ञानादेव हि

की वार्ता करने से अन्धकार का नाश नहीं होता है ॥८१॥ बुद्धि से रहित मनुष्य को शास्त्र पढ़ना ऐसा है जैसे अन्धे को दर्पण दिखाना इसी से बुद्धिमान मनुष्य को शास्त्र तत्व ज्ञान का देने वाला है ॥८२॥ यह ज्ञान यह जानने के योग्य है यह सुनने की इच्छा करते हैं परन्तु देवताओं के समान हजार हजार वर्ष की आयु हो तो भी शास्त्र के अन्त को नहीं पहुँचता है ॥८३॥ शास्त्र अनेक हैं आयु आयु मनुष्य की थोड़ी है उसमें बहुत प्रकार के विघ्न हैं इसलिये शास्त्र के तत्व को ऐसा जाने जैसे हंस जल में से दूध को निकाल लेते हैं ॥८४॥ बुद्धिमान मनुष्य वेद शास्त्र को पढ़कर जब उनका तत्व जानलेवे तब शास्त्रों को ऐसा छोड़ देवे जैसे धान्य का चाहने वाला पलाल को छोड़ देता है ॥८५॥ जसे अमृत भोजन करने वाले को अन्न से प्रयोजन नहीं रहता है ॥८६॥ वेद शास्त्र के पढ़ने से

कैवल्यं नान्यथा विनतात्मज ॥८७॥ नाश्रमः कारणं मुक्तेर्दर्शनानि न कारणम् ॥
तथैव सर्वकर्माणि ज्ञानमेव हि कारणम् ॥८८॥ मुक्तिदा गुरुवागेका विद्याः सर्वा
विडम्बिकाः ॥ काष्ठभारसहस्रेषु ह्येकं संजीवनं परम् ॥८९॥ अद्वैतं हि शिवं प्रोक्तं
क्रियायासविवर्जितम् गुरुवक्त्रेण लभ्येत नाधीतागमकोटिभिः ॥९०॥ आगमोक्तं
विवेकोत्थं द्विधा ज्ञानं प्रचक्षते ॥ शब्दब्रह्मागममयं परब्रह्मविवेकजम् ॥९१॥ अद्वैतं
केचिदिच्छन्ति द्वैतमिच्छन्ति चापरे ॥ समतत्वं न जानन्ति द्वैताद्वैतविवर्जितम् ॥९२॥

मुक्ति नहीं होती है केवल ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य का मोक्ष होता है इसलिये ज्ञान का लाभ करना चाहिये ।.८७।। आश्रमों के पालन से तथा शास्त्रों के चिन्तन से या अग्नि होत्र आदि कर्मों से मुक्ति नहीं मिलती मुक्ति केवल ज्ञान से होती है ॥८८॥ एक गुरु वचन मोक्ष देने वाला है संपूर्ण विद्यायें पाखंड है जैसे हजारों गांठ लकड़ी में संजीवनी श्रेष्ठ है ।.८९॥ कर्मों में जो श्रम करते हैं उससे रहित शिव का अद्वैत रूप का है वह ज्ञान गुरु के मुख से होता है शास्त्रों के चिन्तन से नहीं ॥९०॥ ज्ञान दो प्रकार का होता है एक शास्त्रों के द्वारा दूसरा विवेक से उत्पन्न, एक तो शब्द मय ब्रह्म है और विवेक से उत्पन्न परब्रह्म स्वरूप है ॥९१॥ कोई आचार्य अद्वैत को श्रेष्ठ मानने की इच्छा करते हैं और कोई द्वैत की इच्छा करते हैं परन्तु इन दोनों से भिन्न समतत्व को विरले ही जानते हैं ॥९२॥

द्वे पदे बन्धमोक्षाय न ममेति ममेति च ॥ ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति प्रमुच्यते ॥९३॥ तत्कर्म यत्र बन्धाय सा विद्या या विमुक्तिदा ॥ आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥९४॥ यावत्कर्माणि दीयन्ते यावत्संसारवासना ॥ यावदिन्द्रियचापल्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥९५॥ यावद्देहाभिमानश्च ममता यावदेव हि ॥ यावत्प्रयत्नवेगोऽस्ति यावत्संकल्पकल्पना ॥९६॥ यावन्नो मानसं स्थैर्यं न यावच्छास्त्रचिंतनम् ॥ यावन्न गुरुकारुण्यं तावत्तत्त्वकथा कुतः ॥९७॥ तावत्तपो व्रतं तीर्थं जप-

मेरा है मेरा नहीं है ये दो शब्द प्राणियों के बन्धन और मोक्ष के कारण है अर्थात् यह मेरा है ऐसा कहने से जीव का बन्धन होता है और मेरा नहीं है यह कहने से जीव को मोक्ष होता है ॥९३॥ जो कर्म बन्ध के लिये न होकर मुक्ति देने वाला है उसे विद्या युक्त ज्ञान और जो अध्यात्म विद्या से भिन्न शिल्प आदि कर्म हैं वह अविद्या युक्त हैं मोक्ष के लिये मलिन है ॥९४। जब तक कर्मों के जाल में मनुष्य फँसा है और इन्द्रियों की चपलता रहती है तब तक ज्ञान की चर्चा कहाँ ॥९५॥ जब तक देह का अभिमान है जब ममता और संसार की वासना रहती है प्रयत्न का वेग है और संकल्प की कल्पना है ॥९६॥ जब तक मन स्थिर नहीं होता शास्त्र का विचार नहीं घटता गुरु की दया नहीं होती तब तक तत्व की चर्चा कहाँ अर्थात् कहीं नहीं ।९७॥ जब तक तप, जप, होम, पूजन,

होमार्चनादिकम् ॥ वेदशास्त्रागमोयदा यावत्तत्वं न विन्दति ॥९८॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ तत्वनिष्ठा भवेत्तार्क्ष्य यदीच्छेन्मोक्षमात्मनः ॥९९॥ धर्मज्ञानप्रसूनस्य स्वर्गमोक्षफलस्य च तापत्रयादिसंतप्तश्छायां मोक्षतरोः श्रयेत् ॥१००॥ तस्माज्ज्ञानेनात्मतत्त्वं विज्ञेयं श्रीगुरोर्मुखात ॥ सुखेन मुच्यते जन्तुर्घोरसंसारबन्धनात् ॥१०१॥ तत्वज्ञस्यान्तिमं कृत्यं शृणु वक्ष्यामि तेऽधुना ॥ येन मोक्षमवाप्नोति ब्रह्म निर्वाणसंज्ञकम् ॥१०२॥ अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहां

और वेद शास्त्र का चिन्तन तथा और पुराणों की कथा रहती है जब तक मनुष्य को तत्व ज्ञान नहीं हाता है ॥९८॥ हे गरुड़ ! इसलिये सब उपायों से और सब अवस्थाओं में अपना जो मोक्ष चाहे तो तत्व ज्ञान को जानने वाला होवे ॥९९॥ अध्यात्मिक आधिदैविक इन तीनों पापों से पीड़ित मनुष्य को धर्म ज्ञान फूल है और स्वर्ग तथा मोक्ष उसका फल है ऐसे मोक्षरूपी वृक्ष की छाया का आश्रय करना चाहिये ।१००॥ इसलिये गुरु के मुख से ज्ञान के द्वारा आत्मतत्व को जानना चाहिये आत्मतत्व जानसे से जीव घोर संसार बन्धन से छूट जाता है ॥१०१॥ तत्व वेत्ताओं का पिछला जो कार्य है उसको कहता हूँ सुनो जिससे मुक्त होकर निर्वाण पद को प्राप्त होता है ॥१०२॥ मनुष्य अपना अन्त समय जानकर मृत्यु के भय से शून्य हो शास्त्र द्वारा शरीर में जो स्पृहा है उसको त्याग देवे

देहे नु ये च तम् ॥१०३॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥१०४॥ अभ्यसन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥१०५॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥१०६॥ अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमंपदम् ॥ एवं समीक्ष्य चात्मानमात्मन्याधाय निष्कले ॥१०७॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन् ॥ यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥१०८॥ न यत्र दाम्भिका यान्ति ज्ञानवैराग्यवर्जिताः ॥ सुधियस्तां गतिं यान्ति

अर्थात् सुख देने वाले वस्तुओं की इच्छा न करे ॥१०३॥ स्त्री, पुत्र आदि के प्रेम को छोड़कर घर से निकल जावे पुण्य तीर्थों में स्नान कर पवित्र आसन पर एकाग्र चित्त हो बैठ जावे ॥१०४॥ परब्रह्म का स्वरूप जो ॐ यह शब्द ब्रह्म है इसको जपने का अभ्यास करे और प्राणायाम के द्वारा श्वाँस को जीत, ब्रह्म बीज को स्मरण करता हुआ मन को अपने वश में रखे ।१०५॥ बुद्धि है सारथी जिसका ऐसे चंचल मन को विषयों से हटावे कर्म से प्रेरित मन को बुद्धि के द्वारा शुभ कर्मों की वासना में लगावे ॥१०६॥ परमधाम रूपी ब्रह्म मैं हूँ ऐसा संकल्प करके आत्मा में देखने के लिये उपाधि रहित आत्मा को आत्मा में मन को लगावे ॥१०७॥ और ॐ इस एक अक्षर रूपी ब्रह्म का भजन करता हुआ जो देह का त्याग करता है वह उत्तम मार्ग से आकर मुझको प्राप्त होता है ॥१०८॥ जहाँ ज्ञान

तामहं कथयामि ते ॥१०९॥ निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनिष्ठा विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥११०॥ ज्ञानह्रदे सत्यजले
रागद्वेषमलापहे ॥ यः स्नाति मानसे तीर्थे स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥१११॥ प्रौढ-
वैराग्यमास्थाय भजते मामनन्यभाक् ॥ पूर्णदृष्टिः प्रसन्नात्मा स वै मोक्षमवाप्नु-
यात् ॥११२॥ त्यक्त्वा गृहं च यस्तीर्थे विप्रन्मरणोत्सुकः ॥ म्रियते मुक्तिक्षेत्रेषु स वै
मोक्षमवाप्नुयात् ॥११३॥ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका ॥ पुरी

वैराग्य से रहित पाखंड दिखाने वाले नहीं जाते हैं उस पद को ज्ञानी पुरुष पहुँचता है उनको मैं तुमसे कहता हूँ ॥१०९। मान मोह को त्यागने वाले संग दोष को जीतने वाले सुख दुःखरूपी द्वन्द्व से छूट गया है मन जिनका ऐसे आत्मज्ञान में परिनिष्ठित ज्ञानी पुरुष अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं ॥११०॥ ज्ञानरूपी कुण्ड में सत्यरूपी जल भरा है वह राग द्वेष रूपी मल को धोने वाला है ऐसे मानस तीर्थ में जो ज्ञानी स्नान करता है वह संपूर्ण उपाधियो से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१११॥ प्रौढ़ वैराग्य में पहुँच कर चित्त की दृढ़ता से जो सब भावों को छोड़कर मुझको स्मरण करता है वह प्रसन्नात्मा निश्चय मोक्ष को प्राप्त होता है ॥११२॥ जो मरने में उत्सुक होकर घर का त्याग कर प्रयाग आदि तीर्थों में वास करता है और काशी आदि क्षेत्रों में मरता है वह अवश्य मोक्ष को पाता है ॥११३॥ अयोध्या १ मथुरा २ माया ३ काशी ४ काञ्ची ५ अवन्तिका ६ द्वारावती ७ पुरी ये सात प्रसिद्ध और मोक्ष को

द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥११४॥ इति ते कथितस्ताक्ष्यं मोक्षधर्मः सनातनः ॥ ज्ञानवैराग्यसहितो यं श्रुत्वा मोक्षमाप्नुयात् ॥११५॥ मोक्षं गच्छन्ति तत्त्वज्ञाधार्मिकाः स्वर्गतिं नराः ॥ पापिनो दुर्गतिं यान्ति संसरन्ति खगादयः ॥११६॥ इत्येवं सर्वशास्त्राणां सारोद्धारो निरूपितः ॥ मया ते षोडशोऽध्यायैः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥११७॥ सूत उवाच ॥ एवं श्रुत्वा वचो राजन्गरुडो भगवन्मुखात् ॥ कृताञ्जलिरुवाचेदं तं प्रणम्य मुहुर्मुहुः ॥११८॥ भगवन्देवदेवेश श्रावयित्वा वचो

देने वाली हैं ॥११४॥ हे गरुड़ ! मैंने तुमसे इस प्रकार सनातन मोक्ष धर्म को कहा ज्ञान और वैराग्य सहित इस पुराण को सुनकर मोक्ष को प्राप्त होता है ॥११५। तत्त्व वेत्ता मोक्ष को प्राप्त होते हैं और धर्म करने वाले स्वर्ग लोक में वास करते हैं पापी मनुष्य नरकों में दुर्गति को प्राप्त होते हैं पक्षी आदि यहाँ उत्पन्न होते और यहीं मरते हैं ॥११६। इस प्रकार वेद शास्त्र का तत्त्व सोलह अध्याय में मैंने तुमसे कहा है ॥११७। सूतजी बोले हे ब्राह्मणो ! गरुड़ भगवान के मुख से इस प्रकार सुनकर उनका बारम्बार प्रणाम कर हाथ जोड़ विनीत भाव से बोले ॥११८॥ हे भगवन् ! हे देवताओं के प्रभु ! हे नाथ ! तुमने मुझको अपना अमृत रूपी वचन सुना

ऽमृतम् । तारितोहं त्वया नाथ भवसागरतः प्रभो ॥११९॥ स्थितोऽस्मि गतसन्देहः कृतार्थोऽस्मि न संशयः ॥ इत्युक्त्वा गरुडस्तूष्णीं स्थित्वा ध्यानपरोऽभवत् ॥१२०॥ स्मरणाद्दुर्गतिहर्ता पूजनयज्ञेन सद्गतेर्दाता ॥ यःपरया निजभक्त्या ददाति मुक्तिं स मां हरिः पातु ॥१२१॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भगवद्गरुडसंवादे मोक्षधर्मनिरूपणो नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

कर भवसागर से पार किया ॥११९॥ मेरा सन्देह छूट गया मैं कृतार्थ हो गया हूँ ऐसा कहकर गरुड़जी ने मौन होकर ध्यान में अपने मन को स्थिर किया ॥१२०॥ स्मरण मात्र से दुर्गति को हरने वाले पूजन रूपी यज्ञ से सद्गति देने वाले अपने भक्तों की रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् मेरी रक्षा करें ॥१२१॥

इति श्रीगरुडपुराणे सारोद्धारे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इत्याख्यातं मया तार्क्ष्य सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥ दशाहाभ्यन्तरे श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१॥ इदं चामुष्मिकं कर्म पितृमुक्तिप्रदायकम् ॥ पुत्रवाञ्छितदं चैव परत्रेह सुखप्रदम् ॥२॥ इदं कर्म न कुर्वन्ति ये नास्तिकनराधमाः ॥ तेषां जलमपेयं स्यात्सुरातुल्यं न संशयः ॥३॥ देवताः पितरश्चैव नैव पश्यन्ति तद् गृहम् ॥ भवन्ति तेषां कोपेन पुत्राः पौत्राश्च दुर्गताः ॥४॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चैवेतरेऽपि च ॥ ते चाण्डालसमा ज्ञेयाः सर्वे प्रेतक्रियां विना ॥५॥ प्रेतकल्पमिदं पुण्यं शृणोति श्रावयेच्च यः ॥ उभौ तौ पापनिर्मुक्तौ दुर्गतिं नैव गच्छतः ॥६॥

विष्णु भगवान् बोले हे गरुड़! मैंने मरने के अनन्तर का संपूर्ण कर्म कह दिया जिसको दस दिन के भीतर सुनने से जीव सुन्दर गति को प्राप्त होता है ॥१॥ यह पुराण पितरों को मुक्ति देने वाला और पुत्र को वांछित फल देने वाला और परलोक में सुख देने वाला है ॥२॥ जो नास्तिक और अधम पुरुष इन कर्मों को नहीं करता है उनका जल मदिरा के समान जानकर त्याग करे इसमें संशय नहीं ॥३॥ देवता और पितर उसके घर को नहीं देखते हैं और उन पितरों के कोप से उनकी सन्तान दरिद्री होती है ॥४॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनको प्रेत कर्म के बिना चाण्डाल के समान समझना चाहिये ।५॥ हे गरुड़! इस पवित्र प्रेत कल्प को जो सुनेगा और जो सुनावेगा वे दोनों पापों से छूटकर दुर्गति को नहीं प्राप्त होंगे ।६॥ हे गरुड़! माता-पिता के मरने में जो इस पुराण

मातापित्रोश्च मरणे सौपर्णं शृणुते तु यः ॥ पितरौ मुक्तिमापन्नौ सुतः सन्तति-
मान्भवेत् ॥७॥ न श्रुतं गारुडं येन गयाश्राद्धं च नो कृतम् ॥ वृषोत्सर्गः कृतो नैव न
च मासिकवार्षिके ॥८॥ स कथं कथ्यते पुत्रः कथं मुच्येदृणत्रयात् ॥ मातरं पितरं
चैव कथं तारयितुं क्षमः ॥९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रोतव्यं गारुडं किल ॥ धर्मार्थ-
काममोक्षाणां दायकं दुःखनाशनम् ॥१०॥ पुराणं गारुडं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ॥
शृण्वतां कामनापूरं श्रोतव्यं सर्वदैव हि ॥११॥ ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियः पृथिवीं
लभेत् ॥ वैश्यो धनिकतामेति शूद्रः शुद्धयति पातकात् ॥१२॥ श्रुत्वा दानानि

को सुनते हैं उनके माता पिता मुक्त हो जाते हैं और वह पुत्र सन्तति वाला होता है ॥७॥ जिसने गरुण पुराण का श्रवण नहीं किया
और माता-पिता के निमित्त गयाश्राद्ध और वृषोत्सर्ग नहीं किया मासिक और वार्षिक श्राद्ध दान नहीं किया ।८। उसको पुत्र इस नाम
से कैसे कह सकते हैं और उसके तीन प्रकार के ऋण कैसे छूट सकता है और वह पुत्र माता-पिता को कैसे तार सकता है ।९॥
इसलिये अनेक उपाय से गरुड़ पुराण को अवश्य सुनना चाहिए यह धर्म अर्थ काम मोक्ष को देने वाला और दुःख को नाश करने
वाला है ॥१०॥ यह गरुड़ पुराण मनुष्य को पवित्र करने वाला पापों को छुड़ाने वाला इच्छा को पूर्ण करने वाला है इसलिये
सुनना चाहिये ॥११॥ इसको सुनने वाला ब्राह्मण विद्या को क्षत्रिय पृथ्वी को वैश्य धन को और शूद्र संपूर्ण पातकों से शुद्ध हो जाता

देयानि वाचकायाखिलानि च ॥ पूर्वोक्तशयनादीनि नान्यथा सफलं भवेत् ॥१३॥ पुराणं पूजयेत्पूर्वं वाचकं तदनंतरम् ॥ वस्त्रालंकारगोदानैर्दक्षिणाभिश्च सादरम् ॥१४॥ अन्नैश्च हेमदानैश्च भूमिदानैश्च भूरिभिः ॥ पूजयेद्वाचकं भक्त्या बहु पुण्यफलाप्तये ॥१५॥ वाचकस्यार्चनेनैव पूजितोऽहं न संशयः ॥ सन्तुष्टे तुष्टतां यामि वाचके नात्र संशयः ॥१६॥

॥ इति गरुडपुराणश्रवणफलम् ॥

है ॥१२॥ इस पुराण को सुनकर आचार्य के लिये शय्या अन्न वस्त्र गौ स्वर्ण आदि वस्तुओं का दान करना चाहिये ॥१३॥ पहिले पुराण की पूजा करे पश्चात् वाचक के लिये वस्त्र अलंकार गौ दक्षिणा आदि देकर आदर सहित विधिवत् पूजन करे ॥१४। यथाशक्ति भूमि आदि के दान से फल प्राप्ति के लिये आचार्य को देवे और सविधि उनका पूजन करे ॥१५॥ हे गरुड़ ! आचार्य की पूजा करने से मैं पूजित होता हूँ और उनके प्रसन्न होने से मैं प्रसन्न होकर मनुष्य को वांछित फल देता हूँ ॥१६।

❀ समाप्तम् ❀

मुद्रक : सिटीजन प्रिन्टर्स, दिल्ली-११

गरुडपुराण श्रवणफल

॥९६॥